विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला—सख्या ६

मनोरंजक रसायन

लेखक
गोपाल स्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.
प्रोफेसर कायस्थ पाठशाला कालेज, सम्पादक "विज्ञान"
तथा परीक्षा मन्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग

प्रकाशक
विज्ञान परिषद, प्रयाग

प्रथमवार]　　१९८०　　[मूल्य १॥)

विषय सूची

निवेदन



स पुस्तकमें मेरे कुछ लेखोंका संग्रह कर दिया गया है, जो समय समय पर पत्रोंमें निकलते रहे हैं। अधिकांश लेख विज्ञानमें निकले थे, दो सरस्वतीमें और एक श्रीशारदामें। सरस्वती सम्पादक श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी तथा श्री शारदा सम्पादक पं० नर्मदा प्रसाद मिश्रको मैं लेखोंके छापने की आज्ञा दे देने के लिए धन्यवाद देता हूँ।

प्रायः सभी लेख विज्ञानमें लेखों की कमी पूरी करनेके लिए लिखे गये थे और कुछ मित्रोंके आग्रहसे। मुझे न तो लिखनेका शौक है और न लेखक होनेका दावा है। हिन्दी साहित्यका भी मैंने कभी अध्ययन नहीं किया, तथापि घटना चक्रमें पड़ कर मुझे लगभग ८ वर्षसे विज्ञान का सम्पादन करना पड़ रहा है और उसी सिलसिलेमें यह लेख या निबन्ध हो लिखने पड़े हैं। विज्ञान परिषद्के मंत्री महोदयोंकी कृपासे अब यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। मैंने जो दुस्साहस किया है उसके दो कारण हैं—एक तो यह आभ्यान्तरिक इच्छा कि हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक अंग पूरा हो और दूसरे यह विश्वास कि हिन्दी हमारी मातृ भाषा है, अतएव जो हम लिखेंगे वही ठीक होगा।

हिन्दीके धुरंधर विद्वानों और उद्भट समालोचकोंसे विनम्र

निवेदन है कि उपरोक्त दो बातों पर ध्यान रखते हुए मेरी धृष्टता क्षमा करें।

जिन पत्रों पुस्तकों आदिसे इस ग्रंथके निर्माणमें सहायता ली गयी है उनकी नामावली यहां दी जाती है, और उनके लेखकों और प्रकाशकोंको धन्यवाद दिया जाता है।—

*Martin—Triumphs and Wonders of Modern Chemistry

*Harmsworth—Popular Science Vols I—VII

Newth—Inorganic Chemistry,

Scientific American

Popular Science Siftings

Duncan—The New Knowledge

*Philips—Romance of Modern Chemistry

*Findlay—Chemistry in the Service of Man

Tilden—The progress of Scientific Chemisrty in our own times

Stewarts—Recent Advances in Inorganic Chemistry.

Fentons—Outlines of Physical Chemistry

Aldous—Physics

Ganots—Physics

Gibbons—Scientific Ideas of Today

Bonney—Struture of the Earth

Gregory—The Making of the Earth

Cox—Beyond the Atom

Arrhenius—World in the Making

---

* इन पुस्तकोंसे विशेष सहायता ली गई है।

Philips—The Wonders of Modern Chemistry etc etc.
Mellor—Modern Inorganic Chemistry
Streeters—Precious Stones
Le Bon—The Evolution of forces
Myer—Kinetic Theory of Gases

प्रस्तुत पुस्तक के कई लेख ऊपर दी हो हुई पुस्तक सूची में से प्रथम पुस्तकके आधार पर लिखे गये हैं, परन्तु जो कुछ भी लिखा है उसको जांच मौलिक ग्रन्थों से मिलाकर कर ली है और यथा सम्भव एक निराला भारतीय लिबास पहनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में मुझे कहां तक सफलता प्राप्त हुई है, यह सहृदय पाठक और उदार समालोचक बतला सकेंगे।

कहीं कहीं पर पुनरुक्ति दोष भी देखने में आयगा। किन्तु लेख भिन्न भिन्न समयों पर लिखे गये थे, अतएव इससे बचना कठिन था। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। अभी बहुत कुछ मसाला तय्यार है, यदि यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी तो शीघ्र ही इसका दूसरा भाग प्रकाशित कर दिया जायगा।

—गोपाल स्वरूप भार्गव



मनोरञ्जक रसायन



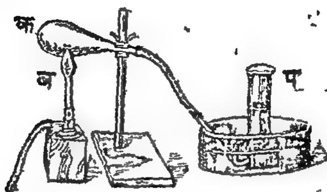
ओषजनके चमत्कार



य डेढ सौ वर्ष हुए होंगे कि एक दिन प्रीस्टली महोदय अपने आतिशी शीशेसे प्रयोगशालामें खेल करते हुए फिर रहे थे। यह ताल कहींसे उनके हाथ लग गया था। उसके द्वारा सूर्यके प्रकाशको एकाग्र करके चीजों पर डालनेका उन्हें बडा शौक था। कई पाठकोंने भी बचपनमें मध्योन्नत तालोंसे खेल किया होगा और काले कपडेपर उनके द्वारा प्रकाश डालकर उन कपडोंके जलानेका आनन्द लूटा होगा। प्रीस्टली महोदयका ताल बडा बलवान् था, उससे खेल करना उन्हें बडा प्रिय था। उस दिन वह भिन्न भिन्न पदार्थोंपर प्रकाश डालकर कौतुक देख रहे थे। इन पदार्थोंमें पारद ओषिद् भी था, उसपर प्रकाश डालने पर उन्हें एक गैस निकलती नजर आई। इस गैसको बर्तनोंमें भरकर प्रयोग करने पर उन्हें केवल अपूर्व प्रकाश के ही दर्शन नहीं हुए, वरन् प्रकाश और ज्वालाकी उत्पत्तिका वास्तविक भेद भी खुल गया।

यह गैस एक औरभी सुगम रीतिसे बन सकती है। एक एके काँच या ताम्बेकी कुप्पीमें पटास (Potash Chlorate)

और मेंगनीज द्विओषिद (Manganese dioxide) का मिश्रण भरकर गरम किया जाय तो यह गैस पैदा हो जाती है। इसको बरतनोंमे भरनेके लिए नीचे दिये चित्रमें दिखलाये हुये



चित्र १—क कुप्पी, ब—बर्नर या लम्प, प—बोतल।

यन्त्रका प्रयोग किया जाता है। मान लीजिये कि कई बरतनों या बोतलोंमें हमने गैस भरकर रख ली है। एक बोतलको उठाकर सूँघिये। गैसमें न रंग नज़र आयगा और न स्वाद और गंध, परन्तु सूघने पर कुछ हलकापन और प्रसन्नताका अनुभव होगा। दूसरे बरतनमें किसी चूहीको पकड़ कर बन्द कर दीजिये। फिर देखिये कि वह आनन्दके मारे कैसा नृत्य करती और चुहल पुहल दिखाती है। यदि हम भी इसी प्रकार किसी कमरेमें यह गैसभर कर बन्द कर दिये जायें, तो हममें भी बेहद फुरती और ताकत पैदा हो जाय। तीसरी बोतलमें एक जलती हुई मोमबत्ती डाल दीजिये। यह देखिये आपकी आँखें क्यों बन्द हुई जाती है। इस बत्तीका प्रकाश तो बिजलीके प्रकाशको भी मात करता है। कदाचित् कोई मनुष्य ऐसी

तरकीब निकालता कि साधारणतया मोमबत्तियाँ इतने तीव्र प्रकाशसे जलने लगतीं तो वह न कुछ कालमें मालामाल हो जाता। एक लकड़ीका फलीता लीजिये। उसे कुछ देर तक जलता रखकर बुझा दीजिये, फिर उसको सुलगना ही गैस-भरी बोतलमें डालिये। यह भकसे जल उठा और अत्यन्त तीव्र प्रकाश निकलने लगा। सारांश यह कि जो चीजें वायुमें मन्द प्रकाशसे जलती हैं वह इस गैसमें जिसे ओषजन कहते हैं अत्यन्त तीव्र प्रकाशसे जलती हैं और सुलगती चीजें उसमें पहुँचते ही भभक उठती हैं। यदि लोहेके तारके एक सिरेको पिघले हुए गन्धकमें डुबो दें और गंधकको जलाकर ओषजन भरी बोतलमें डाल दें तो लोहा भी कागजकी नाईं जलने लगेगा।



चित्र २

चीजें जैसे काठ, कोयला, गंधक आदि क्यों जलती हैं? यह प्रश्न बड़ा कठिन था, समस्या बड़ी विकट थी। जबसे मनुष्यने होश सँभाला सभ्यताकी पहली सामग्री—अग्नि—का बनाना सीखा, प्राय उसी दिनसे उसके दिलमें अग्निका असली भेद जान लेनेकी लालसा उत्पन्न हुई होगी। इसी प्रयत्नके फल स्वरूप अनेक सिद्धान्त हैं, जिनमें बहुत प्रख्यात दाह्यतत्ववाद (Phlogiston Theory) है। यह यूरोपीय वैज्ञानिक और दार्शनिकोंमें बहुत दिन तक प्रचलित रहा। वह समझते थे कि प्रत्येक जलनेवाले पदार्थमें एक दाह्य-तत्व नामक पदार्थ होता है, जिसके निकलते रहनेका नाम ही जलना है। जब निकलना बन्द हो जाता है जलना भी बन्द हो जाता

है। अन्तमें राख बच रहती है। जिन पदार्थोंके जलने पर कुछ राख नहीं बचती वह निरे दाह्य तत्वके बने होते हैं, जैसे मोम आदि। जलनेकी क्रियाको समीकरण द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते थे.—

पदार्थ=दाह्यत्व + राख

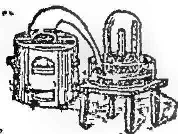
यह स्वतः सिद्ध है कि दाह्यतत्व निकल जानेके कारण राखका भार पदार्थके भारसे कम बैठना चाहिये। धातुओंके विषयमें भी यह सिद्धान्त माना गया.—

धातु=दाह्यत्व + भस्म

इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें यह कहा जाता था कि यदि गरम भस्मको दाह्यतत्व परिपूर्ण पदार्थोंके साथ गरम करें, जैसे सिंदूरको कोयलेके साथ, तो धातु बन जाती है.—

दाह्यत्व + भस्म=धातु

परन्तु पीछेसे मालूम हुआ कि धातु-भस्मों का भार प्राय ली हुई धातु से अधिक होता है, तब तो बडी कठिनाईका सामना हुआ। पर मनचले दाह्यतत्ववादियोंने यह युक्ति निकाली कि धातुमें से निकलने वाले दाह्यतत्वका भार ऋणात्मक होता है, अर्थात् उसके रहनेसे भार कम और निकल जाने से अधिक हो जाता है।


चित्र ३

इस अवस्थामें इस सिद्धान्तका हास्यजनक रूप बन गया था, अतएव वैज्ञानिकोंको उसमें श्रद्धा न रही। अनेक प्रयोगों

और वादविवादोंके उपरान्त लेवासियर महोदयने यह सिद्ध किया कि प्रीस्टली महोदय द्वारा आविष्कृत ओपजन वायुमें वर्तमान है। वायुमें प्राय पचमांश ओपजन और चार अंश नत्रजनके हैं। उन्होंने कुछ वायुमें पारा कई दिन तक गरम करके सिद्धकर दिया कि वायुका पचमांश उसके साथ मिलकर भस्म बना लेता है और भस्मके गरम करने पर फिर उतनी ही गैस पैदा हो जाती है। (चित्र ३)

साधारणतया, जलना केवल ओपजनके साथ सयोग हो जाना मात्र है। वानस्पतिक अथवा पाशव पदार्थोंके जलनेसे दो मुख्य पदार्थ बनते हैं—एक जल और दूसरा कर्बन द्विओषिद्। जलसे सभी परिचित हैं। कर्बन द्विओषिदका मुख्य गुण है कि वह चूनेके स्वच्छ जलमें घुल कर उसे दूधिया कर देता है। एक मोम बत्तीका टुकडा जलाकर मेज पर रखिये और उस पर एक कांच का साफ और सूखा गिलास औंधा दीजिये। थोड़ी ही देर में बत्ती बुझने लगेगी। उसकी लौ क्रमश घटते घटते गायब हो जायगी। इस समय आप देखेंगे कि जल वाष्प गिलासकी दीवालोंपर जम गई है। अब गिलास उठाकर झट चूनेका छना हुआ साफ पानी उसमें डाल दीजिये और हिलाइये। वह फौरन गदला हो जायगा।

जलना दो प्रकारका होता है, एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष। फास्फोरसका टुकडा काटकर चीनी या मट्टीकी प्यालीमें रख दीजिये। उसमेंसे धीरे धीरे धुआँ निकलने लगेगा। जहाँ जहाँ धुआँ होता है, वहाँ वहाँ अग्नि होती है। इस न्यायसे आगका होना मान सकते हैं; परन्तु एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। वह यह कि थोड़ी देरमें ही वह गलने लगेगा

असम्भव है। यह आहुति है प्राणकी अपानमें और अपानकी प्राण में—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायण ॥

इन दो यज्ञों द्वारा जो गरमी पैदा होती है उसीके सहारे हमारी ससार-यात्रा होती है। सच पूछिये तो जलचर, थलचर और नभचर सबके सब कट्टर हिन्दू हैं, चाहे वह हठधर्मीसे स्वीकार करें या न करें। प्रत्येक सांसमें करोड़ों ओपजनके अणु प्रवेश करते हैं। फेंफड़ेमें पहुंच रुधिरके कणोंसे इनकी मुठभेड़ होती है और यह उन्हें गरमकर, मैलको जला, शुद्ध करना आरम्भ कर देते हैं। प्रत्येक प्रश्वासमें फिर करोड़ों अणु बाहर निकलते हैं। इन्हें शरीर-रूपी भट्टीका धुआँ समझना चाहिये। होम्समहोदयने कहा है—

God has made
This world a strife of Atoms and Spheres,
With every breath I sigh myself away
And take my tribute from the wandering wind
To fan the flame of life's consuming fire

आइये, जरा शरीर-रूपी भट्टीमें ओपजनके भ्रमण पर जरा विचार करें। शरीरका प्रत्येक अंग असंख्य छोटे छोटे जीवोंसे बना है, जिन्हें 'सेल' (cell) अथवा कोष कहते हैं। वास्तवमें शरीर अनेक सैलोंका प्रजासत्ताक राज्य है। प्रत्येक सेल अपने आभ्यान्तरिक प्रबन्धके लिए स्वतंत्र है पर विदेशीय राज्योंके सबन्धमें उसके अधिकार कुछ नहीं है। उसे समस्त राज्यके सुप्रबन्धके लिए जो नियम बने हैं उनका भी पालन करना

ा है। जब वायु फॅफडोंमें पहुॅचती है तो यहाॅ रुधिरसे उसकी भेंट होती है। रुधिरके रक्त-कण इसका शोषण कर सुन्दर लाल वर्णके हो जाते हैं और हृत्पिंड-द्वारा प्रेरित हो शरीरका चक्कर लगाने लगते हैं। बारीक बारीक केशिकाओं द्वारा रुधिर शरीरके प्रत्येक कोष तक पहुचता है। वहा जो कछ मैल होता है उसे लेता हुआ, साफ करता हुआ, रुधिर फॅफडोंमें पहुचता है। लौटते हुए रुधिरका वर्ण नीला हो जाता और यह धमनियोंमें दिखलाई देता है। फॅफडोंमें पहुॅचने पर इसमेंका सब मैल ओपजन साफ कर देती है और यह फिर अपनी यात्रा पूर्ववत् आरम्भ करता है। रक्त कणोंमें एक पदार्थ होता है, जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं। यह ओपजनके साथ एक दुर्बल यौगिक बना लेता है। यह यौगिक जहाॅ आवश्यकता होती है अपनी ओपजन देकर सफाई कर देता है। शरीर रूपी म्यूनिसिपेलिटीके रक्त-कण महतरोंकी यह मशक हैं, जिनका ओपजन-पानी सफाईके काम आता है। पाशव पदार्थों (अन्न आदि खाये हुए पदार्थोंसे बने पदार्थों) का भस्मीकरण प्रत्येक कोषमें होता रहता है।

जिस समय वायुदेव शरीरमें प्रवेश करते हैं, प्रत्येक सेल फलपुष्पसे इनकी पूजा करनेको उद्यत रहता है। वायुदेव अग्निका रूप धारण कर उसे भस्मसात् करते हैं और कर्बन द्विओषिदके रूपमें बाहर निकलते हैं।

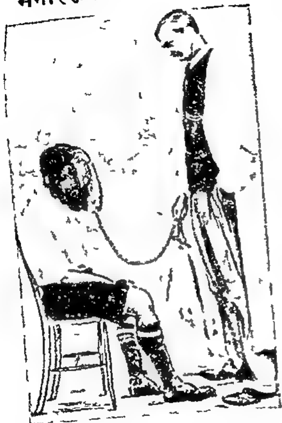
(बिना बलिदान किये कोई काम सिद्ध नहीं होता। शायद हमारे बहुत से दयालु मित्र देवीके मन्दिरमें बलिदान देखकर नाक-भौं सिकोडें, पर वायु देवीके सामने यह अपनी बोटियाॅ (कोष या सेल) काट काटकर चढाते रहते हैं, उसी बलि-

। यही कारण था कि प्रीस्टली महोदयकी चुहियां जनसे भरी बोतलमें पहुँचकर बडी फुरती दिखाने थीं।

यूरोपमें मेचोंमें, दौड़ोंमें और अन्य खेलोंमें प्रतिद्वन्द्वी व ओपजनका प्रयोग किया करते हैं। ओपजन पान कराने- विधि इस चित्र ४ में दिखलाई गई है। डा० लियोनर्डहिल अपने एक रोगीको ओपजन दे रहे हैं। ओपजन एक वर्तनमें सौ वायुमण्डलके दबावसे दबी हुई है। वहाँसे एक थैलेमें आती है। थैलेमेंसे एक कपडेमें पहुँचती है जिससे मरीज़का मुँह ढाँक दिया जाता है।

फुप्फुस प्रदाहमें फेंफडे पर्याप्त वायु नहीं खींचते, अतएव वायुके स्थान पर ओपजनमिश्रित वायु देनेसे अथवा ओपजनके पाँच पाँच मिनट पर पान करानेसे रोगीको फायदा होता है, अन्यथा रोगीके दम घुट कर मर जानेका भय रहता है। फुप्फुस प्रदाहमें रोगी इस रोगसे इतने नहीं मरते जितने पर्याप्त मात्रामें ओपजन न पहुँचनेके कारण विषैले पदार्थ, मैल आदिके पैदा हो जानेसे मरते हैं।

ओपजनके बलसे मनुष्य समुद्रके पेंदे पर, विषैली गैसोंसे भरी खदानों, मकानों आदिमें निर्भय जा सकता है। एक यत्र है कि जिसका आविष्कार फ्लूस और डेविसने किया था। इसकी क्रिया इस प्रकार होती है—मनुष्यकी पीठ पर दो वर्तन बाँध दिये जाते हैं, जिनमें दबी हुई ओपजन भरी रहती है। बगलमें लगे हुए एक पेंच-द्वारा ओपजन सामनेकी तरफ बँधे हुए रबरके थैलेमें एक समान वेगसे जाती रहती है। इस थैलेमेंसे दो नलियों मनुष्यके



चित्र ४ —(पृष्ठ १३)



चित्र ५ तथा ६—(पृष्ठ १४)

पड़ेगी। यही कारण था कि प्रीस्टली महोदयकी चुहियां आपजनसे भरी बोतलमें पहुँचकर बड़ी फुरती दिखाने लगी थीं।

यूरोपमें मैचोंमें, दौड़ोंमें और अन्य खेलोंमें प्रतिद्वन्द्वी प्राय ओपजनका प्रयोग किया करते हैं। ओपजन पान करानेकी विधि इस चित्र ४ में दिखलाई गई है। डा० लियोनर्डहिल अपने एक रोगीको ओपजन दे रहे हैं। ओपजन एक बर्तनमें सौ वायुमण्डलके दबावसे दबी हुई है। वहाँसे एक थैलेमें आती है। थैलेमेंसे एक कपड़ेमें पहुँचती है जिससे मरीज़का मुँह ढाँक दिया जाता है।

फुफ्फुस प्रदाहमें फेफड़े पर्याप्त वायु नहीं खींचते, अतएव वायुके स्थान पर ओपजनमिश्रित वायु देनेसे अथवा ओपजनके पाँच पाँच मिनट पर पान करानेसे रोगीको फायदा होता है, अन्यथा रोगीके दम घुट कर मर जानेका भय रहता है। फुफ्फुस प्रदाहमें रोगी इस रोगसे इतने नहीं मरते जितने पर्याप्त मात्रामें ओपजन न पहुँचनेके कारण ज़िपैले पदार्थ, मैल आदिके पैदा हो जानेसे मरते हैं।

ओपजनके बलसे मनुष्य समुद्रके पेंदे पर, ज़िपैली गैसोंसे भरी खदानों, मकानों आदियें निर्भय जा सकता है। एक यन्त्र है कि जिसका आविष्कार फ्लूस और डेविसने किया था। इसकी क्रिया इस प्रकार होती है—मनुष्यकी पीठ पर दो बर्तन बाँध दिये जाते हैं, जिनमें दबी हुई ओपजन भरी रहती है। बगलमें लगे हुए एक पेंच-द्वारा ओपजन सामनेकी तरफ बँधे हुए रबरके थैलेमें एक समान वेगसे आती रहती है। इस थैलेमेंसे दो नलियाँ मनुष्यके

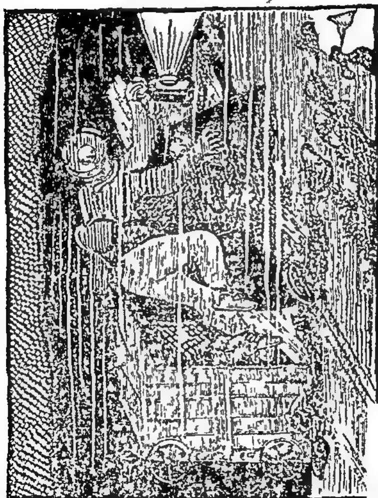
मुँह तक पहुँचती हैं। दोनोंमें भोडर (mica) की ढिबरी लगी रहती है। इनके कारण एक नलीसे ओषजन थैलेमेंसे मुँहमें जाती है (लौट नहीं सकती) और दूसरीसे मुँहमेंसे निकल कर थैलेमें पहुच जाती है। श्वास लेते समय ओषजन थैलेमेंसे मुँहमें पहुंच जाती है। साँस छोड़ते समय गदी हवा मुँहमेंसे निकल थैलेमें चली जाती है। थैलेमें कास्टिक सोडा रखा रहता है। यह प्रश्वास वायुको शुद्ध करके श्वासके योग्य बना देता है। (चित्र ५, ६)

गोताखोरोंको इस यन्त्रसे बड़ी सहायता मिलती है। कुछ दिन पहले गोताखोरोंका मुँह एक खोदमें बन्द कर दिया जाता था, जिसमें एक नली लगी रहती थी। यह नली बड़ी लम्बी होती थी। इसीमें होकर हवा ऊपरसे गोताखोर तक पहुचाई जाती थी। अतएव विचारे गोतेखोरको यह नली खींचनी पड़ती थी। फिर नलीकी लम्बाई पर ही उसके जानेकी सीमा निर्भर रहती थी।

१९३७ वि० में सेवर्न नदीके नीचे सुरंग खुद रही थी। एका एक एक तरफसे पानी आने लगा। मजदूरोंने समझा कि नदीका पानी किसी छिद्रमेंसे होकर आने लगा है और हम सबको डुबा देगा। यह देख वह बेतहाशा भाग उठे। और जल्दीमें लोहेके फाटक जिनसे पानीकी रोक होती थी बन्द करना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि ऊर्ध्वगामी * रास्तेमें १५० फुट पानी भर गया। पानीका निकाला जाना शुरू हुआ। बड़ी

* यह ऊर्ध्व विवर जिसमें खटोलों पर बैठकर पृथ्वीतलसे सुरंगमें प्रवेश करते हैं।

मुश्किलसे पानी २६ फुट तक उतरा, इससे नीचे उतरना असम्भव था। अब केवल एक उपाय था, वह यह कि लोहेका



चित्र ७

फाटक बन्द कर दिया जाय, जिसमें पानीका आना रुके। पानीके २८ हाथ नीचे पूर्ण अंधकारमें, प्राय. ३५० गज तक

जाना और दर्वाजा बन्द करना, बड़े साहस और जोखिमका काम था। इसके अतिरिक्त, रास्तेमें दो ठेले औंध गये थे, उनके ऊपर चढ़कर जाना था और दर्वाजेमें एक रेल अड गई थी, जिसे हटाकर दर्वाजा बन्द करना था।

लेम्बर्ट नामी गोतेखोरने हिम्मत की और पुरानी चालकी पोशाक पहन कर गया। पत्थरके ढोकों उलटी हुई गाडियों, बिखरे हुए औजारों परसे निकलता हुआ विचारा कोई २५० गज तक गया, पर आगे न जा सका। वायु-नलीकी १००० फुट लम्बाईको पीछे घसीटना असम्भव था, यद्यपि उसे दो आदमी ऊपरसे सरका रहे थे। फिर वायुनली उठकर सुरँगकी छतसे रगड़ खाने लगी, उसके मारे वह और भी परेशान होगया।

फ्लूस महोदयने, अपने यत्रको पहनकर जाने का साहस किया, पर उन्हे लौटना पडा, क्योंकि उन्हें अभ्यास न था और लेम्बर्टने तब इनके यत्रको पहन कर जानेकी ठान ली और दो बार प्रयत्न करने पर वहाँ तक पहुँचकर दर्वाजा बन्द कर आया। डेढ घटेके बाद लेम्बर्ट निकला। इस समय दर्शकोंकी उत्कण्ठा अत्यन्त उत्कट थी, पर जब उन्हें लेम्बर्ट बाहर आता दिखाई दिया तो उनके हर्षकी सीमा न रही। लेम्बर्टने बडे साहसका काम किया था। जिस जोखिमकी सम्भावना उसे थी वह भयकर थी। लफ्टेंट डेमेंट एडमि रेलटीके लिए इस यत्रकी परीक्षा कर रहे थे तो एकाएक उन्हें गश आगया और जब तक कि वह ऊपर खींचे जायें तब तक प्राणान्त होगया। ऐसी घटनाका लेम्बर्टके साथ हो जाना असम्भव न था।

ओपजनका उपयोग और भी अनेक प्रकारसे होता है। उज्जनके साथ जलानेमे ओपजन बडा ऊँचा तापक्रम पैदा करती है, जिससे सिक्ताके बर्तन, तार, प्लाटीनमके बर्तन आदि बनते हैं। इसी ओपोज्जन लोसे चूनेकी बत्ती गरम करके बडा तीव्र प्रकाश किया जाता है, जिसे लेमलैट (limelight) कहते हैं। एसीटिलीनके साथ मिलाकर इसको जलानेसे ऐसी लौ पैदा होती है, जिससे लोहेकी मोटीमे मोटी चद्दर इस सुगमतासे काट देते हैं जैसे कैंचीसे कागज। रासायनिक उद्योगोंमें भी ओपजनका उपयोग होता है।

वायुमें केवल पांचवां भाग ओपजनका है, यह बहुत गनीमत है। यदि वायुमण्डलमें निरी ओपजन होती तो बहुत शीघ्र महाप्रलय हो जाती, चर और अचर शीघ्र ही जल कर भस्म हो जाते। यदि कहीं वायुमें ओपजन आधी भी होती तो न खाना पकाना सम्भव होता, न शौकीनोंका चुरट पीना। तवे पर रोटी रखते ही वह कागजकी तरह जल जाती और चुरटको दियासलाई दिखाते ही चुरट तो फकसे जल ही जाती साहब (नकली होते चाहे असली, स्वदेशी होते या विदेशी) को भी मुँह बचाना मुश्किल हो जाता। वह मुँहकी खाते कि सदा याद रखते। दियासलाई भी कमसे कम एक गजकी बनानी पडती। हुक्की भी बिचारे वञ्चित रह जाते, चिलममें तमाखू फौरन भस्म हो जाती, पर तो भी उन्हें चुरटके शौकीनोंसे ज्यादा आनन्द मिलता। रसोईमें तवा और कढाइका बचाना मुश्किल होता।

थोडी देरके लिए मान लीजिये कि वायुमण्डलमेंसे ओपजन सहसा गायब हो जाती है। ऐसी घटनाके होनेके एक मिनट

बाद ही सब प्राणी तडपने लगेंगे और पांच मिनटके भीतर ही सब चहल-पहल परम निस्तब्धता और अकर्मण्यतामें बदल जायगी। पौधे और वृक्ष कुछ दिन तक अपनी हरियाली की छटा दिखलाते रहेंगे, पर अन्तमें उनका भी विनाश निश्चित है। क्या जल और क्या थल सभी पशुओं और प्राणियोंके शवोंसे ढक जायगे। बचेंगे तो केवल कुछ जीवाणु जो नत्रजन पर अपना जीवन-निर्वाह कर सकते हैं।

ओषजनको यदि सजीवन-मूरि कहें तो अत्युक्ति न होगी। मनुष्यको प्रतिदिन जहांतक हो सके नदीके किनारे या खुले मैदानों या बागोंमें अधिकांश समय बिताना चाहिये, जिसमें शुद्ध वायुका सेवन कर यथोचित लाभ मिले।

नमक और नमककी खानें



सारकी सभी सभ्य और असभ्य जातियां, नमकके नामसे और उसके उपयोगसे भली भांति परिचित हैं। जबसे मनुष्य जातिने होश सॅभला और अपनेको पशु, पक्षियोंसे उच्च कोटिका जीव कहना सीखा, तबसे ही नमकको काममें लाना सीखा। संसारमें बहुत थोडे ऐसे मनुष्य हैं, जो नमकको काममें नहीं लाते, पर वह भी जानवरोंका ताजा खून उसके नमकीन मजेके लिए ही पिया करते हैं।

वैज्ञानिकोंका विचार है कि पृथ्वीपर जीवनकी उत्पत्ति पहिले पहल समुद्रमें हुई होगी। इससे ही मनुष्यको क्या, प्रायः सभी पशु, पक्षियोंको भी, नमककी चाट स्वभावसे ही

है। इसका सबूत यह भी है कि सभी प्राणियोंके खूनमें (रुधिरमें) नमकका अंश पाया जाता है। दिलकी धड़कन भी प्रायः नमकके प्रभावसे ही होती है। हार्वेने, जिसने पहले पहल यह साबित किया था कि मनुष्यके शरीरमें रुधिरका संचार हुआ करता है, कई जानवरोंके दिलोंपर प्रयोग करते हुए, यह पाया कि यदि ऐसे किसी दिलको, जिसकी धड़कन बन्द हो गई हो, थूकसे छू दिया जाय, तो उसकी धड़कन फिर जारी हो जायगी। बादमें मालूम हुआ कि यह प्रभाव उस नमकका है जो थूकमें मौजूद है। पौधोंके तन्तुओंमें संचार करनेवाले रसोंमें नमक पाया जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि मनुष्य, पशु, पक्षी, पौधे, सभी जीवोंके लिए नमक कितना उपयोगी, अपरित्याज्य और अपरिहार्य है। इतना ही नहीं, वरन् हमारी सभ्यताकी नींव भी इसी नमककी बदौलत पड़ी। जबसे हजरत इन्सानने (मनुष्यने) कच्चा गोश्त खाना छोड़ा, गोश्त पकाकर खाना सीखा या नबातात (वनस्पति) खाना सीखा, तभीसे उन्हें नमककी जरूरत भी महसूस हुई। जो लोग समुद्रके किनारे या खास खास झीलों या तालाबोंके पास रहते थे, वह नमक बड़ी आसानीसे तैयार कर लेते थे और काममें ले आते थे, पर वह बिचारे जो ऐसी जगहों से दूर रहते थे, उन्हें नमक दस्तयाब न होता था। इस लिए उन्हें नमक लानेके लिए यात्रा करनी पड़ती थी, जिससे कि अंतर्जातीय (international) वाणिज्यकी नींव पड़ी और संसारकी समस्त ऐतिहासिक घटनाएँ बादमें हुईं।

जो जातियां कि केवल साग पात ही खाकर जीवन निर्वाह करती हैं, उनकी सदा ऐसी ही चेष्टा रही है कि लड़ भिड़कर

समुद्रतक अपना अधिकार जमालें या समुद्रतक पहुंच जायं। अफ्रीकामें थोडे दिन पहले एक मुट्ठी नमकमें एक गुलाम ख़रीदा जा सकता था। अब भी वहांके हवशी बाशिन्दे नमक को बड़े आदरसे देखते हैं और किसी धनवानका ज़िक्र करते हुए प्राय: उसकी तारीफमें कहा जाता है कि वह अपने सभी खानोंमें नमक मिलाता है, यानी हर किस्मके खानोंमें नमकका इस्तेमाल करता है।

जो वस्तु कठिनाईसे उपलब्ध होती है, उसे लोग श्रद्धा से और सत्कारसे देखते हैं। प्रयागराज़में रहते हुए बहुत से हमारे मित्रोंके घरोंमें गङ्गाजल न मिलेगा, पर यदि उनके परिवारोंमें जाकर उनके प्रान्तोंमें देखिये तो अवश्य एक आध घट गङ्गाजलका मिलेगा। यह सभी जानते हैं कि वहांपर गङ्गाजल कितनी चतुराईसे थोडा थोडा काममें लाते हैं। यही कैफियत उस ज़मानेमें थी, जब रेल गाडियां न थीं, स्टीम बोट न थी, जहाज़ न थे। तब नमक बडी श्रद्धासे देखा जाता था, जिसका सबूत अभीतक हमारे घरोंमें पाया जाता है। प्रत्येक हिन्दू घरमें बचपनसे सिखाया जाता है कि नमक न फैलाओ, खराब न करो, नहीं तो अगले जन्ममें, मरनेके उपरान्त पलकोंके बालो से (बरोनी) नमक बीनना पडेगा। क्या कभी भाई बहिनोंका 'राईलोन' होते नहीं देखा? यह भी उसी श्रद्धाका प्रमाण है, जिससे हिंदू नमकको देखा करते थे। मुसलमानोंमें, विशेषत अरबमें, अब भी नमककी सलनो (हमारे यहां जैसे सलूनोंमें खीर, सैमई उडाया करते हैं, वैसे ही उनके यहां भी एक त्योहार होता है) मनाई जाती है। ईसाइयोंमें इस त्योहारके

Covenant of salt *कहते हैं। यह भी ईसाइयोंका एक बड़ा मान्य त्यौहार होता है। मुसलमानोंमें यह त्योहार केवल ऐसे अवसरोंपर मनाया जाता है, जब उनका कोई सर्दार किसी तर्की पाशासे मित्रता कर लेता है। जहाँतक मेरा ख्याल है हिन्दुस्तानके मुसलमान इस त्योहारको नहीं मनाते।

क्या आपने अङ्गरेजी कहावत नहीं सुनी 'This is the salt of life-†' उससे नमक की उपयोगिता प्रतीत होती है। भारतवर्षमें नमक की आनने न जाने कितने स्वामि भक्त के, वीरता और अतुलित साहसके कार्य्य कराये हैं, जिनमेंसे थोड़ोंका ही उल्लेख इतिहासमें हुआ है, जो ससार भरकी जातियोंके इतिहास से अधिक गौरवशील और यशप्रद है। किस आनने लाखों राजपूतोंको राणाप्रतापका साथ देने पर कटिबद्ध किया, किस आनने लाखों राजपूतोंको अपनोंको पराया समझने और मुगलोंका राज्य स्थापित करनेपर मजबूर किया। किस आनके कारण पजावने भारतको अङ्गरेजोंके हाथसे निकलते निकलते बचाया। यह आन केवल नमककी थी।

महाशयो! अब देखना यह है कि वैज्ञानिकोंने इस नमक की नमकखारी कितनी की। इस बेचारेकी क्या सेवा की, इसको कैसे शुद्ध किया, इसे कैसे घर घर पहुँचाया और इससे क्या क्या लाभ उठाये। पहले इस प्रश्नपर विचार करना परमावश्यक है कि नमक कहाँ कहा पर पाया जाता है, और

कैसे तैयार किया जाता है। तदनन्तर यह बतलाऊँगा कि नमक वास्तवमें क्या है ।

नमककी सर्वव्यापकताका अभी कथन कर चुका हूं। कोई स्थान पृथ्वीपर नहीं है, जहां नमक मौजूद न हो। वास्तवमें नमककी इस सर्व व्यापकताके कारण रश्मि-चित्रद्वारा विश्लेषण करनेमें बड़ी कठिनाइयां होती हैं। समुद्रके जलमें नमक विद्यमान है। अन्दाजा लगाया गया है कि समुद्रोंमें १० सप, ८ पद्म मन (१,००८ ००० ०००,०००,०००,०००) नमक घुला हुआ है। यह सख्या यदि बोर्ड पर लिखी जाय तो आप इसे पढ़कर अङ्कगणितकी सभी सख्याओंका स्मरण कर लेंगे, पर इसका कुछ ठीक अनुमान न कर सकेंगे। मान लीजिये कि यह सब नमक समुद्रमें तले बैठ जाय तो समुद्रके पेंदेमें १७० फुट ऊची चट्टान बन जायगी, जो सारे समुद्रके पेंदे पर फैली हुई होगी। अगर मुमकिन हो और इस नमकको समुद्रके जलमें से निकाल लें और रूप जमीनके खुश्क हिस्सेपर, पृथ्वी तल-पर, रखनेका प्रयत्न करें तो आपको ४५० फुट ऊचा गोदाम बनवाना पड़ेगा। यह गोदाम पृथ्वीतल पर तिल भर जगह भी न छोड़ेगा। आपको अपने रहने सहनेकेलिए इस गोदामके ऊपर मकान बनवाने पड़ेंगे; पर तब तक जमीनसे वस्तुओंका प्राप्त होना मुश्किल हो जायगा क्योंकि जमीन तो खाली ही न होगी। या यों सोचिये कि समुद्रमेंसे नमक निकालकर पृथ्वीपर फैलाया जाय तो, पृथ्वी पर एक चट्टानकी नई तह ४५० फुट ऊची चढ जायगी।

समुद्रमें घुले हुये नमकके अतिरिक्त, पृथ्वीपर सकड़ो खानें हैं, जिनमें से कुछ छोटी हैं और कुछ इतनी बड़ी हैं कि

जिनसे नमक हजारों वर्षसे खोद खोद कर निकाला जा रहा है, पर इनका अन्त अभी तक नहीं हुआ। इन खानोंका फिर वर्णन करूंगा। समुद्रमें ४८००००० अडतालीसलाख वर्गमील (cubic miles) नमक है। पृथ्वी तलपर, अनेकानेक खानोंमें बन्द पड़ा हुआ नमक तीन लाख पच्चीस हजार (३२५०००) वर्गमील आयतनमें होगा। इसी थोड़ेसे नमकसे, जो पृथ्वीकी खानोंमें मौजूद है, सारी मनुष्य जातिकी आवश्यकताएं लाखों वर्षतक पूरी होती रहेंगी।

भारतवर्षमें नमकके बहुत से नाम हैं, जैसे नमक, निमक, लौन, नून, मीठा, मीठा अप्पू, सा, लवण, इत्यादि।

आयुर्वेदके आचार्य शुश्रुतने नमककी चार किस्में बतलाई हैं। आजकल भी, यद्यपि बाजारोंमें कोई तेरह तरहका नमक बिकता है, तदपि उनमेंसे मुख्य चार भेद ही हैं —

(१) सैन्धव अर्थात् सिन्ध नदीके पास पैदा होने वाला। इसको आजकल सेंधा नमक कहते हैं और यह पंजाबकी साल्ट रेंजसे (salt range) आता है।

(२) सामुद्र—समुद्रके जलसे बनाया हुआ।

(३) रोमक—रोमसे मंगाया हुआ या सांभर नमक।

(४) पांसुज—लवणमयी मिट्टीसे बनाया हुआ नमक।

बाजारमें जो तेरह तरहके नमक मिलते हैं उनके नाम यह हैं —

(१) पगा नमक, जो लिवरपूल, मिडिल्जबर्ग इत्यादि स्थानों से आता है। (२) हेम्बर्ग नमक। (३) अदन करकच नमक। (४) अदनका बारीक नमक। (५) स्वाया करकच। (६) स्वाया बारीक नमक। (७) सालिफ़का करकच। (८) सालिफ़का बारीक

नमक। (९) परशियाकी खाडीका नमक। (१०) बम्बई करकच। (११) स्पेनिश करकच। (१२) मदरासी करकच। (१३) मदरासी बारीक नमक।

संसारमें नमक तीन तरहसे बनाया जाता है। वास्तवमें शुश्रुतके चार प्रकारके नमक, रोमकको छोड़ कर विशेष रीतिसे बनाये हुए नमक हैं—

(१) सामुद्र समुद्रसे, (२) पांसुज लवणमयी मिट्टीसे (sub-soil), (३) सैन्धव-खानोंसे निकाला जाता है। भारतवर्षमें भी नमक तीनों तरीकोंसे निकाला जाता है। अब हम इन तीनों रीतियों पर विचार करेंगे।

समुद्रसे नमक निकालना

नमक तैयार करनेकी यह सबसे अधिक पुरानी विधि है। पहले ही मैं निवेदन कर चुका हूं कि जीवनके चिन्ह पहले पहल समुद्रमें दिखलाई दिये थे, वहां ही जीव उत्पन्न हुए थे। अतएव उन्हें नमकका स्वाद भी समुद्रके जलमें निरन्तर रहनेसे आने लगा। आज कल भी देखा जाता है कि जब समुद्रकी उथली उथली खाडियोंमें पानी सूख जाता है और नमक जम जाता है तो जङ्गलके पशुओंके झुण्डके झुण्ड वहां आकर नमक चाटा करते हैं। इन्हें ऐसे स्थानोंको चटौनी (salt licks) कहते हैं। कभी कभी जङ्गली पशु ५०० मीलतककी यात्रा करके नमक चाटने आते हैं।

इतिहासकालसे पूर्वके मनुष्य समुद्रके तटपर ऐसे गड्ढे बना लिया करते थे, जिनमें कि इच्छानुसार समुद्र का पानी ले लिया जाता था और नमक जमा लिया जाता था। इन्हें

नमककी क्यारियोंसे आधुनिक सामुद्र नमकके कारखानें शुरू हुए।

आधुनिक समयमें जिस रीतिका अवलम्बन किया जाता है, उसका अब मैं वर्णन करता हूं। समुद्रके तट पर पहिले ऐसा कोई गड्ढा तलाश किया जाता है, जो एक दीवार और फाटक लगाकर समुद्र से अलहदा किया जा सकता है। प्राय' समुद्रकी कुछ गहरी और सकड़ी शाखाएँ पृथ्वीमें घुसती हुई बहुत दूरतक चली जाती हैं। ऐसी जगह या किसी नदीके मुहानेके पास कोई जगह तलाश करली जाती है और एक दीवार खड़ी करके समुद्रसे इस हिस्सेको अलग कर लेते हैं। दीवारमें सदैव एक ऐसा फाटक लगा दिया जाता है, जिसके पटको ऊपर उठानेसे समुद्रका पानी उस भाण्डागारमें भर लिया जा सकता है। पानी भर चुकनेपर कई दिन तक उसी जल-भाण्डागारमें रहने दिया जाता है, जिसमें कि गाद सब नीचे बैठ जाय। इस दो तीन दिनके समयमें थोड़ा सा पानी उड़ भी जाता है।

तदनन्तर एक नली द्वारा पानी एक छोटेसे तालावमें चला जाता है, जो नमक जमानेकी क्यारियोंके पास ही होता है। प्रत्येक कारखानेमें नमक जमानेकी क्यारियोंके कई खेत या समूह रहते हैं। प्रत्येक खेत पहले खेतोंकी अपेक्षा निचाव या ढलावकी तरफ रहता है, जिसमें कि पानी ऊपरवाली क्यारियोंसे केवल ढलावके ही कारण आता रहे। उपरोक्त तालावमें से पानी क्यारियोंके पहले खेतमें आता है। यहा पर बड़ी विस्तृत क्यारियोंमें, जो केवल चार या पाच इञ्च ही गहरी होती हैं पानी सूर्य और वायुके प्रभावसे बड़ी शीघ्रतासे

सडने लगता है। क्यारियोंके पहिले खेतमें नमकका घोल अधिक गाढ़ा हो जाता है, पर नमकका जमना आरम्भ नहीं होता। यहांसे जब घोल दूसरे तीसरे या और नीचेवाले खेतोंमें पहुंचता है तो उसके ऊपरी भागमें पपड़ियां जमने लगती हैं। इन पपड़ियोंको इकट्ठा कर लेते हैं और क्यारियोंकी पाड़ पर रखते जाते हैं। ऐसा करनेमें दो लाभ हैं, एक तो यह कि जितना घोल कि नमकके साथ चला आता है, वह रिस रिसकर फिर क्यारियोंमें पहुंच जाता है, दूसरे यह कि जब काफी जमा हो जाता है, तब वहांसे हटाते हैं। इस प्रकार थोड़ा थोड़ा हटानेकी तकलीफ बच जाती है। यह नमक जो कि तैयार हुआ है, बहुत अशुद्ध है, क्योंकि इसमें मेग्निसियम हरिद ($MgCl_2$) मौजूद है। आपने प्रायः देखा होगा कि नमक बरसातमें पसीज जाता है। वास्तवमें नमक पसीजने वाली (deliquescent) वस्तु नहीं है, पर जो मेग्निसियम हरिद इसमें मिला रहता है, वह पानीको सोख लेता है और द्रवित होने लगता है। समुद्रसे निकाले हुए नमकमें ६ प्रतिशत मेग्निसियम हरिद रहता है। इसके दूर करनेका यह उपाय है:—नमकके बड़े बड़े ढेर लगा दिये जाते हैं और इनको घास फूससे ढक कर छप्परसे बचा देते हैं। छप्पर इन ढेरोंकी बरसातसे पानीसे रक्षा करते हैं और नमकको गलनेसे बचाते हैं, पर नमकमें मिला हुआ मेग्निसियम हरिद हवासे जलवाष्प सोखकर पसीजता है और गलकर बह जाता है।

समुद्र के पानीमेंसे नमक निकालनेके उपरान्त जो घोल शेष बच रहता है, पहले वह समुद्रमें बहा दिया जाया करता था, पर अब उसे ठंडा करके उसमें पोटासियम हरिद निकाल

लिया करते हैं। एक एकड़ भरमें फैली हुई क्यारियोंसे कोई १२०० मन नमक सालभरमें तैयार हो सकता है।



चित्र ८—नमककी क्यारियों क्यारियोंसे फावड़ेसे नमक इकट्ठा कर रहे हैं।

अबतक हमने इस बातपर विचार किया है कि पानी उड़ाकर नमक निकाला जा सकता है। ऊपर जो विधि बतलाई गयी है उसमें पानी सूर्यकी गरमी से उड़ाया गया है। जहां ईंधन

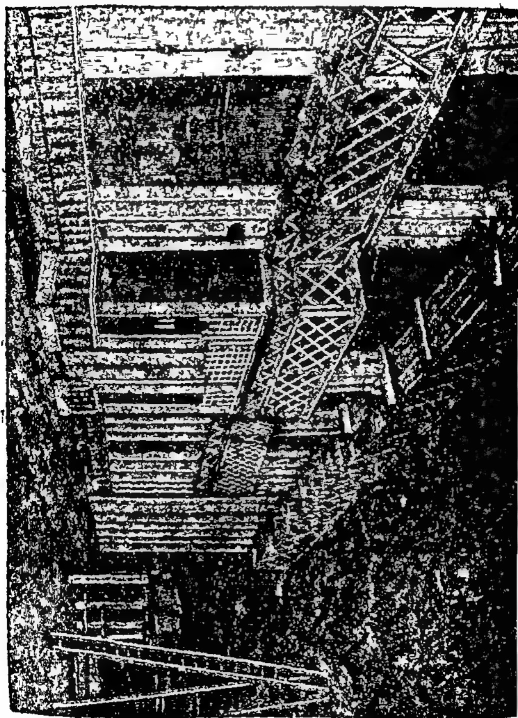
सस्ता होता है। वहांपर अन्तमें गाढ़े घोलको औटाकर नमकके रवे जमाना आसान है। ठडे देशोंमें नमकके घोलको ठंडा किया जाता है। बहुत ठण्ड देनेसे घोलमेंसे पानी जम जमकर अलग होने लगता है। घोलमें इस प्रकार नमककी मात्रा बढती जाती है, जब घोल काफी गाढा हो जाता है, तो उसे कडाहोंमें औटाकर नमक निकाल लेते हैं।

खानोंसे नमक निकालना

खानोंसे नमक निकालनेकी कई तर्कीबें हैं, जो खानकी स्थिति, नमककी तहकी निचाई, ईंधनके भाव और मजदूरोंकी मजदूरीपर निर्भर हैं। कहीं कहीं तो नमक खानोंसे खोदकर निकाल लिया जाता है, कहींपर पानी खानमें पहुचाया जाता है। यह नमकको घुला लेता है। फिर नमकका घोल पम्पोंद्वारा निकालकर उससे नमक तैयार कर लेते हैं। कहीं कहीं प्रकृति देवी स्वय पानी पहुचा देती हैं, यह पानी या तो किसी खानमें पहुचकर नमकका अच्छा घोल तैयार कर देता है, जोकि मनुष्यों द्वारा निकाल लिया जाता है, या स्वय घोल बन कर पृथ्वी तलपर किसी झरनेके स्वरूपमें आ उपस्थित होता है। इन तीनों विधियोंपर अब हम विचार करेंगे।

ससार भरमें सबसे बडी नमककी खान आस्ट्रिया देशान्तर्गत, गेलिशिया प्रान्तमें है। इसका नाम वाईलिकजाकी खान है। कहा जाता है कि इसमेंसे बहुत ही शुद्ध नमक निकलता है। नमककी तह १२०० फुट मोटी बीस मीलसे अधिक चोड़ी और पांच सौ मीलके लगभग लम्बी है। इन्सानी चूहोंने पृथ्वीके गर्भमें नमककी चट्टानोंको काट काटकर ६०० वर्षसे भी अधिक समयमें एक देदीप्यमान नगर तैयार कर

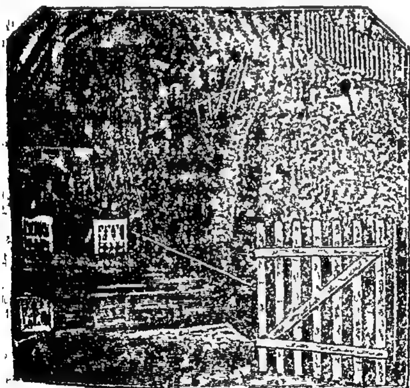
लिया है। विस्चुलाकी (Vistula) कार्पेथियन घाटीमें, क्रेको रेलवेसे कई मीलकी दूरीपर, यह शहर पृथ्वीके अन्दर बना हुआ है। कभी आपने बिल्लौरके और मणियाके बने हुए नगरोंका हाल सहस्र रजनी चरित्रमें (अलिफ लैला) शायद पढ़ा होगा, पर वास्तवमें अगर ऐसा शहर आप देखना चाहें तो यह नगर जाकर देखिये। इस नगरमें, मकान गली, कूचे, रेलवे स्टेशन, मन्दिर, गिरजे, तालाब, इत्यादि अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएं खालों नमककी बनी हुई हैं। यहांके निवासी सूर्य्य देवताके उपासक नहीं हैं, वह शक्तिके—विद्युच्छक्ति, परमशक्तिके—उपासक हैं, अतएव यद्यपि सूर्य्य भगवानने इन्हें अपनी रश्मियोंसे वंचित रखा है, तदपि महामाया भगवती विद्युच्छक्ति, इन्हें सहारा दिये हुए हैं। बिजलीकी लम्पों, मशालों और हन्डोंके तीव्र प्रकाशमें कुल शहर मणि जटित सा प्रतीत होता है। इस नगरमें प्रवेश करनेके लिए कई लिफ्ट (lifts) हैं, पर एक जीना भी नमकमें काटकर बनाया गया है। इस जीनेपर चढ़ने उतरनेमें प्रकाशके परावर्तनसे अनूठा और अद्भुत दृश्य देखनेमें आता है। करीब करीब दो हजार आदमी इसमें दिन रात काम करते हैं। प्रत्येक मजदूर ॥।) रोज पैदा कर लेता है। सं० १३०८ से वि० इस खानमें काम जारी है। पर कहना चाहिये कि अभी सेरमें पोनी भी नहीं कटी। यहांके मजदूरोंको मूर्त्तियां बनानेका बड़ा शौक है। इस खानमें हज़ारों मूर्तियां बनी हुई हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें इसी खानमें एक गिरजा बनाया गया था जो अभीतक मौजूद है। इस गिरजेसे दो सौ कदमकी दूरीपर एक गुम्बद बनी हुई है, जिसमें अनेक मूर्तियां नमककी चट्टानोंमें तराशी हुई हैं। इसी तहखानेमें एक राज



चित्र १०—रेलवे स्टेशन

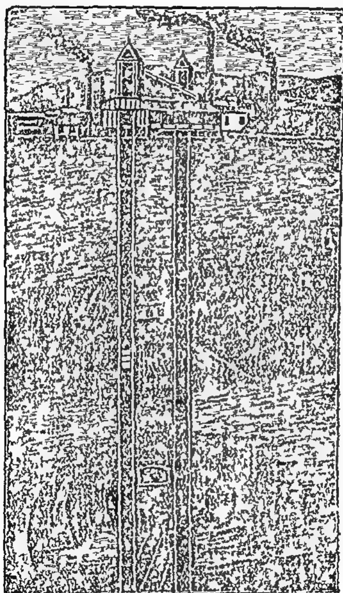
एक ही विवरमें कई सुरंगे भिन्न भिन्न ऊंचाइयोंपर मिलती हैं। इस प्रकार खानमें एकके ऊपर एक करके कई सुरंगें होता हैं। एक ऊर्ध्व विवरका चित्र यहांपर दिया जाता है। इस विवरमें दो सुरंगें आकर मिली हैं। विवरमें कई डोल फांसे हुए हैं। सेलोनिकामें ऐसे एक विवरसे २३ लाख मन नमक प्रति वर्ष निकाला जाता हैं। (देखिये चित्र १०)

किसी सुरंगको जब खोदना आरम्भ करते हैं, तो बीच बीचमें मोटे मोटे खम्भे छोड़ते जाते हैं, जिससे छत न टूट



चित्र ११-में एक नहर दिखलाई गई है, जिसमें एक नावपर कुछ मनुष्य सैर कर रहे हैं। इन नहरोंमें प्राकृतिक झरनोंका पानी आता रहता है।

जाय। कहीं कहीं छत कायम रखनेकेलिए लकड़ीकी बड़ी मोटी मोटी वल्लियां भी काम आती हैं। इतना इन्तजाम रखनेपर



चित्र १२—ऊर्ध्वगामी रास्ते और सुरंगें

भी कभी कभी छत टूटकर सैकड़ों आदमी दबकर मर जाते

हैं। जिन झीलोंका ऊपर जिक्र हुआ है उनमें भी कभी कभी बाढ़ आ जाती है और सबसे नीचों सुरंगोंमें काम करनेवाले डूब जाते हैं।

झीलोंमें बाढ आनेसे डूब मरना, आग लगना सेकडों-हजारों मनके पत्थरोंके गिरनेसे चूर्ण हो जाने आदिका भय रहते हुए भी इन खानोंमें हजारों मनुष्य काम करते और रहने लगते हैं। वहीं उनके बच्चे पैदा होते हैं वहीं उनका विवाह हो जाता है और बडे होकर वहीं वह अपने बाप दादोंका काम करते रहते हैं।

खारी झरनोंमें नमक निकालना

वर्षाका पानी जमीनमें रिस रिसकर बहुत नीचेतक पहुच जाता है। जितनी वस्तुएं इसमें घुली हुई होती हैं वह सब पृथ्वीकी ऊपरी तहमें ही रह जाती हैं। तीन चार फुट नीचे तक जानेमें पानी शुद्ध हो जाता है। इससे और भी अधिक नीचेतक पहुचनेपर, जब कोई कडी चट्टानसे जाकर पानी टकराता है, तब ऊपरकी ओर आनेकी कोशिश करता है। कभी कभी तो पृथ्वीतलतक आ पहुचता है, पर प्राय: पृथ्वीतलसे कुछ दूर ही रह जाता है। पहिली अवस्थाएँ सोते, चश्मे, झरने आदि बन जाते हैं। दूसरी अवस्थामें कूए खोदनेपर पानीको इकट्ठा होनेको स्थान मिल जाता है और फिर निकाला जा सकता है।

अब यह सोचना चाहिये कि यदि पानीको इस यात्रामें नमककी कोई तह मिल जाय तो क्या होगा। स्पष्ट है कि झरनेका पानी बहुत ही खारी हो जायगा। ऐसी अवस्थामें कुएका पानी भी खारी निकलेगा। झरने या कुएके खारी पानीसे नमक बनाना भी सम्भव है।

भारतवर्षमें खारी झरने और कुए बहुत मिलते हैं, पर इनसे नमक नहीं बनाया जाता।

इङ्गलैण्डमें पुराने जमानेमें बहुत खारी झरने थे, पर अब वह झरने पृथ्वीतलतक नहीं आते। झरनोंसे पानी पम्पद्वारा खींच लिया जाता है और ईंटके तालावोंमें भर दिया जाता है। यहांसे नमकका घोल छनकर दूसरे हौजमें जाता है। इस हौजमेंसे घोल फैक्ट्रीके अन्दर पम्प कर दिया जाता है। ४० फुट लम्बी और २२ फुट चौड़ी कड़ाहियोंमें घोल औटाया जाता है। कहीं कहीं दुगनी बड़ी कड़ाहियां भी होती हैं।

खानोंमेंसे नमक निकालनेकी दूसरी तर्कीब

जब नमक पृथ्वीतलसे बहुत नीचाईपर मिलता है, तो वहांतक ऊर्ध्व विवर बनानेमें बड़ी कठिनाई होती है। दर्हममें (Durham) नमककी तह पृथ्वीतलसे १००० फुट नीचे है। वहांपर दस इन्च व्यासवाला एक छेद बर्मोंसे किया गया है। इस छेदमें, कुछ दूरतक लोहेकी नली लगा दी है जिसमें मिट्टी खिसककर छिद्रके बन्द हो जानेका भय न रहे। इसके बीचमें एक नल ४½ या ३½ इन्च व्यासका लगा हुआ है। इन दोनों नलोंके बीचके स्थानमें होकर पानी ऊपरसे डाला जाता है यह पानी नीचे नमककी तहतक पहुंचता है और नमकको घुला लेता है। फिर छोटी नलीमें होकर यह घोल पम्पोंद्वारा निकालकर गरम किया जाता है, जिससे नमक निकल आता है।

इस रीतसे नमक बनाना खतरेसे खाली नहीं है। यह आपको स्मरण होगा कि नमककी खानोंमें प्रत्येक सुरंगमें

बड़े बड़े खम्भे छोड़ दिये जाया करते हैं। यहांपर नमककी तहकी तह गला ली जाती है, अतएव ऊपरकी जमीन जगह जगहसे धसने लगती है। इसलिए ऊपर पृथ्वीतलपर या तो जमीन फटने लगती है या बैठ जाती है।

चेशायरमें घर या उनकी चिमनियां बहुत कम सीधी पाई जायगी। दर्वाजे और खिड़कियां ऐसी टेढ़ी मेढ़ी हो रही हैं मानों कारीगरोंने सोते में बनाई थीं। मकानोंके फर्श तो बिलकुल खेतोंकी क्यारियोंकी तरह दिखलाई देते हैं। जमीनके धसनेसे बड़े गड्ढे हो गये हैं। जहां पहिले हरियाली लहलहा रही थी, वहा अब पानी बहता दीखने लगा है। किसी समयमें यह पानी भी जमीनमें घुसकर उन स्थानोंको भर लेगा, जहा पहले नमककी तहें जमी हुई थीं।

हिन्दुस्थानमें प्रति वर्ष चार करोड, तेतीस लाख साठ हजार मन नमककी खपत है। इसमेंसे तीन करोड मन तो यहा ही पैदा हो जाता है, और डेढ करोड मनके लगभग विदेशसे आता है। भारतवर्षमें जितना नमक बनता है उसमेंसे ६१ = /° तो समुद्रके जलसे निकाला जाता है, २७₀/° सांभर आदि झीलोंसे निकाला जाता है और ११ २₀/° खानोंसे निकाला जाता है।

भारतवर्षमें सबसे बड़ी खान खेवड़ामें (Khewra) है। इसका नाम मेयो—खान (Mayo Mines) है। कोहाट, मंडी वरछा और काला बागमें भी नमककी खानें हैं।

खेवड़ामें नमककी तह ५५० फुट मोटी है, पर शुद्ध नमककी तह केवल २७५ फुट मोटी है। वरछामें तह केवल २० फुट मोटी है।

ब्रह्मदेश और मदरासमें नमक समुद्रके पानीसे ही बनाया जाता है, बम्बई और सिंधमें भी ८०/° नमक समुद्रके पानीसे ही बनाते हैं।

लवणमयी मिट्टीसे नमक निकालना

एक और उपाय नमक बनानेका जिसका, अभी तक मैंने वर्णन नहीं किया है, वह है, जिसमें नमक लवणमयी मिट्टीसे बनाते हैं। समुद्रमें जितना नमक है वह पृथ्वीतलपरसे ही बह बह कर गया है और जमा हो होकर इतना अधिक हो गया है। पृथ्वीतलपर बहुत से ऐसे भी स्थान हैं जहांका पानी समुद्रतक नहीं पहुंचने पाता। अतएव इन स्थानोंका पानी किसी नीची जमीनमें इकट्ठा होता जाता है। राजपूतानेका बहुत कुछ पानी हजारों वर्षोंसे समुद्रतक न पहुंचकर सांभर झीलमें एकत्रित होता रहा है। अतएव सांभरमें हजारों वर्षोंसे नमक इकट्ठा हो रहा है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि अरावलि पर्वत मालाके बीचमें यह बड़ा भारी निचाव (depression) था, जिसमें ७५ फुटके करीब मिट्टी, नमक, कंकड़ और चूनेकी तह जमा हो गई है। इस मिट्टीमें २ से लगा १२ प्रतिशत तक नमक पाया जाता है। वर्षामें ६० वर्गमीलतक दो या तीन फुट गहरा पानी इस झीलमें इकट्ठा हो जाता है। यह पानी थोड़े दिनोंमें पूर्व सञ्चित मिट्टीमसे नमक निकाल लेता है और नमकका अच्छा खासा घोल तैयार हो जाता है।

१९२८ वि० से लेकर अबतक सांभरमेंसे ११ करोड मन नमक तैयार हो चुका है, लोगोंका ख्याल है कि अब सांभर झीलमें पहलेका सा शुद्ध नमक नहीं निकलता पर प्रयोगोंसे

सिद्ध हुआ है कि नमक लगभग उतना ही शुद्ध है, जितना कि पहले था। यह बात अवश्य है कि हर साल झीलमें मिट्टी बहुत चली आती है, जिससे कि पहिले की लवणमयी मिट्टी ढकती जायगी। अनुमान लगाया गया है कि ऊपरकी १० फुट मिट्टीमें इतना नमक मौजूद है कि आगामी ३०० वर्ष पर्य्यन्त उत्तरीय भारतके लिए काफी होगा। सांभर जयपुर और जोधपुरके बीचमें स्थित है। जोधपुरमें पचभद्रा और डिडवाना में भी नमक निकाला जाता है।

नमक क्या है ?

नमक एक ठोस धातु सोडियम और एक पीली गैस हरिनत संयोगसे बना हुआ पदार्थ है। यदि इन दोनोंका अलग अलग सेवन किया जाय तो कुछ और ही आनन्द मिले। सोडियम जीभपर रखते ही आग ले जाय और जीभ और मुंह दोनोंको जला दे। उतानपर खार बन जाय, जा खानेपर आंतोंको भी फाड़ दे। हरिनकी तो बू ही निराली है। यदि उसे थोड़ी देर दूरसे भी सूघें तो मरम दर्द हो जाय, अधिक देर तक सूघने पर तो मृत्यु निश्चय है। सुनते हैं कि चार साल पहले जो इफ्लुएजा सारे संसारमें फैला था, उसका मूल कारण रणक्षेत्रमें हरिनसे भरे बम्ब गोलोंका प्रयोग था। ज्यों ज्यों यह गैस संसारमें फैलती गयी त्यों रोग भी फैलता गया। ऐसी वस्तुओंके संयोगसे नमक जैसी उपयोगी वस्तु बनी है। आप जरा उस समयका ख्याल करें जब संसारमें उत्तप्त गैसें भरी हुई थी और गैसें ठंडी होकर तारों ग्रहों और सूर्योंके केन्द्र मात्र बन चुके थे। उस समय पृथ्वी पर समस्त पदार्थ वायु रूपमें ही थे। कुछ अधिक ठंडे होनेपर लोहे, चांदी

आदि पदार्थोंकी वर्षा हुआ करती थी, पानी न बरसता था। उस समय, विचार कीजिये कि पृथ्वीपर यदि हरिनसे मिल कर नमक बनानेके लिए सोडियम विद्यमान न होता, तो क्या होता ? सोडियम तो खैर किसी न किसी पदार्थके साथ मिल ही जाता, पर हरिन मुक्त दशामें पृथ्वीपर हवामें मिली हुई किलोलें मारती होती और पृथ्वीपर जीवोत्पत्ति असम्भव कर देती। इस पृथ्वीकी दशा ही निराली होती। न गुलाबकी लाली, न रङ्ग बिरंगे फूलोंकी मनमोहनी रंगत, न तरह तरहके रंग इस संसारमें दिखाई देते। हरिन सबको शहादतका लिबास पहनाकर चित्रकारीका नाम संसारसे मिटा देती।

अब भी हम लोगोंको हरिनके इस गुणसे लाभ उठाना पडता है। सफ़ेद कागज या सफेद कपडे बनानेमें पीली घास या मटीले सूतको हरिनसे ही सफेद करते हैं। नमकका जब विश्लेषण किया जाता है तो सोडियम और हरिन पैदा होते हैं। सोडियमसे कास्टिक सोडा बना लेते हैं और हरिनसे विरञ्जकचूर्ण। नमक और भी कितने ही व्यवसायोंमें काम आता।

उस सुदूर कालमें यदि सोडियमके साथ मिलकर लवण बनानेके लिए हरिन न होती तो वायुमण्डलमें जो पञ्चमांश ओषजनका विद्यमान है, उसे भी सोडियम सोख लेता और पृथ्वी जीवन शून्य होती। ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा ने इस जुगल जोडीको बहुत सोच विचार कर बनाया था।

नमक एक मुख्य खाद्य पदार्थ है, जिसके बिना जीना असम्भव है। प्रकृतिके आदर्श खाद्य पदार्थ दूधमें इसका अंश होना उपरोक्त कथनका बडा भारी सबूत है। परन्तु स्मरण रहे 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। ज्यादा नमक खाना भी हानिकर

होता है। गत युद्धमें जब और जीवाणु-नाशक पदार्थोंका मिलना कठिन होगया था तो डाक्टरोंने लवणके घोलका ही प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। घावोंको नमकके घोलसे ही धोते थे। बारीक पिसा हुआ नमक यदि मञ्जनके स्थान पर काममें लाया जाय तो बड़ा उपयोगी साबित होगा। मसूड़े फूले हों या दांतमें दर्द हो तो कड़वे तेल और नमकके प्रयोग-से बड़ा लाभ होता है।

नमकका प्रयोग गरम बर्तनों पर रोगन (hot glaze) करने-में भी होता है। साबुन बनानेमें भी उसे पूर्णतया घोलमेंसे निकाल देनेके उद्देश्यसे नमकका प्रयोग किया जाता है। साबुनका बोझ बढ़ानेके लिए भी इसको मिला देते हैं।

अंगोंके झुलस जाने पर नमक और नारियलका तेल मल देनेसे फायदा होता है।

जलकी मनोरञ्जक गाथा

१—वरुण लोककी उत्पत्ति



जसे करोड़ों, अरबों वर्ष पहिलेकी बात है कि हमारी यह शस्य श्यामला वसुंधरा उस महान नीहारिकासे अलग नहीं हुई थी, जिससे कि सारे सौर मंडलकी उत्पत्ति हुई है। ज्यों ज्यों यह नीहारिका ठंडी होती गई इसका आयतन कम होता गया और वह सिमट सिमटकर केन्द्रकी ओर हटने लगी। साधारण नियमानुसार इसका बाहिरी भाग अधिक शीघ्रतासे

ठंडा होने लगा और इसीसे उसका विशिष्ट गुरुत्व बढ़ने लगा। कुछ काल व्यतीत होने पर इसका गुरुत्व इतना अधिक हो गया कि इसके लिए नीहारिकाके साथ साथ उसके केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाना असम्भव हो गया। अतएव यह बाहिरी हिस्सा नीहारिकासे अलग होकर उसके केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। आरम्भमें इसका आकार छल्लेकासा गोल था और यह नीहारिकाको चारों तरफसे घेरे हुए था। पर अधिक ठंडे होने पर इसमें भरा हुआ स्थूल पदार्थ एक जगह इकट्ठा होने लगा और कई लाख वर्षमें एक अलग गोला बन गया। इसी प्रकार नीहारिकासे समय समय-पर चक्राकार भाग अलग हो होकर गोलाकार रूप धारण करके, नीहारिकाकी परिक्रमा करने लगे। इस प्रकार सारे संसारके ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई और जो अंश बच रहा, वही इन सब ग्रहोंका केन्द्र स्थान ही सूर्य कहलाने लगा। सम्भव है यह क्रियायें इस समय भी जारी हों और इनके फल स्वरूप भविष्यमें अन्य नये ग्रहोंकी उत्पत्ति हो।

जिस प्रकार सूर्यसे ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई उसी भांति ग्रहोंसे उपग्रहोंकी हुई। यहां पर यह सब कथा कहनेका यह अभिप्राय है कि पृथ्वीकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है और चन्द्रमाकी पृथ्वीसे। जिस समय पृथ्वी सूर्यसे अलग होकर उसकी परिक्रमा देने लगी, उस समय यह बिल्कुल वायवीय रूपमें थी। धीरेधीरे यह ठंडी होने लगी और एक ऐसा समय आया जब धातुओं और चट्टानोंकी वर्षा उसी भांति होती थी, जिस भांति आजकल पानीकी होती है। उस जमानेमें वायुमंडलका दबाव इतना ज्यादा था कि आजकल उसका अन्दाजा करना

भी कठिन है। प्रति वर्ग इञ्चपर लगभग २८० मनका दबाव था। नीहारिकामें जो ओषजन और उज्जन विद्यमान थीं उनके संयोगसे जल उत्पन्न हुआ और यह पृथ्वीके उत्तप्त पिण्डको वाष्पकी अवस्थामें घेरे हुआ था। जब पृथ्वीका तापक्रम ३७०° श हो गया तो यह वाष्प जलका रूप धारण करके पृथ्वीपर बड़े वेगसे गिरने लगी। स्मरण रहे कि गैसोंका यह नियम है कि वह एक विशेष तापक्रमसे ऊपर कितना ही दबाव उनपर क्यों न डाला जाय, द्रवावस्थामें परिणत नहीं होती। इस विशेष तापक्रमको सङ्कट-तापक्रम (Critical Temperature) कहते हैं। यह जुदा जुदा गैसोंके लिए जुदा जुदा होता है, जल वाष्पके लिए यह ३७०° श है। अतएव २८० मन प्रति इंचका दबाव रहते हुए भी जल वाष्प जलमें नहीं परिणत हुई थी। परन्तु जब पृथ्वीका तापक्रम ३७०° श हो गया तो सब जल वाष्प सहसा जल रूप धारण कर लाखों धाराओंके वेगसे पृथ्वीकी ओर चली। उस समय ऐसा प्रतीत होता होगा कि प्रलय कालके मेघ जल रूपी अग्निकी वर्षा कर रहे हैं। परन्तु पृथ्वी तलका तापक्रम बहुत ऊंचा था, इसीसे उस पर जल पड़ते ही बड़े बड़े स्फोटन होने लगे और बड़ा भयङ्कर नाद उत्पन्न हुआ। जलता एक चूल्हेपर, आग निकाल कर चूल्हेमें पानी डाल दीजिये, फिर देखिये चूल्हेकी गति क्या होती है। या गरम तवे पर पानी छोड़ दीजिये, फिर तमाशा देखिये कि पानी कैसा नृत्य दिखाता है। यही कैफियत उस समय हुई थी। उत्तप्त पृथ्वीपिण्ड पर इतने गरम पानीकी जब वर्षा हुई तो पानी वाष्पमें परिणत होकर फिर वायुमण्डलमें जा मिला और पृथ्वी तलपर बड़े

बड़े तूफान और अंधड पैदा कर गया। इसी भांति पानी
उलट फेर लगभग १०० वर्ष तक जारी रहा (लार्ड केल्विम
यही अनुमान है, पर अर्रिनियसका कहना है कि कि
सूरतमें भी १००० से अधिक वर्ष इस परिवर्तनमें नहीं ल
होंगे)। अन्तमें सब वाष्प जलमें परिणत हो पृथ्वीपर एकत्रि
हो गई। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि वायु मण्डल
बिल्कुल ही वाष्प न रही, सब पृथ्वीपर आ गिरी। वास्तव
पानीका वाष्पमें परिणत हो बादलोंका बनना और बारि
होना, उसी भांति जारी रहा, जैसे पहले था और अब भी है
परन्तु पहिले पृथ्वीतल पर जल ठहरता ही न था, पर इ
जमानेमें ही अधिकांश जल पृथ्वी तलपर ही एकत्रित
गया। उस समय वर्तमान समयसे हजारों गुनी ज्यादा बारि
हर रोज हुआ करती थी। सम्भवत: आरम्भमें यह जल पृथ्
तलपर फैल गया और हर जगह इसकी गहराई समान
रही, पर पृथ्वीके ठंडे होनेके कारण इसका आयतन कम होत
गया और इसका पृष्ठ तल कहींसे ऊंचा और कहींसे नीच
हो गया। जहां जहां यह निचान आ गये वहां अधिक पान
जमा हो गया और समुद्र और सागर उत्पन्न हो गये। पृथ्वी
आन्तरिक भयङ्कर परिवर्तनसे भी पृष्ठ तलमें अनेक परिवर्त
होते रहते हैं, इस कारण भी पृष्ठ तलकी असमानता पैदा हो
सकती है।

इस प्रकार आजसे करोड़ों अरबों वर्ष पहले वरुणलोक—
समुद्रों और सागरोंकी—उत्पत्ति हुई थी। समुद्रके तटपर खड
होकर जब मनुष्य अपनी दृष्टि दौड़ाता है और उसके ओर
छोरका पता लगानेका मानसिक प्रयास करता है तो उसक

अनन्त विस्तार, असीम गम्भीरता और अज्ञेय प्राचीनताका विचार कर बुद्धि थक जाती है। जब उसके गर्भस्थ गूढ रहस्यों और उसकी पर्वताकार तरङ्ग मालाओंकी शक्तिका मनन कर मन अकर्मण्य हो जाता है, तब मनुष्य ईश्वर अथवा प्रकृतिका गुण गान करके गदगद हो जाता है। काल तू बड़ा बली है! तू संसारकी समस्त चीज़ोंको बनाता बिगाड़ता रहता है, परन्तु समुद्रके आगे तेरी भी कुछ पेश नहीं जाती। भूगर्भ शास्त्रके किसी समयका भी विचार कीजिये, तब भी तरङ्ग मालाधारी हमारा यह वनमाली अपनी वंशी बजाता और कभी कभी सुदर्शन चक्र नचाता नजर पड़ता ही रहा है। उसकी सदा वही मस्ताना चाल, वही टेढी चितवन, वही निर्मल नीलिमा युक्त आभा मनको लुभाती नजर आती रही है, परन्तु तूफान रूपी शिशुपालके सामने आने पर वह भयङ्कर रूप धारण कर बातकी बातमें बड़े बड़े परिवर्तन कर डालता है।

Time writes no wrinkles on thy azure brow
Such as Creation's dawn beheld, thou rollest now

— Byron

पृथ्वीके इतिहासमें यदि कुछ परिवर्तन हुए हैं तो पृथ्वीमें, समुद्रमें नहीं। जिन किनारोंसे समुद्र की लहरें टकरा कर किलोलें किया करती हैं, वह अनेक बार बदल चुके हैं। धन धान्य सम्पन्न द्वीप और महाद्वीप अनेक बार द्वारकापुरीकी तरह जल मग्न हो चुके हैं और उनके स्थान पर आज भी समुद्र सिंहनाद कर रहा है। टेनीसनने कैसा अच्छा कहा है,—

अब बतलाइये ऐसी कौनसी चीज बची, जिसमें प्रवेश नहीं कर पाता ? इसीसे यह हमारा दृढ विश्वास सृष्टिके आदिमें जितना पानी पृथ्वी तलपर मौजूद था, अब बहुत कम मौजूद है। समुद्रोंका आयतन बराबर चला जा रहा है। प्रतिवर्ष करोड़ों मन पानी वाष्प समुद्रकी सतहसे वायुमण्डलमें पहुँचता है; वहां जाकर में बदल जाता है। जब बादल बरसते हैं तो यही जल पृथ्वीतल पर गिरता है और उसका शोषण आरम्भ हो है। इसका बहुत कुछ अश तो नदी, नालों, झरनों आदि समुद्रमें जा मिलता है, परन्तु कुछ अश सदाके लिए पृ कठोर पृष्ठके अवयवोंके साथ मिल जाता है। इस बेचारे समुद्रोंकी सम्पत्तिका हरण प्रतिवर्ष होता रहत अनन्तकालसे समुद्रका जल इस भाँति बराबर घट र अनुमानत समुद्रोका एक तिहाई जल अब तक गाय चुका है और बहुत सम्भव है कि भविष्यमें एक ऐसा आय, जब समुद्र खाली हो जायँ और उनकी वही द जाय जो ग्रीष्ममें छोटे छोटे पोखरोंकी हुआ करती है।

समुद्रकी तलहटीमें कितना पानी रम जाता है उसमें प्रवेश कर कहां पहुचता है और उसका क्या परि होता है ? यह प्रश्न बड़े महत्वके हैं और इनके समझ प्रकृतिके गूढ रहस्योंका पता चलता है।

क्या कॉचमें पानी प्रवेश कर सकता है ? यदि स पेंदा काँचका बना होता तो क्या पानी उसमें जज्ब न हो साधारणतया पानी केवल मसामदार (Porous) पद ही प्रवेश कर पाता है, परन्तु यदि पानीका दबाव

बढ़ा दिया जाय तो पानी उन चीजोंमें भी प्रवेश कर जाता है, जो प्राय मसामदार नही मानी जातीं, जैसे काच आदि। कई वर्ष हुए सयुक्त राज्यअमेरिकाके जहाजी बेडेके कुछ अफसर समुद्रकी पैमाइश कर रहे थे। उन्होंने यह देखा कि यदि मोटी दीवालोंवाली खोखली काचकी गेंद पानीमें फांस दी जाती है, तो बाहर निकालने पर उनके भीतर पानी भरा मिलता है। कांच न कहींसे चटखता है न टूटता है, पर पानी कांचकी मोटी तह भेदकर अन्दर पहुँच जाता है। उन्होंने यह भी देखा कि जितनें अधिक नीचे तक यह गेंदें उतारी जाती हैं, उतना ही अधिक जल गेंदोंमें भर जाता है। इन गेंदोंकी अणुवीक्षण यन्त्रोंसे परीक्षा की गई। पर कहीं किसी भाँतिका छेद दिखाई नहीं दिया। अतएव यही मानना पडता है कि पानीके दबावके कारण, जो १५००० पौण्ड प्रतिवर्ग इञ्चसे शायद ही कुछ कम होगा पानी काँचको भेदकर बडे भरमें गेंदके अन्दर पहुँच गया। इस परीक्षासे यह सिद्ध हुआ कि कांच जैसे पदार्थमें भी पानी, दबाव अधिक होनेपर, प्रवेश कर जाता है।

अब सोचिये कि समुद्रकी तलहटीपर कितना अधिक दबाव रहता है। स्पष्ट है कि यह दबाव गहराईके अनुपातमें होगा। जितना अधिक गहरा समुद्र होगा उतना ही अधिक दबाव होगा। एक मीलकी गहराई पर पानीका दबाव २८ मन प्रति वर्ग इंच होता है। अर्थात् यदि आप एक मीलकी गहराई पर एक पैसा हाथमें थामकर ऊपरकी ओर उठाना चाहेंगे तो आपको इतना बल लगाना पड़ेगा जितना २८ मन बोझ उठानेमें लगता है। जहा छ मील गहराई है वहां तो आपको इतना बल लगाना पड़ेगा जितना १६८ मन बोझके

उठानेमें लगाना पड़ता है। अब सोचिये कि यदि समुद्रका पेंदा कांचका भी बना देवें तो क्या पानी उसमें ठहरता ? फिर मट्टी और ककडकी क्या हैसियत है ? उनमें होकर लाखों करोड़ों मन पानी रिसकर भीतरकी ओर बडे वेगसे जा रहा है। फिर यह कहां जाकर ठहरता है ?

पृथ्वीका ऊपरी पृष्ठ तो ठंडा होकर कठोर हो गया है, परन्तु ज्यों ज्यों इसके भीतर आइये तापक्रम चढता जाता है। अनुमानतः यह ठोस ऊपरी पर्त छः मीलसे ज़्यादा मोटा नहीं है। इसके बाद लाल लाल दहकता हुआ भाग आ जाता है। इस तहकी मोटाई भी १० मीलसे अधिक न होगी। इसके नीचे श्वेत उत्तप्त * भाग आता है, जिसकी गहराई ३० मील से अधिक शायद ही हो। उसके नीचे उत्तप्त द्रव और गैसें भरी हुई हैं। पानी रिस रिस कर २० से लेकर ४० मील नीचे तक चला जाता है, जहां कि उसका सामना श्वेत उत्तप्त पदार्थोंसे होता है। वहां यह वाष्पमें परिणत हो जाता है और बडे बड़े धडाके होते हैं। अन्तमें यह वाष्प या तो पानीमें फिर आ मिलती है या किसी एक स्थानपर इकट्ठी हो, धरतीको हिला देती है और बडे बडे उपद्रव खड़े करती है।

---

* जब किसी चीजको गरम करते हैं तो पहिले उसका रङ्ग हल्का लाल दिखाई पडता है। तापक्रम बढ़ने पर वह खूब लाल हो जाता है। अत्यन्त उत्तप्त होने पर अन्तमें रङ्ग सफेद हो जाता है ? किसी आलीके लेम्प, किटसन लेम्प, की ओर देखिये। उसकी जाली बिलकुल श्वेत वराम्न होती है। बुझने पर देखिये कि पहले लाल सुर्ख, फिर हलकी सुर्ख और अन्तमें प्रकाशहीन हो जाती है।

यदि उपर्युक्त सिद्धान्त ठीक है तो बड़े बड़े भूचाल उन्हीं प्रदेशोंमें होने चाहियें, जहां अधिक पानी पृथ्वीमें प्रवेश करता है अर्थात् उन प्रदेशोंमें जहां समुद्र बहुत गहरा है, क्योंकि जहां समुद्र बहुत गहरा होता है वहां ही अधिक पानी पृथ्वीमें प्रवेश करता है। जापानके पूरबमें अलूशियन द्वीप समूहके पास, दक्षिणी अमेरिकाके पश्चिममें गुआम (Guam) के पास, सेमोआ (Samoa) और न्यूजीलेण्डके बीचमें समुद्र बहुत गहरा है। अतएव क्या आश्चर्य है कि इन्हीं प्रदेशोंमें बड़े बड़े भूचाल आते हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि वर्षाका बहुत सा जल मट्टी, चट्टानें और खनिज पदार्थ सोख लेते हैं। समुद्रके पेंदेमें भी पानी प्रवेश करता है, परन्तु ३० या ४० मीलसे अधिक नहीं जाने पाता। गरम तहोंमें पहुंच कर, वहांसे लौट फिर ऊपर आ निकलता है। जमीनका अन्दरूनी गरम हिस्सा पानीके सोखे जानेमें इस तरह एक रुकावट पैदा करता है। सृष्टिके आदिमें यह उत्तप्त भाग ऊपरी सतहसे लगा हुआ ही था, इसलिए पृथ्वीका समस्त जल ऊपरी पृष्ठ तलपर ही था। परन्तु ज्यों ज्यों पृथ्वी ठंडी होती गई और यह उत्तप्त भाग सकुचित होता गया और पृष्ठ तलसे दूर होता गया, त्यों त्यों अधिकाधिक पानी पृथ्वीमें पैठने लगा। अबसे करोड़ों वर्ष बाद जब पृथ्वीका भीतरी भाग भी उतना ही ठण्डा हो जायगा जितना ऊपरी पृष्ठतल है तब तो सारे समुद्रोंका जल पृथ्वीमें इस प्रकार घुस जायगा, जैसे स्पंजमें। उसीके कुछ समय पीछे सारा वायु मण्डल भी पृथ्वी रूपी क़ब्रमें दफन हो जायगा और पृथ्वी

घोर स्मशानसे भी अधिक भयानक हो जायगी। इन वाक्यों को लिखते समय, चिड़ियोंका मधुर गान सुनाई दे रहा है। अरुणोदय हो रहा है। सूर्यकी किरणें कमरेमें आकर नववधूके समान, धीरे धीरे लज्जा त्याग अपना मनोहर रूप दिखला रही हैं। पश्चिममें बहुत दूरतक अनेक प्रकारके पेड़ मस्त हाथियोंकी तरह झूम रहे हैं और उनमेंसे बहुत से पृथ्वीपर सुमन वर्षा कर रहे हैं, मानों अपनी धात्रीकी पूजा प्रात काल उठकर कर रहे हैं। यह सुहावना दृश्य बहुत दूर तक चला गया है और कोई दस मीलकी दूरीपर पहाड़ियोंकी पंक्तितक अपनी छटा दिखा रहा है। पहाड़ियोंके ऊपर हम्य ऐसे श्वेत वर्ण बादल दिखलाई दे रहे हैं। देखते देखते ही इनमें भी पूरबकी लालिमाका प्रकाश दिखलाई देने लगा, मानों मित्रका सकट देख मित्रका दिल दुखी हो रहा है।

यह दृश्य उस अनन्त भविष्यमें, जब जल और वायु दोनों पृथ्वीमें समा जायगे, कहां देखनेमें आयगे ? न पृथ्वीपर फल फूल होंगे न पशु न पक्षी, न नदियां होंगी न नाले। परन्तु इस दृश्यको देखनेवाला भी कोई प्राणी न होगा। केवल सूर्य भगवान इस महा प्रलयके दृश्यको देखा करेंगे। यह दशा चन्द्रलोककी पहिले ही हो चुकी है। आप जब चाहें तब उसे देख सकते हैं। चन्द्रमामें जो बुढिया आपको बैठी नजर आती है, वह वास्तवमें मृतज्वालामुखी और जलशून्य समुद्र है। टेनिसनने लिखा है.—

Where never creeps a cloud or moves a wind
Nor ever falls the least white star of snow,
Nor ever lowest roll of thunder moans,
Nor sound of human sorrow mounts to mar
Their sacred, ever lasting calm

बरफके चमत्कार

बरफका जादू



आजकल गरमियोंके दिन हैं। लाखों मन बरफ सभ्य संसारमें नित्य प्रति बनाई जाती और खर्च होती है। इसका सबसे बड़ा चमत्कार तो यही है कि इसने करोड़ों आदमियोंपर मोहिनी डाल रखी है। बाजारमें शामको जाकर देखिये शर्बत, सोडा, लेमनेड, लैमजूस, स्ट्रावेरी, रसभरी की कैसी बहार दिखाई देती है। इन सबका मुकुटमणि बरफ निर्गुण ब्रह्म की नाईं सर्वव्यापी हो रहा है। गरीब मजदूर जो दिन भर परिश्रम कर पाच आनेके पैसे लेकर आता है, वह भी एक पैसेकी बरफ पीकर अपनी तृष्णा बुझाता है। पर क्या वस्तुत बरफसे तृष्णा बुझती है? सच पूछिये तो बरफके इस्तेमालसे प्यास दुगनी लगती है, हाजमा खराब होता है और स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंकी खूब ही हत्या होती है। बरफके कारखानेमें चलकर रेलमें लदना, स्टेशनोंपर पड़ा रहना, बुरादेका भडु-कोंपर सुलाया जाना—यह सब कार्य स्वच्छताके नमूने हैं। कहां हैं अर्थशास्त्रके प्रचारक, वह आयें और देखें कि कितना सद् व्यय होता है, उस देशमें जहां करोड़ों आदमियोंको खाने तक को नहीं मिलता!

जब कभी ओले गिरते हैं, बालक, बुड्ढे, जवान सभी दौड़ कर उठा उठा खाने लगते हैं। फिर उन्हें होश नहीं रहता

कि कहा गिरते हैं, कहांसे उठाते हैं और संसारमें कोई ऐसे भी व्यक्ति हैं या नहीं, जिनकी इस समय हानि हो रही है। यह यदि बरफ या ओलोंके मोहनास्त्रका प्रभाव नहीं तो क्या है?

बरफका बनना

इसी बरफके विषयमें कुछ विचार करना उचित जान पडता है। यह सभी जानते हैं कि बरफ पानीका रुपान्तर है। पानीको जब बहुत ठण्ड पहुँचती है तो वह बरफमें परिणत हो जाता है। शिमला आदि पहाडी प्रदेशोंपर जहां बहुत सरदी पडती है, बरफकी प्राय वर्षा हुआ करती है। मैदानोंमें भी जिस वर्ष सर्दी बहुत पडती है रातको पानीकी बरफ बन जाती है। तालाबों और झीलोंके ऊपर बरफकी तह जम जाती है। पर प्राय. यह देखनेमें आता है कि केवल ऊपरकी तह ही बरफमें परिणत होती है। इसका कारण यह है कि ज्यों ज्यों पानी ठण्डा होता जाता है, त्यों त्यों उसका गुरुत्व बढता जाता है। अतएव जब बहुत ठण्ड पडती है, तो ऊपरकी तह ठण्डी होकर अर्थात् भारी होकर नीचेके अधिक गरम पानी, हलके पानी, में डूब जाती है, और नीचेका हलका पानी ऊपर आ जाता है। यह भी ठडा होकर नीचे बैठ जाता है इस तरह यह सिलसिला जारी रहता है, यहा तक कि कुल झीलका पानी ४° श तक ठडा हो जाता है। अब यदि ऊपरकी तह ४° श से भी अधिक ठडी हुई तो फिर वह ऊपरकी ऊपर ही बनी रहती है, क्योंकि ४° श से अधिक ठडे पानीका गुरुत्व कम होता है। या यों समझिये कि पानीका गुरुत्व, जैसे जैसे उसका तापक्रम घटता जाता है ४ श तक बराबर बढता जाता है, पर ४° शसे नीचे यह क्रम पलट जाता है और गुरुत्व फिर



चित्र १३—होपका प्रयोग (Hope's Experiment)। बीच के लम्बे गोल पीपे में पानी भर दीजिये उसके बीचों बीच जो बाहर की तरफ कुण्डी बनी हुई है, उसमें बरफ और नमक मिला कर भर दीजिये। बीच का पानी ठंडा होगा, उसका गुरुत्व बढ़ जायगा, उस की गति के कारण पानी में हलचल शुरू हो जायगी, नीचे का गरम पानी ऊपर को आयगा और ऊपर का ठंडा पानी नीचे को जायगा। नीचे का तापमापक बतलाता रहेगा कि वहां तापक्रम नीचा है। ऊपर का तापक्रम अधिक मिलेगा। यह क्रम तब तक जारी रहेगा जब तक कि दोनों तापमापक ४°श का तापक्रम बतलाने लगेंगे। तदुपरान्त नीचे का तापमापक ४°श ही बतलाता रहेगा और ऊपर का ०°श तक उतर जायगा यही चिल्ले के जाड़े में झीलों और तालाबों में होती है।

(देखिये पृष्ठ ५७)

घटने लगता है। इसी कारण यद्यपि कुल झील, ताल आदिका तापक्रम जलकी तापग्राहक धाराओंके कारण ४°श तक उतर जायगा, परन्तु इससे भी ज्यादा ठंड हुई तो ऊपरकी तह ही ठंडी होकर बरफमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे जाड़ोंमें या सरदी पड़नेपर झील आदिके ऊपर बरफकी तह जम जाती है, परन्तु इसके नीचे ४°श तापक्रमका पानी बना रहता है। इस बरफके बननेके बाद भी नीचेका पानी धीरे धीरे ठंडा होता रहता है, परन्तु उसके ठंडे होने और जमनेमें उपरोक्त क्रियासे हजार गुना समय लगता है, क्योंकि बरफ और पानी दोनों तापके कुग्राहक हैं। जहां बरफ और पानी (४°श तापक्रम वाला) मिलेंगे, वहा बरफ गलेगी और पानी ठंडा होगा पर बरफके गलनेसे जो पानी बनेगा वह बरफके साथ सटा हुआ होगा और धीरे धीरे फिर बरफमें परिणत हो जायगा। यह सिलसिला जारी तो रहेगा, परन्तु इसकी चाल बहुत धीमी होगी। [देखिये चित्र १३ तथा १४]

प्रकृति जलीय जीवोंकी रक्षा कैसे करती है ?

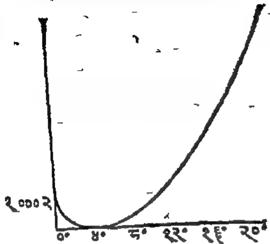
प्रकृति जीवोंकी रक्षा करनेके कैसे अद्भुत उपाय निकाला करती है। कदाचित साधारण मीठे पानीका गुरुत्व सबसे ज्यादा ४°श पर न होता और ४ शके नीचे इसी भांति बढता चला जाता तो झीलें और नदियां जाड़ोंमें ऊपरसे नीचे तक एक दम ठोस हो जातीं और उनमें विचरनेवाले कछुए, मेंढक, मछली आदि जीव मर जाते। परन्तु पानीके उपरोक्त गुणके कारण विचारे जलीय जीव बरफकी चादरसे ढके हुए पानीमें रहकर अपनी जान बचा लेते हैं। इस प्रकार बरफके अन्दर बन्द हो जाने पर इन जीवोंके श्वासोच्छ्वास क्रियाके लिए

श्रोपजन कहांसे मिलती है ? प्रकृतिने इसका भी प्रवन्ध कर दिया है। वायु पानीमें घुलती रहती है। पानीका एक गिलास भर कर धूपमें रख दीजिये, थोड़ी देरमें आप देखेंगे कि गिलासकी दीवारोंपर छोटे छोटे बुद बुदे जम गये हैं। यह बुद बुदे उस वायुके होते हैं जो पानीमें घुली रहती है। इसी घुली हुई वायुका पान कर वरफमें कैद हुए जलीय जीव जीते रहते हैं। कुछ जीव कछुवे मेंढक आदि तो समाधि लगा जाते हैं। इस समाधि क्रियाको पाश्चात्य पंडित (Hybernation) 'हिवरनेशन' कहते हैं। समाधिमें जीवन-क्रियाएँ वहुत सूक्ष्म हो जाती हैं। यही कारण है कि वरसात खतम होने पर या नदियोंके सूख जाने पर कुछुए, मेंढक आदि धरती खादकर पचास पचास हाथ नीचे तक पहुच जाते हैं और वहां निस्तब्ध होकर पड़े रहते हैं। जब वरसात फिर आती है तो यह भी निकल आते हैं।

वरफ़ जमाना

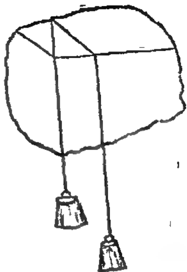
वरफ ०° श पर गलती है, इसीसे इस तापक्रमको वरफका द्रवण विन्दु कहते हैं। इसे जमाव-विंदु भी कहते हैं, क्योंकि जब कभी वरफ वनती है तो उसका तापक्रम ०° श होता है। पर यह साफ साफ समझ लेना चाहिये कि पानीको ०° श तक ठंडा करनेसे वरफ नहीं वनती। वरफ वनानेके लिए यह जरूरी है कि पानीका तापक्रम —१०°श से —५°श तक हो जाय। तब कहीं वरफका वनना आरम्भ होता है। परन्तु जिस समय वरफ वननी शुरू होगी तापक्रम ०° श हो जायगा। इसका कारण यह है कि जब पानीसे वरफ

बनती है तो गरमी पैदा होती है। यह गरमी तापक्रमको बढा देगी, जो –५° श या –१०° श से ०° श हो जाता है। १ ग्राम पानी जब बरफमें परिणत होगा तो ८० कलारी (तापकी इकाई) गरमी पैदा होगी। अब मान लीजिये कि आपने एक बर्तनमें १०० ग्राम पानी लेकर उसका तापक्रम–१०° श कर दिया। अब यदि १२ ग्राम पानीकी बरफ बन जाय, तो १२×८०= ९६० कलारी गरमी पैदा होगी, जो सब पानीका तापक्रम ०° श कर देगी। अब फिर पानीका तापक्रम–१०° श हो जाना चाहिये तब फिर १२ ग्राम बरफ बन जायगी। इस प्रकार बरफ बनाने के लिए–१०° श तक पानीको बहुत देर तक ठंडा रखना पडता है। नवलकिशोर बरफखाना, लखनऊमें बरफ ७२ घंटेमें तय्यार होती है। भार्गव बरफखाना आगरेमें ४८ घंटेमें। तापक्रम –१०° श या इससे भी नीचा रखनेके लिए द्रवित अमोनियाका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जो गरमी द्रवसे ठोस बननेमें पैदा होती है, या जो ठोससे द्रव बननेमें अदृश्य होती है गुप्त ताप कहलाती है, क्योंकि इस गरमीसे पिघलनेवाले पदार्थका तापक्रम नहीं बदलता। आप एक गिलासमें पानी और एकमें पानी और बरफ रखकर गरम कीजिये। पानीका तापक्रम बराबर बढता चला जाता है, पर बरफ और पानीवाले गिलासका तापक्रम, जब तक बरफ उसमें रहती है, ०° श ही बना रहता है। गरमी दोनों गिलासोंमें पहुँचती है, पर एकमें तापक्रम बढता है, दूसरेमें नहीं। इसका कारण यही है कि बरफके गलनेमें वह गरमी खर्च हो जाती है। इसी भांति द्रवसे वाष्प बननेमें गरमी गुप्त हो जाती है और वाष्पसे द्रव बननेमें ताप प्रकट होता है।



चित्र १४—तापक्रम और आयतन का सम्बन्ध

चित्र १४ में तापक्रम और आयतन का संबन्ध बतलाया है। ०°श पर यदि १ घन सेंटी मीटर पानी लें तो उसका आयतन ४° श तक घटेगा और तदुपरान्त बढ़ता चला जायगा। अतएव गुरुत्व ४° श तक बढ़ेगा और तदुपरान्त घटने लगेगा। (देखिये पृष्ठ ५७)



चित्र १५—बरफ के ढेले पर यदि एक तार रख दिया जाय और उसके दोनों सिरों से भारी बोझ बाँध दिया जाय तो तार ढेले को काटता नीचे उतर जायगा, पर ढेले में दरार न पड़ेगी। (देखिये पृष्ठ ६२)

बनती है तो गरमी पैदा होती है। यह गरमी तापक्रमको बढ़ा देगी, जो –५° श या –१०° श से ०° श हो जाता है। १ ग्राम पानी जब बरफमें परिणत होगा तो ८० कलारी (तापकी इकाई) गरमी पैदा होगी। अब मान लीजिये कि आपने एक बर्तनमें १०० ग्राम पानी लेकर उसका तापक्रम–१०° श कर दिया। अब यदि १२ ग्राम पानीकी बरफ बन जाय, तो १२×८०= ९६० कलारी गरमी पैदा होगी, जो सब पानीका तापक्रम ०° श कर देगी। अब फिर पानीका तापक्रम–१०° श हो जाना चाहिये तब फिर १२ ग्राम बरफ बन जायगी। इस प्रकार बरफ बनाने के लिए–१०° श तक पानीको बहुत देर तक ठंडा रखना पड़ता है। नवलकिशोर बरफखाना, लखनऊमें बरफ ७२ घंटेमें तय्यार होती है। भार्गव बरफखाना आगरेमें ४८ घंटेमें। तापक्रम –१०° श या इससे भी नीचा रखनेके लिए द्रवित अमोनियाका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जो गरमी द्रवसे ठोस बननेमें पैदा होती है, या जो ठोससे द्रव बननेमें जज्ब होती है गुप्त ताप कहलाती है, क्योंकि इस गरमीसे पिघलनेवाले पदार्थका तापक्रम नहीं बदलता। आप एक गिलासमें पानी और एकमें पानी और बरफ रखकर गरम कीजिये। पानीका तापक्रम बराबर बढ़ता चला जाता है, पर बरफ और पानीवाले गिलासका तापक्रम, जब तक बरफ उसमें रहती है, ० श ही बना रहता है। गरमी दोनों गिलासोंमें पहुँचती है, पर एकमें तापक्रम बढ़ता है, दूसरेमें नहीं। इसका कारण यही है कि बरफके गलनेमें वह गरमी खर्च हो जाती है। इसी भांति द्रवसे वाष्प बननेमें गरमी गुप्त हो जाती है और वाष्पसे द्रव बननेमें ताप प्रकट होता है।

समुद्रका पानी कैसे जमता है ?

जो कुछ ऊपर बतलाया गया है वह केवल शुद्ध जलके सम्बन्धमें ठीक है। समुद्रके जलकी दशा कुछ विचित्र ही है। शुद्ध पानी ०°श पर बरफमें परिणत हो जाता है, परन्तु पानीमें कुछ घोल दिया जाय तो यह कठिनाईसे जमता है। उसके जमानेके लिए ०°श से नीचे तापक्रमकी आवश्यकता पड़ती है। जितनी अधिक मात्रा उसमें घोल दी जायगी उतना ही अधिक नीचा तापक्रम उसके जमानेके लिए चाहिये। नमकका सम्पृक्त घोल —२३°श पर जमता है। साधारण समुद्रका जल —२८°श पर जमता है। समुद्रका जल लेकर यदि ठंडा किया जाय तो उसका गुरुत्व बढ़ता जाता है, यहां तक कि वह अन्तमें —२८°श पर पहुंच कर जम जाता है। शुद्ध पानीकी तरह उसके गुरुत्व बढ़नेका क्रम पलटता नहीं है।

इसीसे जब वायुमण्डलका तापक्रम घटने लगता है, समुद्रकी ऊपरकी तहोंका जल ठंडा हो कर नीचे चला जाता है और नीचेका गरम पानी ऊपर आजाता है। यह क्रम बराबर जारी रहता है। अतएव सबसे अधिक ठंडा जल समुद्रकी तलैटीमें मिलता है और ऊपर सतहपर नीचेकी अपेक्षा गरम पानी रहता है। इसीसे समुद्र में बरफका बनना तलैटी-में आरम्भ होता है। शुद्ध जलकी नाईं ऊपरी तहपर बरफ नहीं बनती।

प्रकृतिकी अद्भुत चतुराई

अब जरा सोचिये कि समुद्रकी तलैटीमें बरफका बनना आरम्भ हुआ। यदि बरफ पानीसे हलकी न होती तो क्या

परिणाम होता। मान लीजिये कि किसी वर्ष तलैटीमें बरफ जमा हो जाती। गरमीके मौसममें केवल ऊपरका जल ही गरम होने पाता, क्योंकि एक तो जल गरमीका कुवाहक है दूसरे, गरम होकर, पानीसे हलका होनेके कारण ऊपर ही उतराता रहता है। इस प्रकार प्रति वर्ष पेंदेपर जमी हुई बरफकी मात्रा बढती जाती और अन्तमें कोई ऐसा समय आता जब समुद्र जम जाता। फिर गरमियोंमें केवल ऊपर ही ऊपर थोडी सी बरफ गलकर पानी बन जाया करता। बाकी सब समुद्र कठोरावस्थामें रहता। जो बरफ गरमियोंमें पिघल कर पानी बनता वह फिर जाडेमें बरफ बन जाता और इस भाँति गरम देशोंको छोड समस्त समुद्र जम जाते।

बरफपर दबावका प्रभाव

बरफका एक बडा डला (कोई दो सेरका) लीजिये। उसे किसी लकडी चीजपर जमाकर रख दीजिये। फिर एक तार लेकर उसके दोनों सिरोंमें दो दो सेरके बाट बांध दीजिये और तारको बरफपर इस प्रकार रख दीजिये कि बांट दोनों तरफ लटकते रहें। बहतर हो अगर तारके ऊपर एक और बरफका टुकडा रख दिया जाय। दस पन्द्रह मिनट बाद देखिये तो तार बरफमें आध अगुल धसा हुआ मिलेगा। तारके ऊपर बरफ ज्योंकी त्यों बे टूटी मिलेगी। फिर यह तार बरफको बिना तोड़े कैसे बरफमें घुस गया? उसको देखने से तो ऐसा मालूम पडेगा, मानों किसीने बरफमें छेद करके तार पिरो दिया हो। इसका कारण यह है कि दबाव ज्यादा होनेसे बरफका द्रवण बिन्दु घट जाता है। साधारण दबाव पर बरफ ०°श पर गलने लगती है, इससे नीचेके तापक्रमों पर नहीं

गलती। परन्तु यदि अधिक दवाव डाला जाय तो और नीचेके तापक्रमों पर भी गलने लगती है।

तारका दवाव बरफपर पड रहा है, दवाव बढ़नेसे नीचे की बरफ गल जाती है, क्योंकि इस बढ़े हुवे दवावके कारण उसका द्रवण बिन्दु ०°श से भी कम हो जाता है, गलकर पानी ऊपर आजाता है और दवाव हट जाने के कारण तारके ऊपर आते ही जम जाता है। इसी भांति दवाव पड़ने से नीचेकी बरफ गलती जाती है और जल ऊपर आ आकर जमता जाता है। (देखिये चित्र १४)

समुद्रके पेंदेमें जाकर ठंडा पानी जमा होता जाता है परन्तु दवाव अधिक होनेके कारण वह सहज ही जमता नहीं है। इस प्रकार भी प्रकृतिने समुद्रोंको जमनेसे बचाया। अस्तु अब यह भली भांति ज्ञात हो गया होगा कि समुद्रोंको जमने से रोकने वाली तीन बातें हैं—

(१) बरफका पानीसे हलका होना। (२) दवाव ज्यादा होने से बरफका ०°श से भी नीचे तापक्रम पर बनना। (३) पृथ्वीकी भीतरी गर्मीके कारण समुद्रकी तलहटीके पानीका गरम होते रहना।

बरफकी बदौलत हमें खाना मिलता है

धरतीकी उर्वराशक्ति, उसमें पौधोंके योग्य समस्त खाद्य पदार्थों तथा उचित प्रकारके जीवाणुओंकी उपस्थितिपर निर्भर है। पौधोंके खाद्य पदार्थोंमें पोटासियम यौगिक भी हैं। खुश्कीके पौधोंमें पोटासियम और जलीय पौधोंमें सोडियम का होना

चट्टानोंका धूम्रपान (हुक्का पीना)

हमारे शौकीन दोस्त चौंकें नहीं। सम्पादक महोदय आप शौक किया करते हैं या नहीं, यदि आप धूम्रपान नहीं करते तो आप चट्टानोंसे भी गये बीते हैं। विज्ञान परिषद्के मन्त्रीजी! आप भी शिक्षा ग्रहण कीजिये और आज ही गुडगुडी खरीद लीजिये।

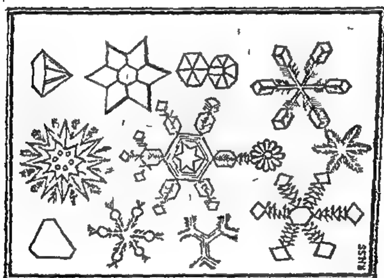
पर क्या वास्तवमें चट्टानें धूम्रपान करती हैं? मनुष्य तो मसखरापन करता है, चट्टानें ही सच्चा धूम्रपान करती हैं। मनुष्य खमीरेको फूक धूम्रको फेंफड़े द्वारा खींच मुहसे, और कुछ शौकीन नाकसे, निकाल देते हैं। प्रायः सारा धुआ कलेजेको थोडा सा कालाकर बाहर निकल जाता है। नयको जो दशा होती है वही तम्बाकू पीनेवालोंकी श्वास नली और फेफड़ोंकी हो जाती है। उनकी श्वासमें गन्ध आने लगती है। परन्तु यही धुआं जो शौकीन पीनेवाले छोड देते हैं, खाना पकानेवाले ईंधन जलाकर पैदा करते हैं, व्यवसायवाले कोयला, कोक आदि जलाकर बनाया करते हैं, इसी धुए (कर्बन द्विओषिद) रूपी विषको कैलाश (पहाडों) की चट्टानें दिन रात पिया करती हैं। कैलाशपतिने तो हलाहलको पिया था, पर कैलाश इस विषको पीता रहता है। इसका सविस्तर वर्णन किसी आगेके लेखमें किया जायगा, पर यहा पर यह बताना था कि चट्टानें कर्बन द्विओषिद्का पान करके मर जाती हैं, उनमेंसे सिकता निकल जाता है और उसका स्थान कर्बन द्विओषिद् ग्रहण करती है। इस क्रियामें भी चट्टानोंका चूर्ण हो जाता है और वह वर्षाके जलके साथ खेतोंमें पहुंच भूमिकी उर्वरशक्ति बढाता है।

बरफकी पहाड़िया

ऊँचे पहाड़ोंपर या समुद्रमें बरफके बड़े बड़े टुकड़े रहते हैं, जो आकारमें छोटी छोटी पहाड़ियोंके बराबर होते हैं। इनके नीचेकी बरफ दबाव पडनेसे गल जाती है और फिर यह ढलानकी तरफ सरकना आरम्भ कर देते हैं। 'ग्लेसियर' या बरफके पहाड प्राय घटेमें ४ फुट चल पाते हैं। जो धीरे चलते हैं, वह तो प्रतिदिन या प्रति सप्ताह मुश्किलसे एक या दो इंच चल पाते हैं।

बरफके रंगे

बरफका एक टुकडा ले उसपर एक तालद्वारा प्रकाश डालिये और फिर दूसरी ओरसे उसे देखिये। उसके अन्दर विचित्र भांतिके कण या रंगे दिखलाई देंगे। [देखिये चित्र १६]



चित्र—१७ बरफ के रवे

(देखिये पृष्ठ ६५)

बरफकी पहाड़िया

ऊँचे पहाड़ोंपर या समुद्रमें बरफके बड़े बड़े टुकड़े रहते हैं, जो आकारमें छोटी छोटी पहाड़ियोंके बराबर होते हैं। इनके नीचेकी बरफ दबाव पड़नेसे गल जाती है और फिर वह ढलावकी तरफ सरकना आरम्भ कर देते हैं। 'ग्लेसियर' या बरफके पहाड़ प्राय घटेमें ४ फुट चल पाते हैं। जो धीरे चलते हैं, वह तो प्रतिदिन या प्रति सप्ताह मुश्किलसे एक या दो इंच चल पाते हैं।

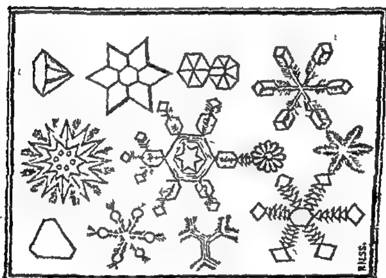
बरफके रवे

- बरफका एक टुकड़ा ले उसपर एक तालद्वारा प्रकाश डालिये और फिर दूसरी ओरसे उसे देखिये। उसके अन्दर विविध भांतिके कण या रवे दिखलाई देंगे। [देखिये चित्र १६]

बरफ ही बरफ

एक समय था जब पृथ्वीका बहुत कुछ भाग बरफसे ढका था (Ice age)। एक समय आयगा जब संसार भरका पानी पृथ्वीके ध्रुवोंपर जाकर बरफमें परिणत हो जायगा और सम्भवत• मनुष्यको अपने कामके लिए पानी ध्रुवीय देशोंसे बड़ी बड़ी नहरें खोदकर लाना पड़ेगा। वह भी वह केवल गरमीके मौसिममें कर सकेगा, जैसे कि मगल ग्रह निवासी (यदि वहांके कोई निवासी हैं तो) आजकल किया करते हैं।

पृथ्वी, बरफमय था और बरफमय हो जायगी। पाठको! गरमियोंके मौसिममें बरफका बहुत ध्यान किया, अब सरदी लगने लगी और कलम भी रुक चली। इसीसे बरफसे विदा होकर ज़रा भापका आश्रय लेंगे।



चित्र—१७ बरफ के रवे

(देखिये पृष्ठ ६५)

बरफकी पहाड़ियां

ऊँचे पहाड़ोंपर या समुद्रमें बरफके बड़े बड़े टुकड़े रहते हैं, जो आकारमें छोटी छोटी पहाड़ियोंके बराबर होते हैं। इनके नीचेकी बरफ दबाव पड़नेसे गल जाती है और फिर यह ढलानकी तरफ सरकना आरम्भ कर देते हैं। 'ग्लेसियर' या बरफके पहाड़ प्रायः घंटेमें ४ फुट चल पाते हैं। जो धीरे चलते हैं, वह तो प्रतिदिन या प्रति सप्ताह मुश्किलसे एक या दो इंच चल पाते हैं।

बरफके रवे

बरफका एक टुकड़ा ले उसपर एक तालद्वारा प्रकाश डालिये और फिर दूसरी ओरसे उसे देखिये। उसके अन्दर विविध भांतिके कण या रवे दिखलाई देंगे। [देखिये चित्र १६]

बरफ ही बरफ

एक समय था जब पृथ्वीका बहुत कुछ भाग बरफसे ढका था (Ice age)। एक समय आयगा जब संसार भरका पानी पृथ्वीके ध्रुवोंपर जाकर बरफमें परिणत हो जायगा और सम्भवतः मनुष्यको अपने कामके लिए पानी ध्रुवीय देशोंसे बड़ी बड़ी नहरें खोदकर लाना पड़ेगा। यह भी वह केवल गरमीके मौसिममें कर सकेगा, जैसे कि मंगल ग्रह निवासी (यदि वहांके कोई निवासी हैं तो) आजकल किया करते हैं।

पृथ्वी, बरफमय था और बरफमय हो जायगी। पाठको! गरमियोंके मौसिममें बरफका बहुत ध्यान किया, अब सरदी लगने लगी और कलम भी रुक चली। इसीसे बरफसे विदा होकर जरा भापका आश्रय लेंगे।

भापकी भपकी



सी वर्तनमें पानी भरकर रख दीजि
थोडे दिनोंमें आप देखेंगे कि प
गायब हो जाता है। थोडा प
रखनेसे यह घटना दो चार घटें
देखी जा सकती है। यह पानी
जाता है? क्या यह नष्ट हो ज
है? यदि नहीं, तो नजर क्यों
आता? पानीके इस तरह ग
हो जानेके कुछ नियम भी
या नहीं?

पदार्थकी तीन अवस्थाओं—गैस (वायवीय), द्रव
ठोस—से तो प्राय सभी परिचित होंगे। गरम करनेसे ठोस
द्रव और द्रवसे गैस बन जाती है। इसी तरह ठडा कर
गैससे द्रव और द्रवसे ठोस बन जाता है। बरफ़को ग
करनेसे पानी और पानीको गरम करनेसे भाप बनती
भापको ठडा करनेसे पानी और पानीको ठडा करनेसे ब
बनती है। आइये जरा इन परिवर्तनोंपर कुछ विस्तारसे विच
करें। विशेष प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है
प्रत्येक पदार्थके अणु निरन्तर भ्रमण किया करते हैं। भ्रमणप
का परिमाण सबसे अधिक गैसोंमें और सबसे कम ठोसो
पाया जाता है। ठोसोंमें अणुओंकी अलग अलग मडलियां ब
होती हैं। प्रत्येक मडलीके अणु एक केन्द्र विशेषके चारों ओ

घडीके लटकनकी तरह छोटेसे वृत्तखण्ड (arc) पर घूमा करते है। एक मडलीके अणु प्राय उसीमें बने रहते हैं। शायद ही कभी कोई अणु अपनी मडलीको छोड दूसरीमें जाकर मिलता हो।

द्रवोंमें अणुओंका प्रजासत्ताक राज्य है। वहां उनके विचरनेमें कुछ बाधा नहीं है। वह जहा चाहें जा सकते हैं, पर अपने देशको (द्रवके आयतन) छोडकर बाहर जानेका उनके लिए निषेध है। द्रवके अणुओंके बीचका स्थान—अन्तराणु स्थान—ठोसोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। गैसोंमें अन्तराणु दूरी और भी अधिक होती है और उनके अणु बडे स्वेच्छाचारी होते है। जहा चाहें जा सकते हैं। एक नगरसे दूसरे नगरतक एक देशसे दूसरे देशतक, तथा एक ग्रहसे दूसरे ग्रहतक भी पहुच जाना उनके लिए बाएं हाथका खेल है।

अब सोचना यह है कि द्रवोंको गैस (वायवीय) रूप धारण करनेमें क्या बाधक है? समस्त द्रव गैस, बनकर स्वतन्त्र रूपसे देश भरमें क्यों नहीं विचरने लगते? कदाचित ऐसा होता तो हमारी शस्य श्यामला वसुन्धरा न मालूम कब की मरुदेश हो गई होती और इस पर पानी अमृतके समान दुर्लभ हो जाता।

द्रवोंपर दो प्रकारकी शक्तिया निरन्तर काम करती रहती है और उनको वाष्प रूप धारण करनेसे रोका करती हैं। एक तो है उनका तलतनाव (surface tension), जो उनके तलदेशकी रक्षा उसी प्रकार करता रहता है जैसे हमारे शरीर की त्वचा। दूसरी शक्ति है वायु मडलका दबाव।

किसी पतली नलीमें आप पानी भरिये। पानीका तल सम न होकर नतोदर होगा। पारा भरिये, तल उन्नतोदर होगा। क्या कारण है, यह तल-तनावके ही करिश्मे हैं। पानी थालीमें भरकर ऐसे स्थानपर रखिये, जहां हवा न जा सके और एक सुई आहिस्तासे पानीपर रख दीजिये। सुई पानीके ऊपर पड़ी रहेगी। और पानी पर एक शिकन पड़ जायगी। यहां, साफ दिखलाई देगा कि पानीके ऊपर एक झिल्ली सा है। तलतनाव ही द्रवके आयतनमें स्वच्छन्दतापूर्वक घूमनेवाले अणुओंको बाहर निकलनेसे रोकता है। वायु मंडलका दबाव भी इनके विरुद्ध काम करता है। इस बातके समझनेमें तो कोई मुश्किल ही नहीं होनी चाहिये। यदि कोई सज्जन लेटे हुए हों और उनके बदनके प्रति इंच पर ७ सेर बोझ रख दिया जाय तो उनको सहज ही पता चल जायगा कि वायुमंडलका कितना दबाव होता है। मामूली तौरसे वायुमंडलका दबाव नीचे ऊपरसे, आगे पीछेसे, दायें बायेंसे, पड़ता है, इसी वजहसे मालूम नहीं होता। यदि एक तरफसे जरा भी हटा लिया जाय, जैसे सींगी लगानेमें होता है तो खून निकल पड़ता है।

द्रवसे गैस कैसे बनती है

द्रवके अणु बराबर भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु उन सबका वेग समान नहीं होता। कुछका बहुत ज्यादा, कुछका बहुत कम, औरोंका औसत दर्जेका। यही मन चले, तेज मिजाज, अणु जब चक्कर लगाते हुए द्रवकी सतह तक पहुँच जाते हैं तो अपने वेगके कारण तल-तनावका तिरस्कार कर हवाकी चादर उठा वायु मण्डलमें पहुंच जाते हैं। इस भांति प्रति क्षण कुछ अणु द्रवसे निकलते रहते हैं। इसी क्रियाको द्रवका उड़

जाना या वाष्पीभवन कहते हैं। पानी आदि द्रव सदा उड़ा करते हैं। उनके कुछ अणु प्रतिक्षण निकलते रहते हैं। अतएव इन गैसके रूपमें विचरने वाले अणुओंका भी कुछ दबाव होता है। यही द्रवोंका वाष्पीय दबाव कहलाता है।

अगर धूपमें रखनेसे या अन्य प्रकारसे द्रवको गरमी पहुंचाई जाय तो क्या होगा? तापक्रम बढ़ेगा, अर्थात् अणुओंकी वेग-सम्भूत शक्ति बढ़ेगी। सारांश यह कि अणुओंका वेग बढ़ेगा। इससे स्पष्ट है कि इस भांति प्रतिक्षण बाहर निकल जानेवाले अणुओंकी संख्या बढ़ जायगी। प्रतिक्षण अधिक अणु द्रवको छोड़ वायु मंडलमें जा मिलेंगे अर्थात् अधिक भाप बनने लगेगी और वाष्पीयदबाव बढ़ जायगा।

इस प्रकार तापक्रमके अधिकाधिक बढ़नेसे वाष्पीयदबाव बढ़ता जायगा और किसी तापक्रम विशेष पर वाष्पीयदबाव, तल-तनाव और वायु मंडलके दबावके बराबर हो जायगा। तब तो अणुओंके वायु रूपमें निकल आनेमें कोई बाधा न होगी। इसी तापक्रमको क्वथनांक या उबालबिन्दु कहते हैं। इसी तापक्रमपर द्रव उबलने लगता है; द्रवका क्वथन होने लगता है।

शायद यहां पर यह शंका खड़ी हो कि क्वथनांक पर पहुंचते ही कुल पानी भाप बनकर क्यों नहीं उड़ जाता? इसका कारण पहिले ही बता चुके हैं। सब अणुओंका वेग एक समान नहीं होता। क्वथनांक तक तापक्रम बढ़नेसे पहिले वह अणु निकल आयेंगे, जिनका वेग बहुत ज्यादा होगा। जितनी ज्यादा गरमी पहुंचेगी, उतनी ही ज्यादा भाप बनेगी। इसीसे सब पानीका एकदम भाप बन कर उड़ जाना मामूली तौर पर खोलानेमें असंभव है। हां यदि थोड़ा

सा पानी तवे पर डालें, तो सब पानी एक दम भापमें परिणत हो उड जायगा।

ऊपरके कथनसे दो बातें स्पष्ट हो गई होंगी। एक यह कि द्रवोंका क्वथनाङ्क जो वायु मडलके दबावबदलनेसे बदला करता है। जितना अधिक दबाव किसी द्रव पर डालेंगे उतने ही अधिक ऊंचे तापक्रम पर वह उबलने लगेगा। दूसरे यह कि द्रवसे गैस बननेमें द्रवके अणु गरमी ग्रहण करते हैं।

यदि नल पर दबाव कम कर दिया जाय तो द्रव जल्दी उबलने लगते हैं। यदि हम भारमापक यन्त्र लेकर किसी पहाड़ पर चढना आरम्भ करें और बीच बीचमें यन्त्रसे वायु मण्डलका दबाव नोट करते जांय तो मालूम होगा कि जैसे जैसे हम ऊपर चढते जाते हैं, वायु मडलका दबाव घटता जाता है। अतएव पहाडों पर पानी आदि द्रव जल्दी अर्थात् कम तापक्रम पर उबलने लगते हैं।

गौरी शंकर पर दाल बनाना असम्भव

पानी १००°श पर खौलने लगता है। इस तापक्रम पर वाष्पीय दबाव वायु मण्डलके दबाव अर्थात् ७६० सहस्रांशमीटर पारेके बराबर होता है। परन्तु गौरी शंकर पर्वत पर वायु मडलका दबाव बहुत कम हो जाता है, अतएव पानी १००° शसे नीचे तापक्रम पर ही खौलने लगता है। इस तापक्रम पर पानीमें दाल सिजाना या आलू उबालना असम्भव है।

चन्द्र मण्डल पर पानी

चन्द्र मण्डलमें खुदाके फज्लसे पानी है ही नहीं। कदाचित वहां पानी होता तो काफूरकी तरह उड जाया करता। जिन पदार्थोंका द्रवण बिन्दु क्वथनाङ्कसे अधिक होता है वह

विना पिघले ही भापमें परिणत हो जाते हैं। परन्तु हम जानते हैं कि दवाव वढानेसे क्वथनांक वढ जाता है। इसलिए काफी दवाव वढानेसे काफूर आदि पदार्थ भी गलाये जा सकते हैं। चन्द्र लोकमें वायु मण्डल है ही नहीं, इसलिए इसका दवाव ही क्या हो सकता है। यदि वहा पानी होता तो उसका क्वथनांक ० शसे भी कम होता। मान लीजिये कि यहां पर एक वरफका पहाड कहींसे आ गिरे तो उसे पानी होनेका तो अवसर ही न मिल सकेगा। वरफसे पानी वननेका तापक्रम ०°श है, इसलिए इस तापक्रम पर पहुँचनेके पूर्व ही वह वाष्प रूपमें परिणत हो जायगा।

पानीका क्वथनांक कहा तक बढ़ाया जा सकता है ?

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि पानीके ऊपर दवाव वढाते चले जाय तो उसका क्वथनांक कहा तक वढ सकता है? इसका उत्तर भी वैज्ञानिकोंने खोज लिया है। दवाव वढाते वढाते पानीका क्वथनांक ३७०°श तक वढाया जा सकता है, परन्तु इस तापक्रमके ऊपर पानी हजार प्रयत्न करने पर भी द्रवावस्थामें नहीं रह सकता। सहसा वाष्पमें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार यदि भापको गरम करके उसका तापक्रम ३७०°से कुछ ज्यादा कर दिया जाय तो लाखों वायु मण्डलका दवाव डालने पर भी भाप-पानीका रूप धारण न करेगी। हा, यदि तापक्रम ३७०°श होगा तो १९६ वायु मण्डलोंके दवावसे भाप पानीमें परिणत हो जायगी।

समुद्रकी सतहटीमें पानी

'जलकी मनोरञ्जक गाथा' शीर्षक लेखमें हमने दिखलाया है कि पृथ्वी मण्डलके ठंडे होनेपर पानीका द्रवरूप धारण करना

पहिले पहल उस समय आरम्भ हुआ होगा, जब उसका ताप क्रम ३७०°श रहा होगा । ३७०°श तक ठंडा होनेके पहिले पानीका द्रव बनना असम्भव था। उसी लेखमें यह भी बत लाया गया है कि समुद्रकी तलैटीके कुछ मील नीचे ही लाल लाल दहकती हुई चट्टानें मौजूद हैं । पानी इन चट्टानोंतक पहुंचकर फिर भापमें परिणत हो जाता है और समुद्रमें ही आ मिलता है। अब यहांपर यह सोचना है कि प्रकृतिने जो पानीका यह गुण रखा है कि दबाव अधिक होनेसे उसका क्वथनांक बढ जाता है, उससे प्रकृतिके कार्यालयमें कुछ लाभ भी होता है या नहीं ?

कदाचित ऐसा न होता और पानीका क्वथनांक सदा १००°श रहता तो समुद्रकी तलैटीमें पानी सदा उबलता रहता और पानीमें बडा उथलपुथल हुआ करता। इसका यह परिणाम होता कि समुद्रका तापक्रम बहुत बढ़ जाता । समुद्र उबलते हुए पानीसे भरे हुए होते और पृथ्वीके ठंडे होनेका वेग अधिक बढ जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि महाप्रलयका काल ही आ उपस्थित होता।

इस ऊंचे दर्जेकी गर्मीपर पानीके गुण भी पलट जाते हैं देखिये गीकी (Geikie) महाशय इस विषयमें क्या लिखते हैं। "साधारण तापक्रमोंपर पानी अत्यन्त बलहीन क्षार या अम्ल है। १८°श पर वह सिकताम्लसे १०० गुना कमजोर अम्ल है, परन्तु तापक्रम बढ़नेसे इनकी पारस्परिक कमजोरीमें बडा अन्तर हो जाता है । ३००°श पर पानी सिकताम्लसे जोडका अम्ल हो जाता है। १०००°श पर सिकताम्लसे ८० गुना और २०००° श पर ३०० गुना अधिक बलवान हो जाता है।

इससे मालूम हुआ कि समुद्रकी तलैटीका उत्तप्तजल बहुत से पदार्थोंको अपनेमें घुला लेना होगा, जिसका परिणाम यह होता है कि पानीका क्वथनांक और अधिक बढ़ जाता है और उसका भापमें परिणत होना और भी अधिक मुश्किल हो जाता है। भूगर्भ सम्बन्धी परिवर्तनोंमें इस भांति पानी अपूर्व शक्तिशाली पदार्थ है।

क्वथन (उबलना) और वाष्पीभवन

हम यह देख चुके हैं कि पानीका वाष्पीभवन अर्थात् वाष्प बनना सदा जारी रहता है और तलके ऊपरका ही पानी वाष्पमें परिणत हो कर उड़ जाता है। परन्तु क्वथन होनेपर पानीके आयतनके प्रत्येक अंशमेंसे भाप बनती है, उस समय भापका दबाव वायुमण्डलके दबावके बराबर होना है।

घड़ों, मटकों, सुराहियों, बरतनों, तालाबों नदियों, समुद्रों और महासागरोंके ऊपरी तलसे भाप बना करती है। जल-प्रपात, नदियोंकी लहरें, समुद्रोंकी तरगें इस क्रियाकी सहायक होती हैं। सूर्य भगवानकी किरणें भी इस क्रियाका वेग बढ़ा देती हैं। हवाके झोंके भी पानीपर डाकाजनी किये बिना नहीं मानते।

यह सब तो वाष्पीभवनके साधारण मार्ग हैं। प्रकृतिके अद्भुत रहस्य हैं। वह अपना कार्य न जाने किन किन तरीकोंसे करा लेती है। मनुष्य आदि प्राणियोंको नाक पकड़कर और दिल दबाकर प्रकृति यही काम निकालती है।। दिलकी धड़-कन श्वासोच्छ्वास क्रियाको जारी रखती है। श्वासोच्छ्वास किया नाक द्वारा होती है। उच्छ्वासमें पानी रहता है, यह बात सहज ही सिद्ध की जा सकती है। जाड़ेके दिनोंमें लड़के

पहिले पहल उस समय आरम्भ हुआ होगा, जब उसका ताप क्रम ३७०°श रहा होगा। ३७०°श तक ठंडा होनेके पहिले पानीका द्रव बनना असम्भव था। उसी खोजमें यह भी बतलाया गया है कि समुद्रकी तलैटीके कुछ मील नीचे ही लाल लाल दहकती हुई चट्टानें मौजूद हैं। पानी इन चट्टानोंतक पहुंचकर फिर भापमें परिणत हो जाता है और समुद्रमें ही आ मिलता है। अब यहांपर यह सोचना है कि प्रकृतिने जो पानीका यह गुण रखा है कि दबाव अधिक होनेसे उसका क्वथनांक बढ़ जाता है, उससे प्रकृतिके कार्यालयमें कुछ लाभ भी होता है या नहीं?

कदाचित ऐसा न होता और पानीका क्वथनांक सदा १००°श रहता तो समुद्रकी तलैटीमें पानी सदा उबलता रहता और पानीमें बड़ा उथलपुथल हुआ करता। इसका यह परिणाम होता कि समुद्रका तापक्रम बहुत बढ़ जाता। समुद्र उबलते हुए पानीसे भरे हुए होते और पृथ्वीके ठंडे होनेका वेग अधिक बढ़ जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि महाप्रलयका काल ही आ उपस्थित होता।

इस ऊंचे दर्जेकी गर्मीपर पानीके गुण भी पलट जाते हैं। देखिये गीकी (Geikie) महाशय इस विषयमें क्या लिखते हैं। "साधारण तापक्रमोंपर पानी अत्यन्त बलहीन क्षार या अम्ल है। १८°श पर वह सिकताम्लसे १०० गुना कमजोर अम्ल है, परन्तु तापक्रम बढ़नेसे इनकी पारस्परिक कमजोरीमें बड़ा अन्तर हो जाता है। ३००°श पर पानी सिकताम्लके जोड़का अम्ल हो जाता है। १०००°श पर सिकताम्लसे ८० गुना और २०००°श पर ३०० गुना अधिक बलवान हो जाता है।"

लाख पत्तियां मानली जावें, पांच महीनेमें लगभग ३००० मन पानी पत्तियोंमें से बाहर निकाल देता है"

यह तो हुई दो चार महीनेकी बात। वृक्ष अपने जीवनमें कितना पानी जमीनसे निकाल वायुमण्डलमें फेंक देते हैं। ओकका वृक्ष लगभग १००० वर्ष जीवित रहता है। यह वृक्ष अपने जीवनमें क़रीब करीब सत्तर लाख मन पानी वाष्पमें परिणतकर देता है। केलीफोरनियाके 'मेमथ' वृक्ष तो लगभग ३००० वर्ष पुराने होंगे। कनारी द्वीप (Canary Islands) के अन्तर्गत ओरेटावाका ड्रेगन वृक्ष (Dragon tree of Orativa) तो अनुमानतः १०००० वर्षका होगा। जिस समय श्रीकृष्ण गीताका उपदेश दे रहे थे यह वृक्ष ५००० वर्षका हो चुका था। अनुमान कीजिये कि पृथ्वीतलके असंख्य पौधे, वृक्ष, लता आदि सब मिलकर प्रति वर्ष कितने पानीकी भाप बनाते हैं और संसारका कितना उपकार करते हैं। न जाने संसारके समुद्र कितने बार इस प्रकार वृक्षोंके रुधिर होकर परिक्रमा-कर चुके होंगे।

यदि वायुमण्डलमें जल वाष्प न होती तो क्या होता?

यदि वायुमण्डलमें वाष्प न रहती तो वर्षाका होना असम्भव हो जाता। फिर वनस्पति जीवनका अन्त होनेमें देर न लगती। मनुष्य आदि प्राणियोंका जिन्दा रहना भी मुश्किल हो जाता। पृथ्वी रातको-२५० श तक ठंडी हो जाया करती और दिनमें उसका तापक्रम १८० श हो जाया करता। फिर तो विना प्रयास ही रातके समय वायु द्रव रूप धारण कर लिया करती और दिनमें मटन चोपके शौक़ीन मजेमें मटन सेक सेक खाया करते।

अपने मुंहसे भाप निकालकर इञ्जनकी नक़ल किया करते हैं; कभी कभी तो बुड्ढोंको भी इसका शौक पैदा हो जाता है और कुछ न सही तो बच्चोंको बहलानेके लिए ही धुआं निकालने लगते ह।

पेड कितना पानी बाल्ते हैं ?

मनुष्य आदि प्राणी केवल सांस लेनेमें ही भापको बाहर नहीं निकालते, परन्तु त्वचाके रंध्रोंमेंसे भी बराबर भाप निकालते रहते हैं। वृक्षोंमें भी यह दोनों क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं द्वारा वृक्ष जलका अनन्त परिमाण पृथ्वीमेंसे खींच कर वायु मण्डलमें छोड देते हैं। एक सज्जन लिखते हैं :—

"समस्त पौधोंमें जलका प्रचुर परिमाण विद्यमान रहता है। जलीय पौधोंमें ९५-९९ प्रतिशत और साधारण पौधोंमें ५०-७० प्रतिशत जल रहता है। यह सभी प्रकारकी वनस्पतियों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जल या रसोंकी एक धारा वनस्पतियोंके तनोंमें चढ़कर पत्तियों तक पहुचती रहती है। इन पत्तियोंमें अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहते हैं, उन्हींके द्वारा यह जल भापके रूपमें निकल कर वायुमें मिल जाता है। ओक वृक्ष की एक पत्तीमें लगभग बीस लाख (२,०००,०००) छिद्र होते हैं। यही रस पत्तियोंको ताजा और बलवान रखता है। इसी रसधाराके द्वारा पौधेकी प्रत्येक सेल (कोष) तक पानी पहुचता है और उसका भरण पोषण होता है।

इस प्रकार जो पानी पौधे जमीनसे सोखते हैं, उसकी मात्रा बहुत ही आश्चर्यजनक है। चार महीनेमें एक एकड़में बोए हुए गोभीके पौधे लगभग सवालाख मन पानी रंध्रों द्वारा निकाल देते हैं। अकेला एक ओक वृक्ष, जिसमें सात

लाख पत्तियां मानली जावें, पांच महीनेमें लगभग ३००० मन पानी पत्तियोंमें से बाहर निकाल देता है"

यह तो हुई दो चार महीनेकी बात। वृक्ष अपने जीवनमें कितना पानी जमीनसे निकाल वायुमण्डलमें फेंक देते हैं। ओकका वृक्ष लगभग १००० वर्ष जीवित रहता है। यह वृक्ष अपने जीवनमें करीब करीब सत्तर लाख मन पानी वाष्पमें परिणत कर देता है। केलीफोरनियाके 'मेमथ' वृक्ष तो लगभग ३००० वर्ष पुराने होंगे। कनारी द्वीप (Canary Islands) के अन्तर्गत ओरेटावाका ड्रेगन वृक्ष (Dragon tree of Orotava) तो अनुमानतः १०००० वर्षका होगा। जिस समय श्रीकृष्ण गीताका उपदेश दे रहे थे यह वृक्ष ५००० वर्षका हो चुका था। अनुमान कीजिये कि पृथ्वीतलके असंख्य पौधे, वृक्ष, लता आदि सब मिलकर प्रति वर्ष कितने पानीकी भाप बनाते हैं और संसारका कितना उपकार करते हैं। न जाने संसारके समुद्र कितने बार इस प्रकार वृक्षोंके रंध्रोंमें होकर परिक्रमा-कर चुके होंगे।

यदि वायुमण्डलमें जल वाष्प न होती तो क्या होता?

यदि वायुमण्डलमें वाष्प न रहती तो वर्षाका होना असम्भव हो जाता। फिर वनस्पति जीवनका अन्त होनेमें देर न लगती। मनुष्य आदि प्राणियोंका जिन्दा रहना भी मुश्किल हो जाता। पृथ्वी रातको -२५० श तक ठंडी हो जाया करती और दिनमें उसका तापक्रम १८० श हो जाया करता। फिर तो बिना प्रयास ही रातके समय वायु द्रव रूप धारण कर लिया करती और दिनमें मटन चोपके शौकीन मजेमें मटन सेक सेक खाया करते।

अपने मुंहसे भाप निकालकर इंजनकी नकल किया करते हैं; कभी कभी तो वुड्ढोंको भी इसका शौक पैदा हो जाता है और कुछ न सही तो बच्चोंको बहलानेके लिए ही धुआं निकालने लगते हैं।

पेड़ कितना पानी उगलते हैं ?

मनुष्य आदि प्राणी केवल सांस लेनेमें ही भापको बाहर नहीं निकालते, परन्तु त्वचाके रन्ध्रोंमेंसे भी बराबर भाप निकालते रहते हैं। वृक्षोंमें भी यह दोनों क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं द्वारा वृक्ष जलका अनन्त परिमाण पृथ्वीमेंसे खींच कर वायु मण्डलमें छोड़ देते हैं। एक सज्जन लिखते हैं :—

"समस्त पौधोंमें जलका प्रचुर परिमाण विद्यमान रहता है। जलीय पौधोंमें ६५-६६ प्रतिशत और साधारण पौधोंमें ५०-७० प्रतिशत जल रहता है। यह सभी प्रकारकी वनस्पतियोंमें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जल या रसोंकी एक धारा वनस्पतियोंके तनोंमें चढ़कर पत्तियों तक पहुंचती रहती है। इन पत्तियोंमें अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहते हैं, उन्हींके द्वारा यह जल भापके रूपमें निकल कर वायुमें मिल जाता है। ओक वृक्ष की एक पत्तीमें लगभग बीस लाख (२,०००,०००) छिद्र होते हैं। यही रस पत्तियोंको ताजा और बलवान रखता है। इसी रसधाराके द्वारा पौधेकी प्रत्येक सेल (कोष) तक पानी पहुंचता है और उसका भरण पोषण होता है।

इस प्रकार जो पानी पौधे जमीनसे सोखते हैं, उसकी मात्रा बहुत ही आश्चर्यजनक है। चार महीनेमें एक एकड़में बोए हुए गोभीके पौधे लगभग सवालाख मन पानी रन्ध्रों द्वारा निकाल देते हैं। अकेला एक ओक वृक्ष, जिसमें सात

लाख पत्तियां मानली जावें, पांच महीनेमें लगभग ३००० मन पानी पत्तियोंमें से बाहर निकाल देता है"

यह तो हुई दो चार महीनेकी बात। वृक्ष अपने जीवनमें कितना पानी जमींनसे निकाल वायुमण्डलमें फेंक देते हैं। ओकका वृक्ष लगभग १००० वर्ष जीवित रहता है। यह वृक्ष अपने जीवनमें करीब करीब सत्तर लाख मन पानी वाष्पमें परिणतकर देता है। केलीफोर्नियाके 'मेमथ' वृक्ष तो लगभग ३००० वर्ष पुराने होंगे। कनारी द्वीप (Canary Islands) के अन्तर्गत ओरेटावाका ड्रेगन वृक्ष (Dragon tree of Orotava) तो अनुमानतः १०००० वर्षका होगा। जिस समय श्रीकृष्ण गीताका उपदेश दे रहे थे यह वृक्ष ५००० वर्षका हो चुका था। अनुमान कीजिये कि पृथ्वीतलके असंख्य पौधे, वृक्ष, लता आदि सब मिलकर प्रति वर्ष कितने पानीकी भाप बनाते हैं और संसारका कितना उपकार करते हैं। न जाने संसारके समुद्र कितने बार इस प्रकार वृक्षोंके रन्ध्रोंमें होकर परिक्रमा-कर चुके होंगे।

यदि वायुमण्डलमें जल वाष्प न होती तो क्या होता ?

यदि वायुमण्डलमें वाष्प न रहती तो वर्षाका होना असम्भव हो जाता। फिर वनस्पति-जीवनका अन्त होनेमें देर न लगती। मनुष्य आदि प्राणियोंका जिन्दा रहना भी मुश्किल हो जाता। पृथ्वी रातको -७५० श तक ठंडी हो जाया करती और दिनमें उसका तापक्रम १८० श हो जाया करता। फिर तो बिना प्रयास ही रातके समय वायु द्रव रूप धारण कर लिया करती और दिनमें मटन चोपके शौकीन मजेमें मटन सेक सेक खाया करते।

अपने मुहसे भाप निकालकर इजनकी नकल किया करते हैं कभी कभी तो वृद्धोंको भी इसका शौक पैदा हो जाता है और कुछ न सही तो बच्चोंको बहलानेके लिए ही धुआं निकालने लगते है।

पेड कितना पानी उगलते हैं ?

मनुष्य आदि प्राणी केवल सांस लेनेमें ही भापको बाहर नहीं निकालते, परन्तु त्वचाके रंध्रोंमेंसे भी बराबर भाप निकालते रहते हैं। वृक्षोंमें भी यह दोनों क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं द्वारा वृक्ष जलका अनन्त परिमाण पृथ्वीमेंसे खींच कर वायु मण्डलमें छोड देते हैं। एक सज्जन लिखते हैं :—

"समस्त पौधोंमें जलका प्रचुर परिमाण विद्यमान रहता है। जलीय पौधोंमें ६५-९६ प्रतिशत और साधारण पौधोंमें ५०-७० प्रतिशत जल रहता है। यह सभी प्रकारकी वनस्पतियों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जल या रसोंकी एक धारा वनस्पतियोंके तनोंमे चढकर पत्तियों तक पहुचती रहती है। इन पत्तियामें अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहते हैं, उन्हींके द्वारा यह जल भापके रूपमें निकल कर वायुमें मिल जाता है। ओक वृक्ष की एक पत्तीमें लगभग बीस लाख (२,०००,०००) छिद्र होते हैं। यही रस पत्तियोंको ताजा और बलवान रखता है। इसी रसधाराके द्वारा पौधेकी प्रत्येक सेल (कोष) तक पानी पहुचता है और उसका भरण पोषण होता है।"

इस प्रकार जो पानी पौधे जमीनसे सोखते हैं, उसकी मात्रा बहुत ही आश्चर्यजनक है। चार महीनेमें एक एकड़में बोये हुए गोभीके पौधे लगभग सवालाख मन पानी रध्रों द्वारा निकाल देते हैं। अकेला एक ओक वृक्ष, जिसमें सात

वायुमण्डलके रहस्य



ताके उदरसे निकलते ही जिस चीजकी मनुष्यमात्रको—नहीं नहीं सारे जीवधारियोंको—आवश्यकता होती है वह हवा है। हवा एक अद्भुत पदार्थ है, जिसका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए, जिसके रहस्योंका उद्घाटन करनेके लिए अनन्त कालसे कवि और दार्शनिक प्रयत्न करते रहे हैं। मनुष्य की सभ्यताके होने लगा आरम्भ कालमें ही जब उसमें विचार शक्तिका विकाश होने लगा था तभीसे उसे इस बातका ज्ञान हुआ कि वह वायुके एक अगाध समुद्रकी तलैटीमें रहता है। उसके दाए बाए, आगे पीछे ऊपर नीचे वायु ही वायु है। जब इस वायुके समुद्रमें प्रकोप होता है तो वह भयङ्कर अनधड चलने लगते हैं कि बडे बडे दरख्त तिनकोंकी तरह अपने स्थानसे उखड कर इधर उधर जा गिरते हैं। कभी कभी इस जोरकी आंधी चलती है कि करोडों मन रेत बडे वेगसे हवाके साथ उड कर आकाशमें आच्छादित हो जाती है और बातकी बातमें सैकडों मीलोंकी दूरी तै कर लेती है। ऐसे समयमें दिनमें रातका दृश्य दिखाई देने लगता है और रेतकी वर्षा होती रहती है।

ऐसी ऐसी घटनाओंका अनुभव भारत आदि देशोंके मनुष्योंको लाखों वर्षसे हो रहा है। अरब जैसे रेतीले मरु

ऐसा क्यों होता, इसका क्या कारण है? पानीकी भाप जो वायुमंडलमें विद्यमान रहती है वह सूर्यकी ज्योतिहीन तापकिरणावली को ऊपर ही ऊपर सोख लेती है, उन्हें पृथ्वी तक बहुत कम परिमाणमें पहुंचने देती है। केवल प्रकाश और ताप किरण ही पृथ्वीतल तक आने पाती हैं यह पृथ्वीको गरम करती रहती हैं। रातके समय यह गरमी पृथ्वीमें से निकलने लगती है उस समय वायुमण्डलकी जल वाष्प कम्बल का काम देती है और उसे शीघ्र ठंडा नहीं होने देती।

इस प्रकार जल वाष्प दिनमें जला देने से और रातको बरफकी तरह जमकर मरनेसे रक्षा करती है।

कदाचित आज वायुमण्डलकी समस्त जल वाष्प निकाल ली जाय, तो पृथ्वीका तापक्रम २०° श घटजाय और यूरोप, अमेरिका आदि बरफसे ढकजायं। केवल भारतवर्ष आदि गरम देश ही सही सलामत बचें।

वायुमण्डलमें कितनी जल वाष्प है?

वायुके प्रत्येक १०० भागमें १ ३ भाग जल वाष्प पाई जाती है, अर्थात् १०० मन वायुमें ८४ मन जल वाष्प रहती है। समस्त वायुमण्डलमें १३५०००,०००,०००,०००,एक पद्म ३५ नील मन जल वाष्प विद्यमान है। यदि यह जलमें परिणत कर एक जगह इकट्ठी करली जाय तो १२००० वर्गमील क्षेत्रफलकी एक मील गहरी झील बनजाय।

पाठकगण, गरमीके दिनोंमें इस कल्पित झील की सैर कीजिये। इसका विचार करनेसे ही गरमी न लगेगी। हां गरमियोंमें हवाकी भी जरूरत होती है। इसलिए अगले मासमें वायुपर विचार करेंगे।

वायुमण्डलके रहस्य



माताके उदरसे निकलते ही जिस चीजकी मनु मात्रको—नहीं नहीं सारे जीवधारियोंको—आवश्यकता होती है वह हवा है। हवा एक अद्भुत पदार्थ है, जिसका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए, जिसके रहस्योंका उद्घाटन करनेके लिए अनन्त कालसे कवि और दार्शनिक प्रयत्न करते रहे हैं। मनुष्य की सभ्यताके होने लगा आरम्भ कालमें ही जब उसमें विचार शक्तिका विकास होने लगा था तभीसे उसे इस बातका ज्ञान होगा कि वह वायुके एक अगाध समुद्रकी तलैटीमें रहता है। उसके दायें बाएं, आगे पीछे ऊपर नीचे वायु ही वायु है। जब इस वायुके समुद्रमें प्रकोप होता है तो वह भयङ्कर अनधड चलने लगते हैं कि बड़े बड़े दरख्त तिनकोंकी तरह अपने स्थानसे उखड कर इधर उधर जा गिरते हैं। कभी कभी इस जोरकी आंधी चलती है कि करोड़ों मन रेत बड़े वेगसे हवाके साथ उड कर आकाशमें आच्छादित हो जाती है और बातकी बातमें सैकड़ों मीलोंकी दूरी ते कर लेती है। ऐसे समयमें दिनमें रातका दृश्य दिखाई देने लगता है और रेतकी वर्षा होती रहती है।

ऐसी ऐसी घटनाओंका अनुभव भारत आदि देशोंके मनुष्योंको लाखों वर्षसे हो रहा है। अरब जैसे रेतीले मरु

परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। साधारणतया पदार्थके तीन गुण ऐसे हैं, जिनकी जांच करके हम यह निश्चय कर सकते हैं कि कोई दी हुई वस्तु पदार्थ मय है अथवा नहीं। वह गुण हैं :—भार, आयतन और शक्तिवाहन।

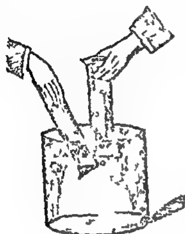
जिस चीजमें भार है, जिसका आयतन है अर्थात् जो जगह घेरती है और शक्तिका वाहन कर सकती है, वह पदार्थ का रूपान्तर, पदार्थ मय अथवा पदार्थ निर्मित समझी जाती है। यहां पर हमें यह निर्णय करना है कि वायु भी पदार्थ है अथवा नहीं।

वायु जगह घेरती है

यह एक साधारण अनुभवकी बात है कि यदि किसी गिलासका मुंह नीचा करके पेगमें डुबोना चाहें तो उसमें पानी नहीं भरता। पानी भरनेके लिए यह आवश्यक है कि वह थोडा सा टेढा कर दिया जाय। टेढा होते ही उसमेंसे कुछ बुलबुले निकलने लगेंगे और पानी भरता जायगा। हवा निकलती जायगी और उसका स्थान पानीसे भरता जायगा।

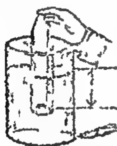
यदि दो बराबरके गिलास लेकर नीचेकी विधिसे प्रयोग करें तो यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि जितनी वायु एक गिलासमें से निकलेगी उतना ही पानी उसमें प्रवेश करेगा। इस प्रयोगके लिए यदि दो नापनेके, निशान लगे हुये, गिलास या घट मिल जायें तो और भी अच्छा है। पहिले एक गिलासको लेकर उसे कूँडोमें डुबो पानीसे भरलीजिये और कूँडी में औंधाकर उसका मुँह पानीमें डुबा दीजिये, यदि गिलास सीधा होगा तो उसमें पानी प्रवेश न करेगा। अब भरे हुये घटको बाएँ हाथमें उठा लीजिये, पर ख्याल रहे कि उसका मुंह पानीके

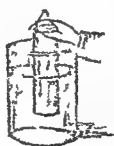
बाहर न आने पाये, नहीं तो पानी निकल जायगा और घट खाली हो जायगा। बायें हाथमें जो खाली घट आप पहिलेसे लिये हुये हैं उसका मुँह पानीमें इतने नीचे उतार दीजिये कि भरे हुये घटके मुँहसे दो एक अँगुल नीचे ही रहे और उसको धीरे धीरे टेढा करने लगिये। इसमेंसे थोडी-थोडी हवा निकलने लगेगी और भरे हुए घटमें चढने लगेगी। नीचेवाले घटमें पानी प्रवेश करता जायगा और ऊपरवालेमें पानी उतरता आयगा। किसी भी समय



चित्र १८

यह देखा जा सकता है कि नीचेके घटमें के पानीका आयतन ऊपरवाले घटमें की वायुके आयतनके बराबर है। अतएव इस प्रयोगसे सिद्ध होता है कि वायु भी जगह घेरती है। [देखिये चित्र १८]





चित्र १९

चित्र १९ में दिखलाये हुये आकारकी एक नली लीजिये। मुंह पर अंगुली रखकर छिद्र बंद कर लीजिये और नीचेके चौड़े मुहको पानीसे भरे गिलासमें डुबोनेका प्रयत्न कीजिये। पानी नलीमें



ट २—दूरबीन की शक्ति। हरक्यूलीज मंडल वाली आँख से एक तारा सा
पड़ता है, किन्तु अच्छे दूरबीन से तारों के समूह में परिणत हो जाता

ऋणात्मक भार होता है अर्थात् किसी वस्तुमें हवा भर देनेसे उस वस्तुका भार कम हो जाता है।

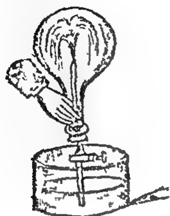
अरस्तूके बाद दो हजार वर्ष तक घोर अन्धकार फैला रहा। इस समयमें दार्शनिक मत मतान्तरोंका जन्म हुआ, जो प्रयोग करना नीचे कोटिके मनुष्योंका काम समझते थे। यह सत्यकी खोजमें केवल कल्पनाका ही सहारा लेते थे और प्रयोगात्मक ज्ञानको अश्रद्धा और उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रयोगात्मक विज्ञानकी उन्नति बिल्कुल रुकी रही।

उपरोक्त समयमें ही संसारके बड़े बड़े धर्मोंका जन्म हुआ। और विशेषत यूरोपमें प्राचीन सभ्यता और विद्या कलाओंको बरबरोंके अत्याचारसे बड़ा धक्का पहुँचा। इधर भारतमें यद्यपि यूनानियों और मुसलमानोंके आक्रमण होते रहे, तथापि ज्योतिष और वैद्यकमें बराबर उन्नति होती रही और इसी देशमें विज्ञानका जन्म हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दीमें विज्ञानका दीपक यवनों द्वारा यूरोपमें पहुँच गया। वहां शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो चला था। अतएव इसकी ज्योति फैलने लगी, परन्तु इधर भारतमें वह अन्धाधुंध मच गयी कि लोगोंको घर बाहरकी सुधि ही न रही और उन्हें अपने अस्तित्वकी रक्षामें ही तन और प्राण होम देने पड़े। अतएव सोलहवीं शताब्दीमें भारतमें विज्ञानकी ओरसे उदासीनता फैलती गई और यूरोपमें उसकी नित्य वृद्धि होती गई। वहीं वायुके उपरोक्त तीन गुणोंकी पूरी पूरी जांच की गई और यह सिद्ध हुआ कि वायु भी पदार्थका रूपान्तर है। यूरोपमें ही वायुके अवयवोंका रहस्य खुला।

बहुत कम चढेगा। नलीको पानीमें इतना डु
उसका ऊपरी भाग पानीके ऊपर रहे। अब र
से अगुली जरा हट
मेंसे हवाकी धारा
मालूम होगी। साथ
पानी चढता हुआ न

हवा शक्तिका वाहन

फूकसे कागज
या धूल उडा सकते ह
से गोली चला सकते
हवासे और भी अनेक
सकते हैं। पर्वत रा
लम्बी सुरगें दबी हुई ह
वाले यन्त्रों द्वारा बना
अतएव स्पष्ट है कि
स्थापकता विद्यमान
सहारे वह शक्तिका वाहन
है और अनेक प्रकारके काम उससे लिये जा सकते



चित्र २०—कुप्पी में से हवा पम्प से निकाल लीजिये और टैप बन्द कर ट्यूब को पानी में डुबा दीजिये, और टैप खोल दीजिये, पानीका फव्वारा कुप्पी में दिखाई देगा।

हवामें बोझ होता है

प्राचीन कालके यूनानी दार्शनिक मानते थे
पदार्थका पतला और अदृश्य रूपान्तर है और उ
टन परमाणविक हैं। विट्रूवियसने एक जगह स्प
लिखा है कि वायुमें गुरुत्व होता है। अरस्तूने इस
जाँच करनेके लिए कई प्रयोग किये, परन्तु कई
उनका परिणाम रूप यह सिद्धान्त निश्चय हुआ कि

पर पड़ती दिखाई देगी। पानीके अन्दर किसी नलीको डुबो दीजिये और उसके ऊपरके सिरेसे धीरे धीरे फूंकिये। हवाके बुलबुले आपको स्पष्ट दिखलाई देंगे। पानीके कतरे आप हवामें देख सकते हैं, उसी प्रकार हवाके बुलबुले पानीमें दीख पड़ते हैं। पानीमें डूबी हुई मछलियां पानीको नहीं देख पातीं, हवामें डूबे हुए हम हवाको नहीं देख पाते। दृष्टिके लिए आकार और सीमा बद्धताकी आवश्यकता है। दिखाई पड़नेके लिए वस्तुको रङ्ग और पारदर्शकतामें, प्रकाश और छायामें आस पासके पदार्थोंसे कुछ विभिन्नता प्रकट करनी चाहिये, जिसका निरीक्षण कर मस्तिष्क वस्तुकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त करले। स्मरण रहे कि हम किसी भी वस्तुको नहीं देख सकते। हम केवल रङ्ग, छाया और प्रकाशकी विभिन्नताओंको देखते हैं और उन्हींसे पूर्व सञ्चित ज्ञानके सहारे वस्तुओंकी स्थिति और आकारका ज्ञान हमको हो जाता है।

इस बातके प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। कभी कभी डाक्टर शल्य चिकित्सा द्वारा जन्मान्धोंको दृष्टि प्रदान करनेमें सफल हुए हैं। ऐसे मनुष्योंको दृष्टि लाभ करने पर भी, चीजोंका देखना सिखाना पड़ा है। देखने देखनेमें बड़ा अन्तर होता है। ठोस वस्तुओंके चित्रोंमें ठोसपना शिक्षित आंखें ही देख सकती हैं। साधारण आदमियोंको तो वह एकतलवर्ती रेखाएं ही प्रतीत होती हैं। नीले रङ्गकी दीवारपर उसी रङ्ग और झाईका कागजका टुकड़ा चिपका दीजिये। आपको वह दूरसे दिखाई न देगा। पास आनेपर जब उसका उभार दीख पड़ेगा, तब कागजके अस्तित्वका ज्ञान होगा।

हवामें बोझ होता है

हवामें, हम कह आये हैं, गुरुत्व होता है। इस बातके सिद्ध करनेके लिए अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। एक कांचकी कुप्पी लीजिये। उसमें एक छेद वाली काग लगाइये और कागमें एक ऐसी नली लगाइये जिसमें बीचमें टेप, टोंटी, हो। कुप्पीमें थोड़ा पानी भर कर, नली समेत काग लगाकर, टेप खोल दीजिये और लोहेकी जाली पर रखकर नीचे से लेम्प द्वारा गरम कीजिये। जब पानी खौलने लगे और पांच मिनट तक खौलता रहे तो टोंटी बन्द कर दीजिये और ठंडा होने दीजिये। फिर तोल लीजिये। तोलकर टोंटी खोलिये, हवा शब्द करती हुई कुप्पीमें प्रवेश कर जायगी और तोलने पर कुप्पीका भार अधिक मिलेगा। जब पानी खौल रहा था तो हवा सब निकल गई थी और केवल जल वाष्प कुप्पीमें भरी रह गई थी। ठंडी होने पर जलवाष्प जलमें परिणत हो गई और शून्य पैदा हो गया। टेप खोलने पर शून्यमें हवाका प्रवेश हो गया, जिस कारण कुप्पी का भार बढ़ गया। अब यदि नपने-घटसे पानी भरकर कुप्पी का आयतन निकाल लें तो उतनी ही हवाका भार कुप्पीके भारकी वृद्धिके बराबर होगा।

यदि वायु बहिष्कारक यंत्र हो तो कुप्पीको पहले तोल लीजिये और तदनन्तर उसमेंके वायुको निकालकर टेप बन्द करके दुबारा तोल लीजिये। अन्तरसे कुप्पी भर वायुका भार मालूम हो जायगा।

प्रयोगोंके द्वारा मालूम हुआ है कि १ घन गज वायुका भार १ सेरके लगभग होता है। पाठको, अनुमान कीजिये, जिस कमरेमें मैं बैठा हुआ यह लेख लिख रहा हूं वह पांच

गज लम्बा, तीन गज चौड़ा और चार गज ऊंचा होगा। कदाचित् किसी यंत्र द्वारा इसमेंकी वायुको ठोस रूप दे, एक जगह इकट्ठा करके छतसे किसीके सरपर डाल दें, तो क्या परिणाम होगा। इस डेढ़ मनके बोझके गिरनेसे किसीका भी चूर्ण हो जायगा। आप सम्भव है सिंहासनसे बैठे हुए इस लेखको पढ़ रहे होंगे। आप जानते हैं आपने हवा ही का कितना बोझ उठा रखा है। देखिये, चौंकियेगा नहीं जब आपको यह बताया जाय कि आपने लगभग ४०० मनका बोझ केवल वायुका उठा रखा है। क्या कभी यह बात आपके ख्यालमें भी आ सकती है कि आपके ऊपर ४०० मनका बोझ लदा हुआ है और आप ४०० मनका बोझ उठा सकते हैं? आपके शरीरके प्रत्येक वर्ग इञ्च पर लगभग सात सेरका वायुका बोझ (दबाव) पड़ता है।

वायुके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, जिसे हम ईथर कहते हैं। वह सर्व व्यापी है। हमारे कण कणमें यह समा रहा है। वह सीसेसे दो हजार गुना भारी और फौलादसे लाखों गुना मजबूत है, तथापि हमें उसके अस्तित्वका बिलकुल ज्ञान नहीं है।

वायुमण्डलसे पृथ्वीको लाभ

यह तो प्रत्येक मनुष्यका अनुभव होगा कि उसके जीते रहनेके लिए श्वासोच्छ्वास क्रिया अत्यावश्यक है। बिना सास लिए मनुष्य दस पांच मिनट तक ही जीता रह सकता है। इसी प्रकार वृक्ष और पौधे भी श्वास लेते रहते हैं। श्वासोच्छ्वासमें वायुका एक अवयव मात्र—ओषजन—काम आता है। भूमिकी उर्वर शक्ति नत्रजनीय पदार्थों पर निर्भर

है। यह विज्ञानके पाठक कई स्थानों पर देख चुके है कि वृत्तों की वाढके लिए वायुके शेष दो अवयव कितने आवश्यक हैं। अतएव यह कहना कि पृथ्वी पर जीती जागती जोत जगमगा रही है वह वायुमण्डलकी बदौलत ही है। वायुमण्डल ही सृष्टिकी उत्पत्ति और स्थितिका मूल कारण है और वही सौन्दर्य और जीवनका गहवारा है।

माना कि कभी कभी प्रकोप होने पर वायु से बरबादी भी बहुत हो जाती है, पर रात दिन वायुमण्डल हमारी रक्षा करता रहता है। यह तो सभी जानते हैं कि पृथ्वी तलसे जितने ऊचे चढ़ते जाते हैं उतनी ही ज्यादा ठंडक मिलती जाती है। जो लोग बैलूनों या वायुयानोंमें ५ या ६ मील ऊचे तक पहुचे हैं उनका अनुभव है कि मारे सर्दीके उनके हाथ पैर बेकाम होगये थे। फिर अनुमान कीजिये कि वायुमण्डल के बाहर अर्थात् २०० मीलकी ऊचाई पर किस गजबकी सरदी होगी। सम्भवत वहां तो तापक्रम-२७३° श (केवल शून्य) होगा। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या कारण है कि पृथ्वीका तापक्रम भी समस्त देशके तापक्रमके बराबर ही नहीं हो जाता। यद्यपि दिनमें सूरजसे गरमी आती रहती है, रात के १२ घण्टेका समय ही इतना पर्याप्त होता है कि पृथ्वी ठंडी होकर केवल शून्य तक पहुँच जाय। परन्तु देखा यह जाता है कि ध्रुव देशमें भी जहां महीनों सूर्यके दर्शन नहीं होते तापक्रम शून्यसे ३० या ४० अशोंसे अधिक नीचे तक नहीं जाता है। वह क्या वस्तु है जो आपको रक्षा करती है और सूर्यकी अनुपस्थितिमें महा प्रलयसे बचाती है। वह वस्तु है वायुमण्डल।

वायुमण्डल सूर्यके प्रकाश और तापकी किरणोंको आप-तक पहुँचने देता है। यह किरणें पृथ्वीसे टकराकर अप्रकाशमान ताप किरणोंमें बदल जाती हैं, जिन्हें वायुमण्डल फिर निकल कर देशमें जानेसे रोकता है। वायुमण्डल दिनमें गरमी पाई हुई पृथ्वीको रातको उसी प्रकार गरम रखता है, जिस प्रकार भोजनकी गरमी पाये हुये शरीरकी रक्षा (ओवर कोट) लबादा करता है या जिस प्रकार सौड बदनको गरम रखती है।

परन्तु महाशयो, समुद्र इस वायुमण्डलका शनैः शनैः पान कर रहा है। आजसे करोडों वर्ष बाद वायुमण्डलको वह उदर सात् कर चुका होगा। तब महा प्रलयका समय आजायगा। उस समयका खयाल करते हुए भी रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं।

तारों मन भारी गोलोंकी मारसे आप कैसे बचते हैं?

विज्ञानके पिछले अङ्कमें "उल्कापात" शीर्षक लेखमें आकाशीय गोला वर्षाका कुछ वृत्तान्त दिया है। प्रति दिन लगभग दो करोड उल्का हमारे वायुमण्डलमें प्रवेश करते रहते हैं। वायुमण्डलके बाहर अनन्त देशमें असंख्य उल्का, जिनका आकार रेतके कणसे लेकर बडे बडे पर्वतों तकका सा होता है, बडे वेगसे इधर उधर घूमते रहते हैं। इनका वेग प्रायः २० से १०० मील प्रति सैकड तक होता है। इनमें-से कुछ वायुमण्डलमें भी प्रवेश कर जाते हैं और कभी कभी पृथ्वी तक पहुँच जाते हैं। अब जरा इस बातको सोचिये कि यदि इनमेंसे कोई एक छोटा सा उल्का भी पृथ्वी तल तक अपने असली वेगसे पहुंच जाय तो क्या परिणाम हो। १२

इंचकी तोपका गोला प्राय एक तिहाई मील प्रति सैकडके वेगसे चलता है। उसमें इतनी गति-सम्भूत शक्ति होती है कि एक फुट मोटी फौलादकी चद्दरको दफतीकी नाईं छेद कर निकल जाता है। गति सम्भूत शक्ति वेगके वर्गके अनुपातमें बढती है। अनुमान कीजिये कि १०० मील प्रति सैकडके वेग से चलने वाले गोलेके समभार वाले उल्का में कितनी अधिक शक्ति होगी। बडे बडे पहाडोंकी हकीकत उनके सामने कुछ न होगी। पृथ्वी पर पहुँचते ही, हजारों फुटतक धसते हुये वह चले जायगे। परन्तु वायुमण्डल यहाँ भी हमारे आडे आता है। वायु मण्डलमें प्रवेश करते ही वायुकी रगडके कारण उल्काका वेग घटने लगता है और उसमें गरमी पैदा होने लगती है। यही गरमी उसे जलाकर तहस नहस कर देती है या उसकी छार छार हो जाती है। इसीसे बहुत कम उल्का पृथ्वी तक पहुंच पाते हैं और यदि पहुच भी जाते हैं तो उनका वेग बहुत घट जाता है। कदाचित् वायुमण्डलकी चादर उघाड दी जाय, तो सरदीके अलावा इस आकाशीय गोला वर्षाके कारण समस्त प्राणियोंका अन्त बातकी बातमें होजाय और पृथ्वी चलनीकी नाईं छिद्र युक्त हो जाय या मक्खिकाका सा छत्ता दीखने लगे।

अब हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि वायु एक प्रकारका पदार्थ है। उसमें बोझ होता है, वह जगह घेरता है और शक्ति का वाहन कर सकता है। वह एक ऐसा पदार्थ है जो हमें सब तरफसे घेरे हुए है, बल्कि दबाये हुए है। यदि यह दबाव हट जाय तो हमारी रक्तवाहिनी, शिराए और धमनियां फूल कर फट जाय और हम लोग थोडी देरमें तडप तडप कर मर

जाय। क्या आपने कभी सींगी लगाते हुए देखा है? केवल मुहसे सींगीमें की हवा हटा देनेसे रन्ध्रों द्वारा रुधिर निकल पडता है। कदाचित् पूर्णतया हवा शरीर परसे हटा दी जाय तो उपरोक्त दशा होते देर न लगे। कभी कभी तमाशे-करनेवाले कांचके गिलास को पानी भर कर उस पर कागज ढक कर गिलासको औंधा देते हैं और पानी नही गिरता है। इसका भी कारण यही है कि वायुका दबाव कागज पर पड़ता हैं, जो पानीको साधे रहता है। प्रयोगों द्वारा मालूम हुआ है कि प्रति इंचपर वायुके कारण लगभग साढे सात सेरका दबाव पडता है। इस हिसाबसे हमारे कुल शरीर पर लगभग ४०० मनका दबाव पडता है? क्या आप कभी ख्याल भी कर सकते हैं कि आप इतने दबावको सह सकते हैं?

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि वायुका दबाव निश्चित है, तो दबावका कारण—वायुमण्डलकी ऊंचाई अथवा वायु सागरकी गहराई जिसकी तलैटीमें हम रहतेहैं—निश्चित होगा। हा अवश्य होना चाहिये, परन्तु हमारे ज्ञानकी सीमा इतनी विस्तृत नही कि हम उसका ठीक ठीक निश्चय कर सकें। उसका कारण यह है कि वायुका गुरुत्व पृथ्वीतल-पर सबसे अधिक हैं। जैसे जैसे ऊपर चलते जाते हैं हवा हल्की होती जाती है। जिस नियमके अनुसार वायुकी गुरुता-में अन्तर होता जाता है उस नियमको हम ठीक ठीक नही जानते। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिकोंने अपनी अपनी समझसे वायुमण्डल की ऊंचाईका अन्दाजा लगाया है। ऐरेनियसका अनुमान है कि वायुमण्डल २५० मील तक चला

गया है। अन्य वैज्ञानिकोंका मत है कि सम्भवत इसकी सीमा ५०० मील है।

उल्का १०० या १२५ मीलकी ऊंचाई पर दिखाई दे जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि इतनी ऊंचाई पर भी वायुकी पर्याप्त मात्रा होनी अनिवार्य है, क्योंकि वायुकी अनुपस्थितिमें उल्काका जल उठना असम्भव है। जो कुछ भी हो, इतना अवश्य निश्चय है कि ऊंचाईके साथ वायुकी मात्रा और साथ ही साथ दबाव बडी शीघ्रतासे घटता है। ४६५४ गज ऊंचेपर समुद्र तलकी अपेक्षा दबाव केवल ६२ रह जाता है। ग्लेशर और मेक्सवेलने, जिनकी बैलून यात्राका हाल पाठक पढ चुके हैं,* यह मालूम किया था कि छ मील ऊंचेपर दबाव केवल चौथाई रह जाता है। छ. या सात मीलसे अधिक ऊंचका अनुभव किसी मनुष्यको अभी तक नहीं हुआ है, किन्तु अनुमान है कि ३१ मील ऊंचे पर वायुका दबाव ३ सहस्रांश मीटर है और ६२ मील ऊंचे पर केवल ०२स० मी०। स्मरण रहे कि पृथ्वी तलपर दबाव ७६० स० मी० है। यह नाप तो पारे के स्तम्भ की ऊंचाईके रूपमें हुई। इसको यों भी समझ सकते हैं कि ३१ मील ऊंचे पर दबाव केवल ५ माशे ५ रत्ती प्रति वर्ग इंच होगा। ६२ मील ऊंचे पर तो दबाव ३ रत्ती ही रह जायगा।

थोडी देरके लिए मान लीजिये कि आप पृथ्वी मण्डलसे ३१ मील ऊंचे तक जाना चाहते हैं। आपको न तो कोई बैलून और न कोई एरोप्लेन वहां तक पहुंचा सकेगा। हां जर्मनोंकी किसी भीम-काय होविटजरको चलाइये और उसके गोले पर

* देखिये विज्ञान भाग ८ पृष्ठ १६४

सवार हो जाइये तो वह शायद आपको वहां तक पहुचा दे। पर ठहरिये आपको पहले से तय्यारी भी करनी पडेगी। उसका हाल सुन लीजिये। ४०० मनका एक लबादा बनवाना पडेगा जो आपके शरीरके बाल बालको ढका रखेगा। केवल आंखोंके सामने देखनेकी गरजसे कांचके पत्र लगा सकेंगे। उस लबादे-के अन्दर सांस लेनेके लिए ओषजनके पात्र और प्रश्वासकी अशुद्ध वायुके शोषणके लिए सोडियम ओषिद रखना पडेगा। इसके अतिरिक्त आपको गरमी पैदा करनेके लिए भी सामान ले जाना होगा, क्योंकि इतनी ऊंचाई पर बडी भयानक ठण्ड पडती है। मान लीजिये कि आप समुचित तय्यारी करके गोले पर बैठ वहां तक पहुच गए और किसी प्रकार वहां ठहर गये। आपके पीछे आपके किसी मित्रको भी सूझी कि आपसे मुलाकात कर आवें और वह भी वहाँ पहुचे, तो बडा लुत्फ होगा। आप बडे तपाकसे उनसे बढकर हाथ मिलाएंगे, परन्तु इसके बाद आप जो कुछ कहेंगे उसका जवाब न पाएंगे। वास्तवमें आप अपनी कहते आयगे उनकी एक न सुनेंगे। उधर वह अपना सुर अलापेंगे कि आप बडे मगरूर हैं कि उनकी बातका जवाब ही नहीं देते। बात यह है कि यदि वहां पर किसीके कानों पर तोपें भी दागी जाय, तो भी उसके कानों पर जूंतक न रेंगे। इसका कारण यह है कि शब्दका वाहक है वायु और वहां है प्रायः वायुका अभाव।

प्रकृतिने आपके बचावके अनेक उपाय कर रखे हैं। पृथ्वी के वायुमण्डलके बाहर, अनन्त आकाशमें बड़े बड़े सूर्य कभी कभी टकरा जाते हैं। उस समय बड़ा भीषण शब्द उत्पन्न होता है, जो कदाचित् पृथ्वी तक पहुच जाय तो समस्त

प्राणियोंको बहरा कर दे। इसी घटनासे बचानेके लिए प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध पहलेसे ही कर रक्खा है कि ५०० मीलके आगे शब्दका वाहक वायु है ही नहीं, जिससे वहांका शब्द हम तक पहुच ही नही पाता।

वायुके अवयव

ओषजन और नत्रजन, यह वायुके दो प्रधान अवयव हैं। ओषजन चीजोंके जलने और पशुओं और पौधोंके श्वासोच्छ्वास में काम आता है। नत्रजन ओषजनकी तेजीको कम करने में साधारणतया काम आता है, पर वास्तवमें वही जीती जागती सृष्टिकी अधिष्ठात्री देवी है। उसके बिना न पौधोंकी वृद्धि और शरीर रचना सम्भव है और न पशुओंकी। वायुमें इन दो गैसोंके अतिरिक्त कर्बन द्विओषिद, उज्जन, आर्गन, नियन, हीलियम, क्रुप्टन, ज़ीनन, नमकका तेजाब, ओज़ोन आदि अनेक पदार्थ न्यूनाधिक मात्रामे रहते हैं।

कौनसा अवयव किस परिमाणमें मौजूद है, यह समझने के लिए आप मान लें कि आपके पास एक लोटा है, जिसमें एक सेर पानी समाता है और आप १०००० लोटे वायुके भर कर जांच करते हैं तो आपको निम्न लिखित गैसें इस परिमाण में मिलेंगी—

नत्रजन	७८०३	लीटे,	जिसका	भार	होगा	९ ७०८०	सेर	अथवा	पौने दस सेर
श्रोषजन	२०९९	"	"	"	"	२ ९९८४	"	"	तीन सेर
आर्गन	९४	"	"	"	"	१९७६	"	"	साढे तीन छटाक
अर्थन द्विश्रोषिद्	३	"	"	"	"	००५९	"	"	साढे पाच माशे
उज्जन	१	"	"	"	"	०००१	"	"	छ चावल

इनके अतिरिक्त चार और गैस हैं, जो वायुमें अतिन्यून परिमाणमें पायी जाती हैं। उनका भी यदि कुछ अन्दाज जानना हो तो मान लीजिये कि आप एक करोड लीटेवायु लेकर परीक्षा करते हैं तो आपको इस प्रकार निम्न लिखित अवयव मिलेंगे।

नाम	आयतन	भार
नियन	१५० लीटे	८ तोले ६ माशे
हीलियम	१५ "	२ माशे ५ रत्ती
क्रतन	१५ "	१ माशा ६ रत्ती
ज़ीनन	००६ "	२ रत्ती २ चांवल

ग्राहम महोदय की कल्पना

सम्भव है कि उपरोक्त बडी बडी सख्याओं से पाठक घबडा गये हों। अतएव ग्राहम महोदयकी कल्पनाका कथन करना अनुचित न होगा। मान लीजिये कि आपने

मन्त्रके बलसे वायु मण्डलको द्रव रूपमें बदल दिया, तो उ
अवयव अपने गुरुत्वानुसार तह बना लेंगे। यहां यह
मान लीजिये कि यह द्रव एक दूसरेसे अलग ही रहते
मिलते घुलते नहीं। इन तहोंकी मोटाई और क्रम इस
होगा ,—

पानी	५ इंच
कर्बन द्विओषिद	१३ फुट
आर्गन	६० गज
ओषजन	१ मील
नत्रजन	४ मील

वायुमण्डल की सैर

बैलूनों या वायुयानोंमें बैठकर मनुष्य सात मीलसे अ
ऊंचा नहीं जा सका है। अतएव इतनी ऊंचाई तकका
तो हमें मालूम है। छः मील तक वायुमें यह सब अवयव
जाते है जो ऊपर गिन आये है। छः मीलपर पहुंचकर
वाष्प बादलोंका रूप धारण कर लेती है। इससे आगे
वाष्प नहीं मिलती। छः मीलसे आगे ३० मीलतक ओप
नत्रजन और ओजोन ही पाये जाते है यद्यपि अन्य अव
भी सूक्ष्म मात्रामें रहते हैं। ३० से ६० मीलतक ओजो
नत्रजन, उज्जन और हीलियम ही वायु मण्डलके
अवयव है। इस प्रदेशमें ओषजन प्राय ओज़ोनके रूपमें
मिलती है। ६० मीलके ऊपर केवल हीलियम और उज्जन
साम्राज्य है।

यहां पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब मनुष्य
पहुंच सात मीलसे आगे है ही नहीं, तो क्या उपरोक्त सम

घातें कल्पित हैं? गिरते हुए उल्काओंकी परीक्षा रश्मिचित्र दर्शकसे वैज्ञानिकों ने समय समयपर की है और अन्य यन्त्रों से उनकी ऊंचाई भी निकाली है। इन दो प्रयोगोंके परिणामोंसे उक्त सिद्धान्त निर्धारित हुए हैं।

इन परीक्षाओंसे मालूम हुआ है कि ६२ मीलकी ऊंचाई-पर वायुके १०० भागोंमें प्राय ९९½ भाग उज्जनके और ½ भाग हीलियमका होगा।

वायुमें जल वाष्पका परिणाम

१०० भाग (आयतन) वायुमें १३ भाग जल वाष्प साधारणतया प्रस्तुत रहती है। या यों समझिये कि १०० मन वायुमें ३३ सेर जल वाष्प होगी। यद्यपि यह मात्रा अत्यन्त अल्प मालूम पड़ती है, तथापि समस्त वायु मण्डलमें प्रस्तुत जलका परिमाण बहुत अधिक है। उसकी तोल प्राय एक पद्म चालीस नील मन (१४०००००००००००००० मन) है। यदि जादूके जोरसे इस वाष्पको इकट्ठाकर पानी बनावें तो तो एक मील गहरी, १०० मील चौड़ी, १२० मील लम्बी झील बन जायगी।

जल वाष्पका पृथ्वी पर प्रभाव

इस अदृश्य जलवाष्पका पृथ्वीपर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कदाचित् वायु मण्डलमें जल वाष्प न रहे, तो औसत तापक्रम २० श कम हो जाय। संयुक्त प्रान्तमें गर्मियोंमें भी जाड़े की अपेक्षा अधिक कड़ी सर्दी पड़ने लगे और जाड़ोंमें शिमलेका मजा आने लगे। उधर यूरोप आदि शीत प्रधान

देश तो सदा अगाढ हिमावरणसे ढक जाय और ध्रुव देशोंकी नाई मनुष्यके रहने योग्य न रहें।

इसका कारण वही है जो पहले बतलाया जा चुका है। सूर्य से आनेवाली प्रकाश युक्त किरणें पृथ्वीसे टकरा कर अप्रकाशमान उष्णताकी किरणोंमें बदल जाती हैं। जल वाष्प और कर्बन द्विओषिद ही इन किरणोंको फिर निकलने नहीं देते और पृथ्वीको लिहाफकी तरह गरम रखते हैं।

कदाचित जलवाष्प वायुसे हलकी न होती

प्रकृतिकी छोटी से छोटी घटनाओंमें परमात्माके अपूर्व गौरवका अनुभव होता है। इन्हें देख सृष्टिवादको माने बिना बुद्धिको शान्ति और मनको विश्वास नहीं होता। जल वाष्प वायुसे हलकी होती हैं। यदि वायुके भारी पनको १०० मानें तो जल वाष्पका ६२ होगा। यह कारण है कि जलवाष्प पृथ्वीसे ऊपर उठ जाती हैं और मीलों ऊपर पहुँचकर बादल बना देती है। यदि जल वाष्प वायुसे भारी होती तो वह पृथ्वी तलपर ही एकत्रित होती जाती और हम सदा एक बड़े गहरे कुहरेमें घिरे रहते। अपने मित्रों के दर्शन होने मुश्किल हो जाते। यद्यपि हम उनसे बातचीत कर सकते पर उनकी सूरत मुश्किलसे दीख पड़ती। हमें रास्ता चलना मुश्किल होजाता। फिर प्राकृतिक दृश्योंकी छटा—आकाशकी नीलमा युक्त आभा, तारोंका मन लुभानेवाला टिमटिमाता प्रकाश, पुष्पोंका स्वर्गीय सौन्दर्य—सदाके लिए हमारी आंखोंसे छिपजाते। वस्तुत यह कहना कठिन है कि उस दशामें कितने पशु, पक्षी, मनुष्य और वनस्पति इस भूमण्डलपर जीते रहते और सभ्यताका विकास कहां तक हो पाता।

कर्बन द्विओषद के चमत्कार

वायुके दस हजार भाग लें तो उसमें ३ भाग कर्बन द्विओषिदके मिलेंगे। यद्यपि कर्बन द्विओषिद्की मात्रा इतनी कम है, तथापि इसीसे मनुष्यों और वनस्पतियोंके शरीरका कर्बन प्राप्त होता है। यही पृथ्वीको गरम रखता है और मनुष्य और वनस्पतिके उपजने योग्य बनाता है। यही चट्टान रूपी दैत्यों-का नाश कर पोटासियम रूप रत्न भूमिको प्रदान करता है और उसकी उर्वर शक्तिको ज्योंका त्यों बनाये रखता है। यह विषय बहुत विस्तृत है। अतएव किसी स्वतंत्र लेखमें इसकी चर्चा की जायगी।

सर्वव्यापी धूल

साधारणतया हवा हमको स्वच्छ और निर्मल दिखाई पडती है, परन्तु यदि किसी कमरेमें सूर्यका एक किरण समूह प्रवेश करता हो तो उसके मार्गमें बहुत से धूलके कण, हल्की, चीजोंके रेशे इत्यादि उडते हुए दिखायी देंगे। इससे प्रतीत होता है कि वायु अगणित छोटे छोटे कणोंसे भरी हुई है, जो बडे वेगसे हिलते डोलते रहते हैं। शहरोंके ऊपर तो वस्तुतः धूल कणोंका एक समुद्र सा ही सदा बना रहता है, परन्तु न्यूनाधिक धूल कण वायुमण्डलमें सर्वत्र ही-पृथ्वीतलसे लेकर जहां तक वायु मण्डलका अन्त है—पाये जाते हैं।

अब इस बातकी खोज करनी है कि यह धूल कण कहांसे आते हैं? वातावरणके निचले भागोंमें तो यह कण पृथ्वीसे ही पहुंचते हैं। वायुके वेगसे, मरुतके झकोरोंसे, आंधीके थपेडोंसे बारीक मट्टी, रेतके कण, समुद्रकी तरंगोंके टकराने से पैदा हुई बौछारोंका जल और लवण, गन्दी नालियोंके

पानीके छीटोंके साथ उचटे हुए हानिकारक जीवाणु, उपयोगी जीवाणु, तथा अनेकानेक पदार्थोंके कण वायुमण्डल में पहुंच जाते हैं और हलके होनेके कारण वहां लटके हुए रह जाते हैं या धीरे धीरे नीचे गिर जाते हैं। पर वायु मण्डलके ऊपरी भागोंमें या तो उसके बाहरसे आते हैं या पृथ्वीतलसे पहुंचते हैं। पृथ्वीपर जब कभी ज्वालामुखी जागते हैं और उनमेंसे बड़े बड़े भयावने धड़ाकोंके साथ, बड़े वेगसे लाखोंमन रेत निकलती है, तो उसका कुछ हिस्सा बहुत ऊंचा चढ़ जाता है और वायुमण्डलको भेद कर अनन्त आकाशमें पहुंच जाता है। ऐसी घटनाएं अन्य तारों और ग्रहोंपर हजारों गुने बड़े पैमानेपर हर घड़ी हुआ करती हैं। अतएव प्रत्येक धड़ाकेके साथ इन पिण्डोंमेंसे लाखों मन रेत निकल जाती है। अनुमानतः सूर्य ८४ खरब मन रेत प्रतिवर्ष खो बैठता है और पृथ्वीको प्रतिवर्ष पांच लाख साठ हजार (५६००००) मन रेतका लाभ होता है। यह रेत जैसे ही देशमें पहुंचती है कि बड़े वेगसे चक्कर लगाती है और उसका कुछ अंश जो अन्य तारों, ग्रहों और उपग्रहोंके पास जा निकलता है उनके आकर्षणके द्वारा, उनमें जा पहुंचता है।

यह घटना चक्र अनन्त कालसे अनन्त ग्रहों, उपग्रहों और तारोंमें हो रहा है, अतएव उनका भार प्रायः ज्योंका त्यों ही बना रहता है, क्योंकि जितनी धूल किसी पिण्डसे अलग हो जाती है प्रायः उतनी ही उसमें बाहरसे आजाती है। यदि यह धूल विनिमय न होता तो यह पिण्ड कभीके काफूर हो जाते। इन्हीं घटनाओंके कारण समस्त देश, जिसकी झलक परम प्रवीण दूरदर्शकों द्वारा मनुष्यको मिली है, ऐसी रेतसे

भरा हुआ है, जो, जैसा कि ऊपर बतला आये हैं, बड़े वेगसे चक्कर लगा रही है। इन धूल कणोंका वेग हजारों मीलोंमें नापा जाता है। यह कण उचित दशामें मिल कर उल्का, पुच्छल तारे, सूर्य, ग्रह, उपग्रह अथवा नीहारिका बना लेते हैं। इन्हींसे सम्भवतः नये ब्रह्माण्डोंकी रचना होती है।

महाशयो, यह कण समुदाय, यह कणोंका गुच्छक, जो इस समय तख्त पर बैठा, मेजपर झुका हुआ, बड़े अहङ्कारसे यह लेख लिख रहा है, इसके एक एक कणका इतिहास इतना पुराना है कि बुद्धि उसका विचार करके थकित हो जाती है। इसमेंके किसी एक कणपर ही विचार कीजिये जो दिमागमें हरकत कर रहा है और विचार उत्पन्न कर रहा है। यही कण सुदूर भूत कालमें हजारों मील प्रति सेकण्डके वेगसे, आकाशीय धूलके रूपमें, चक्कर लगा रहा था। अन्य कणोंके साथ मिल कर इससे पर नीहारिका बन गई, नीहारिकासे एक सूर्य और उसकी सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। यह उसी सम्प्रदायमें कहीं छिपा पड़ा रहा। अरबों वर्ष तक वह सूर्य प्रकाश और उष्णता उत्पन्न करके अन्तमें ज्योतिहीन हो गया और कुछ समय बाद किसी तारेसे टकरा गया, जिससे दोनोंकी छार छार होगई। इसी प्रकार यह कण अनेक ब्रह्माण्डोंका अवयव होनेका सौभाग्य प्राप्त करता हुआ एक समय पृथ्वीपर आपड़ा। यहां पर भी न जाने कितनी बार वह वनस्पतिका रूप धारणकर, पशुओं और मनुष्योंका अङ्ग बन चुका है, बार बार देहावसान होने पर फिर मिट्टीमें मिल चुका है और आज फिर अभिमानसे मस्तिष्कमें बैठा विचार उत्पन्न कर रहा है। ईश्वर तेरी माया अपरम्पार है! तेरी सृष्टि-

के एक तुच्छसे तुच्छ कणकी यह सनातनता और यह प्राचीनता, ऐसा विचित्र इतिहास और ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन।

मनुष्य इन बातोंका पार क्या पा सकता है? जो रेतके कण वायु मण्डलमें प्रवेश करते हैं, वह प्राय विद्युन्मय होते हैं। उनमें प्रायः ऋण विद्युत् विद्यमान रहती है। अतएव वायु मण्डलमें घुसते ही उनका विचलन ध्रुव देशोंकी ओर होता है, अर्थात् सीधे भूतल तक न पहुचकर वह पृथ्वीके ध्रुवोंकी ओर मुड जाते हैं और वहां पहुचकर आकाशमें विचित्र तमाशे दिखाते हैं। जो बिजली कि चमक चमक कर हमें नृत्य दिखाती है, वह कणोंके साथ अनन्त आकाशके दूरवर्ती सूर्य या तारेसे चलकर लाखों वर्ष तक यात्रा करती हुई, हमारे ग्रह तक आ पहुँची है। उन सूर्योंका मनुष्यको दूर्वीक्षणकी सहायतासे भी दर्शन होना दुर्लभ है, यद्यपि उनके पाससे यह कणदूत आते हैं और विद्युत्की भेट हमारे मन्दिर में चढाते हैं।

वायु मण्डलमें जो रेतके कण विचरते हैं उनसे एक और बडा उपकार होता है। यही वास्तवमें हमारे इन्द्र हैं, क्योंकि इन्हीका आश्रय ले जल वाष्प बादल बनाते हैं और पानी बरसता है। कदाचित् वायु मण्डल कण रहित हो जाय तो सम्भवत वर्षा होना बन्द हो जाय और पृथ्वी जीवनशून्य हो जाय।

दिव्य दृष्टिसे वायुकी सैर

सूर्यकी किरणोंके किसी कमरेमें प्रवेश करने पर उसके रास्तेमें रेतके जो कण दिखायी पडते हैं, उन्हें त्रसरेणु कहते हैं,—

जालान्तर गते भानौ सूक्ष्म यद् दृश्यते रज.।
प्रथम तत्प्रमाणानां त्रसरेणु प्रचक्षते ॥

इन्होंको देखकर भारतीय ऋषियों और यूनानी दार्शनिकों-ने परमाणु-वादकी रचना की। भारतीय ऋषियोंके मतानुसार परमाणु त्रसरेणुका तीसवा हिस्सा है'—

जालान्तरगते रश्मौ यत्सूक्ष्मं दृश्यतेरजः ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥

परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक परमाणु त्रसरेणुके करोडवें हिस्सेसे भी छोटा होता है।

अब थोडी देरके लिए मान लीजिये कि हमें दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है, जिसके कारण हम वायुको भी देख सकते हैं और प्रत्येक वस्तुका आकार हमें १० करोड गुणा बडा दीखता है, तो हमें एक अद्भुत दृश्य दिखाई देगा। प्रत्येक त्रसरेणुमें करोडों अखरोट के बराबरके कण दिखलाई देंगे जो बडे वेग-से पेंडुलमकी नाईं हिल रहे हैं। त्रसरेणुके आसपास अबों और खर्बों वायुके कण झपट कर इधर उधर जाते हुए नजर पडेंगे। इनमें से प्रत्येक ५२५ गज प्रति सेकण्डके वेगसे भ्रमण कर रहा है। यह दशा तो निस्तब्ध वायु की है। आंधीमें तो यह गति और भी वेगवती हो जाती है। जरा सोचिये कि यह अणु कितनी तेजीसे भ्रमण करते हैं। तेजसे तेज डाकगाडी भी प्रति सेकण्ड २७ गजसे अधिक नहीं चल पाती। हां, कुछ वायु यान अनुकूल परिस्थितिमें ५५ गज तक उड लेते हैं। तो स्पष्ट है कि यह अणु तेज से तेज डाकगाडीसे लगभग २० गुने और वायुयानोंसे १० गुने वेगसे रमते रहते हैं। इनके आकार-का ध्यान रखते हुए तो यह कहना पडता है कि यह गजब ढाते हैं। कहां एक इंचका पांच करोडवां भाग (अणुका व्यास) और कहा ५२५ गज! यदि आप भी उसी हिसाबसे

अपनी ऊचाईका ध्यान रखकर एक अरब मील एक सेकडमें चलने लगें तो अणुकी बराबरीका दावा कर सकते हैं !

आइये अणिमा सिद्धिके सहारे हम भी अणुके लाखवें टुकडेके बराबरका रूप धारण करलें और एक अणु पर सवार हो इस अणु ससारकी सैर देखने के लिए एक तरफ खडे हो जाय। यह देखिये बातकी बातमें दसहजार वायुके अणु हमारे सामने से निकल गये। इनमें से पहचाना या नहीं, ७८०० नत्रजनके थे, २१०० ओषजनके, ९४ आर्गनके, ३ कर्बन द्विओषिदके और एक उज्जनका। और गैसोंके अणु तो बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यदि यह मान लें कि हवाका एक अणु एक सेकडमें हमारे सामने से निकलता है तो पाच बरसमें नियनके २६०, हीलियमके २०, क्रुसनके ७ और जीननके १ अणु की नौबत आयगी। परन्तु एक मिनटमें ही ४८ नत्रजनके और प्राय १२ ओषजनके सामने से निकल जायगे।

एक अंगुष्ठ मात्र वायुमें लगभग १६० सख अणु होते हैं। फिर जरा ख्याल तो कीजिये कि समग्र वायुमण्डलमें, जो सैकडों मील ऊचा, हजारों मील लम्बा चौडा है कितने अणु होंगे। यह महती सख्या कल्पनातीत है। हवाके प्रत्येक झोंके में, आंधीके प्रत्येक आक्रमणमें कितने अणु आपके पाससे निकल जाते होंगे, इसका हिसाब लगाना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। परन्तु स्मरण रहे कि अणु ससारका प्रत्येक प्राणी धर्म परायण है। वहांके अटल नियमोंका कभी कोई उल्लघन कर ही नहीं सकता। ईश्वरकी महिमाका साक्षात् अनुभव इस जटिलतामें नियमोंकी अटलता पर विचार करने से हो सकता है।

वायुमण्डलका भूत

वायुमण्डलकी वर्तमान अवस्था पर उसके अवयवोंकी प्रकृति, परिमाण, गुण और उपयोगिता पर हम विचार कर चुके हैं। पर सम्भव है कि कुछ सज्जनोंके दिलोंमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ हो कि क्या अनन्तकालसे वायुका संगठन ऐसा ही रहा है जैसा वर्तमानमें है या भूतकालमें इससे कुछ भिन्न था? संसार परिवर्तनशील है। इसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो निरन्तर बदल न रही हो। हां कुछ बहुत धीरे धीरे बदलती हैं और कुछ अधिक तेजीसे। जो शीघ्रतासे परिवर्तन करती हैं उन्हींको क्षणभंगुर, अस्थिर और अपायी कहते हैं। दार्शनिक इसी खयालसे दुनियाके सुखोंको सोतेके स्वप्न सा समझते हैं। परन्तु जो चीज अत्यन्त मन्द गतिसे बदलती है उसे स्थायी और अटल कहते हैं। वायु मण्डल भी परिवर्तन शील है, परन्तु उसमें परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होते हैं। महाभारतमें लड़नेवाले भी सम्भवतः ऐसी वायुमें सांस लेते थे जिसमें हम ले रहे हैं। मिश्रकी मीनारें जब बन रही थीं तब भी वायुका संगठन प्रायः ऐसा ही था जैसा अब है। परन्तु द्वापर और त्रेतायुगमें वायुका संगठन अबसे अवश्य भिन्न रहा होगा। मान लीजिये कि प्रति वर्ष ओषजनकी मात्रा .०१ प्रतिशत कम होती है, तो इतनी घट बढ़का परीक्षाओं द्वारा जान लेना बहुत कठिन है। पर १००० वर्षमें इस हिसाब में ओषजनकी मात्रा १ प्रतिशत घट जायगी, जिस परिवर्तन-का पता लगाना कठिन नहीं है। पृथ्वीकी आयु सम्भवतः दस करोड़ बरससे ज्यादा ही है। इस समयमें वायुका संग-ठन सम्भव है कई बार बिल्कुल बदल चुका हो।

पृथ्वीके विकास क्रमका जो कुछ ज्ञान हमको भूगर्भशास्त्र और ज्योतिषके अध्ययनसे प्राप्त होता है, उससे पृथ्वी पिण्डकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें कैसा वायुमण्डल रहा होगा, इस बातका भी बहुत कुछ पता लग जाता है। जब पृथ्वी पर श्वेत उत्तप्त द्रवी भूत चट्टानोंका समुद्र किलोलें कर रहा था, उस समय वायु मण्डलमें जल वाष्प, कर्बन द्विओषिद नत्र जन, मार्शगैस और सम्भवतः हीलियम और उज्जन थी। प्राणोंकी रक्षा करने वाली ओषजन अत्यत न्यून मात्रामें थी। इस प्राचीन वायु मण्डलमें अचम्भेकी बात यह थी कि कर्बन द्विओषिद की मात्रा अत्यधिक थी। जो कर्बनद्विओषिद कि चूनेके पत्थर, सगमरमर, खडिया आदि पदार्थोंमें समायी हुई पृथ्वीके गर्भमें अनेक भागोंमें भरी पडी है वह उस सुदूर काल में स्वतन्त्र रूपमें वायु मडलमें विचरती थी। उसका ही आयतन सम्भवतः आजकलके वायुमडलके ६०० गुनेसे अधिक था। अतएव उस समय वायुमडलका दबाव भी बहुत ज्यादा था। प्रति वर्ग इंच पर दबाव था ४०० मनसे कुछ अधिक। आजकलके पशुपक्षियों और मनुष्योंका ऐसा दबाव मे रहना असम्भव है। शायद किसी और ही तरहके प्राणी तब रहे हों तो दूसरी बात है।

वायुमडलकी यह दशा बहुत दिन तक न रही। पृथ्वी ठडी हो रही थी और अब भी हो रही है। कुछ दिनोंमें जल वाष्पका पानी बनकर समुद्रों और सागरोंकी उत्पत्ति होगयी और कर्बन द्विओषिदको ठडी होती हुई चट्टानोंने सोखना शुरू किया, यहा तक कि उसकी मात्रा बहुत कम (०३ ./) रह गई।

प्राचीन वायुमण्डलमें ओपजनकी मात्रा अत्यन्त कम थी, इस बातके मानने के लिए अनेक कारण हैं। उस समय पृथ्वी-पर बहुतसे ऐसे पदार्थ थे, जिनका ओपजनके साथ मिलकर यौगिक बना लेना अनिवार्य था। अरबों मन कोयला जो अब खानियोंमें भरा पड़ा है, वह उस समय अवश्य ही कर्बन द्विओपिद्के रूपमें रहा होगा। इसके अतिरिक्त जो लोहे और अन्य धातुओंके गन्धिद और नीचे ओपिद भूगर्भमें भरे हुए हैं, वह भी उस उच्च तापक्रम पर ओपजनको, यदि वह स्वतन्त्र रूपमें होती तो, कदापि न छोड़ते।

वनस्पति ऋण

हिन्दूशास्त्रोंमें ऋषिऋण, पितृऋण और देव ऋण—यह तीन तरहके ऋण माने हैं। पर आधुनिक विज्ञान आपको बतलाता है कि एक और भी ऋण है, जिससे उऋण होना आपकी शक्तिके बाहर है और वह है वनस्पति ऋण। हम ऊपर कह आये हैं कि प्राचीन वायु मण्डल ओपजन विहीन था। उसमें ओपजन प्राय कर्बन द्विओपिदके रूपमें ही विद्यमान था। कर्बन दैत्यसे ओपजन अमृतको छुडाकर लाना और जीवनकी उत्पत्ति और स्थिति सम्भव कर देना -यह वनस्पति-देवताका ही काम है। कुछ नीचे कोटिकी वनस्पति (अर्थात् जीवाणु) उस समय भी पृथ्वी पर रही होगी जब ओपजन न थी। उन्हींसे ऐसे पौधोंका विकाश हुआ जो कर्बन द्विओपिद-को तोड़ कर कर्बन ग्रहणकर लेते हैं और ओपजन मुक्त कर देते हैं। शनै शनै. इन पौधोंने निरन्तर काम करके ओपजन-को कर्बनके पंजेसे छुडाया और अपनी जाति तथा अन्य जीवों-की सृष्टिका द्वार खोल दिया (ओपजनकी पौधों और पशुओं

में वायुके ही पर्वत होंगे और समुद्रोंमें ठोस वायुके हिम पर्वत (ice bergs) तैरते फिरा करेंगे। इस अवस्थामें भी वायु मण्डल कुछ नाम लेनेको तो होगा, पर पृथ्वीका ठंडा होना यहां ही समाप्त न होगा। उपर्युक्त घटनायें सम्भवत उस समय होंगी जब तापक्रम—१८०° होगा। तापक्रम धीरे धीरे और भी घटेगा। और साथ ही साथ जो कुछ रहा सहा वायु मण्डल है वह भी ग़ायब होता जायगा यहां तक कि जब ताप क्रम – २१० श हो जायगा तो वायुमण्डलका निशान तक न रहेगा। पृथ्वी तल पर महाशून्यका साम्राज्य स्थापित हो जायगा। उस समय कुल हवा ठोस रूपमें होगी और पृथ्वी पर पूर्ण निस्तब्धता दिखाई पड़ेगी। उस समय न हवाकी सनसनाहट, न वर्षाकी मधुर ध्वनि, न बिजलीकी कड़क, न बादल की गरज और न चिड़ियोंकी चहचहाहट सुनाई देगी। आकाशकी नीलमायुक्त आभा अपूर्व कालिमामें परिणत हो जायगी, जिसको भेदकर तारोंका प्रकाश अंधकारमय पृथ्वी पर पड़ा करेगा। इस प्रकार पूर्ण अंधकारमयी पृथ्वी ज्योति हीन सूर्यकी परिक्रमा लाखों अरबों बरस तक करती रहेगी और अन्तमें या तो यह अनन्त आकाशमें लय हो जायगी या किसी अन्य सूर्यसे टकराकर फिर एक नई नीहारिका जन्म धारण कर लेगी और अपने इस जन्मकी सारी लीला दुबारा उस परमप्रवीण सूत्रधारको कर दिखायेगी।

यदि यह भी मान लिया जाय कि सूर्य ठंडा न होगा तो भी वायुमण्डलका विनाश तो निश्चय ही है। पृथ्वीका भीतरी भाग गरम है, इसी कारण जो पानी या हवा ऊपरी तहको भेदकर भीतरकी तरफ जाना चाहता है वह गरमीके कारण

फिर बड़े वेगसे बाहरकी ओरको फिर आता है। पर धीरे धीरे पृथ्वीका भीतरी भाग ठंडा होता जा रहा है। यह ठंडा होना किसी प्रकार नहीं रुक सकता।

इसका परिणाम यह होगा कि समुद्र और वायुमण्डल पृथ्वीकी ऊपरी ठंडी ठोस तहमें इस तरहसे समाते हुए चले जायगे जैसे स्पञ्जमें पानी समा जाता है और अन्तमें पृथ्वीतल-पर न पानी रहेगा और न वायु।

घूरेमें लक्ष्मीका वासा



'घूरेमें लक्ष्मीका वासा', यह बड़ी पुरानी कहावत है। यह तो नहीं कह सकते कि यह कहावत कबसे और किस घटनाके कारण प्रचलित हुई, पर अनुमानसे काम लेकर यह अवश्य कह सकते हैं कि सम्भवत कृत्रिम खादके प्रयोगसे इसका सम्बन्ध है। गाँवोंमें जो कूड़े करकटका ढेर इकट्ठा होजाया करता है उसीको खादके काममें ले आते हैं। और यह तो सभी जानते हैं कि बिना खाद खेती असम्भव है। पर खेतीको छोड़ अन्यत्र इस कहावतको चरितार्थ कर दिखाना आधुनिक विज्ञानका काम है। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। उनका वृत्तान्त और इतिहास अत्यन्त रोचक और उत्साह जनक है। जिस अनवरत परिश्रम और एकाग्र चित्ततासे वैज्ञानिकोंने विविध गन्दी और एक समय निरुपयोगी समझे जानेवाली चीजोंसे अनेक उपयोगी और बहु-

मूल्य पदार्थ निकाले हैं, उसका विचार करते हुए पुराने जमानेके तपस्त्रियोंका खयाल आ जाता है।

जब हम तरह तरहके उपयोगी पदार्थोंको काममें लाते हैं तो हम अपनी सभ्यताको सराहते हैं और यह फख करते हैं कि अब मनुष्य जीवन कितना सुखमय हो गया है। परन्तु यह हमको कभी खयाल नहीं आता कि कितनी मेहनतसे इन चीजोंकी निर्माण विधियोंका आविष्कार हुआ होगा और इनके बनानेमें अनुपयोगी पदार्थ कूड़ा करकट और फुजला कितना बचता है और उसका क्या किया जाता है। केवल वैज्ञानिकोंको ही यह खयाल लग किया करता है और वही गौण पदार्थोंका कोई न कोई उपयोग निकालनेमें लगे रहते हैं। जन साधारणको तो जीवनकी दौड़में ठहरकर इन बातों पर विचार करनेकी फुरसत ही नहीं है।

एक छोटा सा उदाहरण लीजिये। इञ्जनोंमें करोड़ों मन कोयला जलता है। लाखों मन भस्म उसमेंसे बच रहती है। इस भस्मको हटाना तक कारखानोंके मालिकोंके लिए मुश्किल हो जाता है। यदि कोई मुफ्तमें उठाले जाय तो वह बड़े खुश हों बल्कि अपने पाससे उल्टा कुछ दे दें। परन्तु हालमें ही इसका एक उपयोग निकल आया है। चूनेके साथ रेत मिलाई जाती है। यदि न मिलाई जाय तो दीवारें फट जाय और पुख्ता न बनें। हालमें ही इञ्जीनियरोंने यह बतलाया है कि रेतके स्थान पर इस राखका उपयोग हो सकता है। उधर रेत लानेका खर्चा कम हुआ, इधर कारखानोंकी सफाई सस्तेमें होगई।

अन्यत्र अनुपयोगी पदार्थोंके ढेरों बच जानेका कारण यह है कि इष्ट पदार्थ प्रकृतिमें अन्य पदार्थोंके साथ मिला हुआ

पाया जाता है। अतएव उसके निकाल लेनेके बाद जो अवशिष्ट रहता है उससे पीछा छुडाना मुश्किल हो जाता है। इसके अतिरिक्त भी एक कारण है। वह यह है कि किसी व्यवसाय-का उद्देश्य है किसी खास चीजका बनाना, पर बीच बीचमें अन्य गौण पदार्थ बन जाते हैं। इनसे पीछा छुडाना मुश्किल हो जाता है। वैसे तो जब तक दुनिया कायम है तब तक कूडे करकटके ढेर बने ही रहेंगे, परन्तु यदि वह हमारी दृष्टिसे परे रहें, हमें किसी तरहका कष्ट न पहुचावें तो हमें उनका रहना नागवार न गुजरेगा। परन्तु फैक्टरियोंमें जहा लाखों मन कूडा करकट प्रतिमास निकलता हो वहां उसके फेंकनेकी ही नहीं फिकर रहती प्रत्युत उससे रुपया पैदा करनेकी भी उत्कण्ठा रहती है, क्योंकि आखिरकार वह निकला तो उसी मालमेंसे है, जिसमें दाम खर्च हुए हैं। इन दोनों बातोंने रासायनिक गौण पदार्थोंके विविध उपयोग ढूढ निकालनेके लिए बाधित किया। सौभाग्यवश कई बार ऐसा भी हुआ है कि गौण पदार्थोंके मूल्यने मुख्य पदार्थ बनानेके घाटेको पूरा कर दिया और व्यवसायोंको जीवित रखा। इसका सबसे अच्छा उदा-हरण सोडाकी लोब्लंक विधि है, जिसका वर्णन आगे चलकर करेंगे। अब हम कुछ उदाहरण देते हैं, जिनसे ऊपर दी हुई बातें स्पष्ट हो जायगी।

लोहेका मैल

'ताताका लोहे का कारखाना' शीर्षक लेखमें लोहेके बना-नेका पूरा पूरा हाल दे चुके हैं। उसको पढनेसे ज्ञात होगा कि वात-भट्टीमें लोहेका पत्थर, कोक, चूना और मट्टीके साथ डाला जाता है। भट्टीमेंसे केवल दो पदार्थ निकलते हैं। एक

पिघला हुआ लोहा, दूसरा पिघला हुआ मैल (स्लेग)। यह मैल राख और कांचके बीचका पदार्थ है। ग्रेट ब्रिटेनमें प्रति वर्ष लोहेके कारखानोंमें लगभग ५ करोड़, १० लाख मन मैल निकलता है। इसको कारखानेसे बाहर फेंकनेमें कितना व्यय होता होगा? आदर्श प्रथा तो यह होती कि खानोंमें यह डाल दिया जाता, परन्तु इतना व्यय करना कठिन है। इसलिए या तो इसके ढेरके ढेर लगते चले जाते हैं और वस्तुतः मैलकी पहाड़ियां बनती चली जाती हैं या यह समुद्रमें डाल दिया जाता है।

यह किसीको कभी आशा न थी कि ऐसा निकम्मा पदार्थ कभी किसी काममें आ सकेगा। वह तो केवल उर्वर भूमि और सुहावनी प्राकृतिक छटाको विकृत करनेके कामका समझा जाता था। परन्तु वैज्ञानिकोंने उसे काममें लानेकी तरकीब निकाल ही डाली है। सड़क बनाने या ऊसर भूमिको उर्वर बनाने और सीमेंट (स्लेगसीमेंट) बनानेके काममें तो यह आता ही है, परन्तु एक चमत्कारिक पदार्थ भी इससे बनाया जाता है, जिसे 'स्लेग वूल" कहते हैं। इसे 'ग्लास वूल' का भाई कह सकते हैं। दोनों रूईके सदृश होनेके कारण "वूल" कहलाते हैं। पिघले हुए मैल पर जब भापकी पतली पतली धार छोड़ी जाती है, तो इसके छोटे छोटे बिन्दु उचटकर इधर उधर गिरते हैं, प्रत्येक बिन्दुके साथ एक लम्बा पतला तन्तु भी लगा रहता है। बादमें तन्तुओंको काट कर अलग कर देते हैं। तन्तुओंका ढेर ऊनके ढेरका सा प्रतीत होता है और ऊनके सदृश तापका कुवाहक होनेके साथसाथ जलता भी नहीं है। इसलिए भाप-नलियों, बैलटों आदिके ऊपर लपेटनेके काम आता है।

इस्पातका मैल

इस्पात पिघले हुए लोहेसे बनाई जाती है। पहले उसमें हवा फूकी जाती है, जिससे लोहा शुद्ध हो जाता है। तदुपरान्त उसमें अन्य पदार्थ इस मात्रामें मिला देते हैं कि कर्बनकी पर्याप्त मात्रा पहुँचनेसे लोहा इस्पातमें बदल जाय। नरम लोहे या पिगआयरनमें अन्य पदार्थोंके साथ फास्फोरसका भी अंश रहता है। इसे हटानेके लिए "परिवर्तक" यन्त्रके अन्दर चूनेकी तह चढा देते हैं। हवा फूकनेसे फास्फोरसका ओषिद बन जाता है, जो चूनेके साथ मिल जाता है। इस प्रकार क्रिया समाप्त होनेपर जब "परिवर्तक" की तह निकाली जाती है तो उसमें चूनेका फोस्फेत रहता है। अतएव वह खादके काम आजाता है। प्रति वर्ष प्राय ४० करोड़ मन मैल यूरोपमें निकलता है और बिक जाता है। मैलको बहुत बारीक पीसकर खेतमें डाल देते हैं।

सोडा-व्यवसायके गौण पदार्थ

जितने उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उन सबसे अधिक रोचक और महत्व पूर्ण सोडा व्यवसायका है। निर्माणकर्ताओंको एक बार नहीं बल्कि दो बार एक अत्यन्त घृणित गौण पदार्थने दिवालिया होते होते बचाया। एक गौण पदार्थका महत्व तो मुख्य पदार्थसे भी बढ गया है।

सोडा प्रकृतिमें भी भूमि पर जमा हुआ मिलता है। इसीको जमा करके रेहके नामसे बेचते हैं, परन्तु रेहमें अन्य बहुत से पदार्थ मिले रहते हैं और वह इतनी मिलती भी नहीं कि सब काम चल जाय। फ्रांसीसी राजविप्लव के समयमें बाहरसे सोडाका आना बिलकुल बन्द हो गया था। नेपोलियन ने

एक बडा भारी पारितोषक उस व्यक्तिको देनेकी घोषणा की, जो नमकसे सोडा बनानेकी विधि निकालेगा। लीब्लैंक नामी व्यक्ति ने यह तरकीब निकाली, परन्तु बेचारेको पारितोषिक न मिला और उसने हताश हो आत्महत्या करली। उसकी विधि सत्तेप से यहां दी जाती है।

(१) नमकको गंधकाम्लके साथ गरम करते हैं —



२ सोह+उ२ ग ओ४=सो२ ग ओ४+२ उ ह

(२) पहली क्रियामें जो पदार्थ बनता है वह कोयलेके चूर्ण और चूनेके पत्थरके साथ गरम किया जाता है। ऐसा करने से एक पदार्थ बन जाता है, जिसे "ब्लेक एश" या "काली राख" कहते हैं। यह सोडा और केलसियम गधिदका मिश्रण होता है।



सो२ ग ओ४ +२ क=सो२ ग+२ क ओ२



सो२ ग+ख क ओ३=सो२ क ओ३ +ख ग

(३) अन्तमें इस "काली राख" को पानीमें डाल कर सोडाको घुलाकर निकाल लेते हैं; शेष अनघुल पदार्थ जो बचता रहता है वह "सोडा फोग" कहलाता है।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि सोडा बनानेमें दो पदार्थ और बन जाते हैं,—एक तो नमकका तेजाब, दूसरे सोडाफोग (Alkali waste)। यही सोडा व्यवसाय की गौण उपज हैं। इन दोनों का ही इतिहास अत्यन्त मनोरञ्जक और शिक्षा प्रद है।

जब सोडा व्यवसाय आरम्भ ही हुआ था, लवणाम्लक मूल्य कुछ नहीं समझा जाता था, क्योंकि वह काममें न आता था। अतएव उसके अवखरोंको चिमनियोंसे निकल कर हवा

में मिल जाने देते थे। इसका बडा भयंकर परिणाम हुआ। आस पासकी वनस्पति और कृषिका सत्यानाश होने लगा। वायुमें श्वास लेना मुश्किल हो गया। लोहेके ताले, कुण्डियाँ संकलें, छप्पर, नालियां और औज़ार कागजके कार्डबोर्डकी तरह थोडे ही कालमें गलने लग गये। अतएव चारों तरफ त्राहि त्राहि मच गयी। और 'सोडा व्यवसाय' के लोग जानी दुश्मन हो गये।

इस उत्पातका कारण था लवणाम्लके भारी अवखरोंका पृथ्वीपर उतर आना और पानी या नमी पाकर घुल जाना और चीजोंको गला देना। वायुकी दुर्गन्धका कारण भी यही अवखरे थे। पहले निर्माण कर्ताओंने सोचा कि यदि ५०० फुट ऊंची चिमनियां बना दें तो अवखरे हवामें ऊपर ही ऊपर उड जायगे और किसीको हानि न पहुँचायगे। परन्तु यह खयाल गलत निकला। अवखरे पूर्ववत नीचे उतर कर पर्देकी तरह नगरों और जंगलों पर पडने लगे और वनस्पति गायब होने लगीं। लोगोंको इससे इतनी फिक्र हुई कि एक तरहका तैरने-वाली भट्ठी बना कर पेटेंट कराई गयी, जिसमें अच्छे मौसम-में उसे समुद्रमें ले जाय और वहीं सोडा बनायें।

कुछ समय पश्चात् लोगोंको यह सूझी कि इन अवखरोंको पानीमें क्यों न घुला लें। यदि अवखरे किसी चिमनी अथवा टॉवरमें होकर निकाले जाय जिसमें कोक भरा हो और कोक परसे पानी बराबर बहता रहता हो तो सब अवखरे घुल जायँगे। परन्तु इस प्रकार सब अवखरे घुलते नहीं थे, अतएव जब सोडाके कारखाने बढ गये तो फिर पहलेकी सी दशा हो गयी। १६१७ वि० में प्रत्येक सप्ताहमें प्राय २८ हजार

मन लवणाम्ल इङ्गलेण्डके कारखानों में से निकलता था। इससे अनुमान हो सकता है कि कितनी हानि होती होगी। इसके अतिरिक्त जो लोग अवपरोंको घुला भी लेते थे उनके पास अम्लका घोल इतना बच रहता था कि वह उसका किसी प्रकार प्रयोग नहीं कर सकते थे। अतएव वह किसी पासकी नदीमें बहा देते थे। यहा एक और कठिनाई हुई। सब मछलिया अम्लके प्रभावसे मरने लगी। फिर जनतामें वही हलचल मच गयी।

अब कारखानेके मालिकोंके लिए बडी समस्याका सामना था। वह करते तो क्या करते, परन्तु सौभाग्यवश थोड़े ही दिनोंमें वैज्ञानिकोंके परिश्रमसे यह मालूम हो गया कि यह अवपरे लवणाम्लके हैं, जो वास्तवमें एक अत्यन्त उपयोगी और बहुमूल्य पदार्थ है। अतएव निर्माणकर्ता खुशी खुशी उसके रत्ती रत्ती भर अवपरोंपर जान देने लगे और अवपरोंका पूरा पूरा घुलानेका प्रयत्न करने लगे। जिस पदार्थसे पीछा छुडानेके लिए निर्माणकर्ता कुछ साल पहले बहुत कुछ दे डालते, वहीं उन्हें अब पारस दिखाई देने लगा। और वास्तवमें निकला भी पारस, क्योंकि उसने इस व्यवसायको सोलवे-अमोनिया विधि और वैद्युतिक विधिसे सोडा बनानेके व्यवसायोंके सामने खडे होनेमें समर्थ किया।

स्वभावत यहांपर यह प्रश्न उठता है कि ऐसा परिवर्तन कैसे हो गया? लवणाम्लका इतना महत्व कैसे बढ गया? इसका मुख्य कारण था १६१८ वि० में कागजपरके महसूलका उठ जाना। महसूल उठ जानेसे कागज बननेमें बडी तरक्की होने लगी। पहले रुई-और चिथड़ोंसे कागज बनाया जाता था,

परन्तु इनका पर्याप्त मात्रामें मिलना मुश्किल होगया। अतएव कागज बनानेके नये नये साधन ढूढ निकाले गये। तिनका लकडी, एस्पार्टो घास आदिसे कागज बनने लगा, पर इनके साथ बडा कठोरताका व्यवहार करना पडता था। उन्हें कास्टिक सोडाके साथ गलाना और ब्लीचसे बेरंग बनाना पडता था, पर ब्लीच पैदा होता था लवणाम्लसे। इस प्रकार सोडा व्यवसायके दोनों निर्मित्त पदार्थ—गौण तथा मुख्य—महत्वके पदार्थ हो गये। सोडासे कास्टिक सोडा बनता था और लवणाम्लसे क्लोरीन (हरिण) अथवा ब्लीच। अब तो लवणाम्लके अवयवे इतने पूर्णतया घुला लिये जाते हैं कि शायद १ घनफुट हवामें ग्लीक पाचवें भागके अनुमान पाये जाते हों।

शायद हमारे पाठक समझने लग गये होंगे कि लवणाम्लका यह प्रबंध करदेनेसे निर्माण कर्ताओंको लाभ और जनताके स्वास्थ्य और कृषि तथा उद्यानोंकी रक्षा होगयी होगी और सब सन्तुष्ट हो गये होंगे। परन्तु बात यह नहीं थी, हम देख चुके हैं कि अन्तमें 'सोडा फोग' बचता है, जिसमें चूनेका केलसियम और गंधकाम्लका गंधक रहता है। इसमें गंधक ऐसा पदार्थ है जिसको निकाल कर बेचनेसे लाभ हो सकता है, परन्तु उस जमानेमें कोई विधि मालूम न थी और सोडा फोगको फेंक देते थे। प्रति दिन प्राय २८ हजार मन फोग निकलता था और फेंक दिया जाता था। इसपर जहा पानी पडा या नमी पहुची कि मनोहर सुगंधवाली उज्जन गन्धिद गैस निकलने लगी। इस गैसकी महिमा पाठक विज्ञान भाग ६ (पृष्ठ ६) में पढ़ चुके होंगे।

अनुमान कीजिये कि जहां लाखों करोड़ों मन केलसियम गंधिद जमा हो और उसमेंसे यह गैस निकले तो कैसी बहार हो। यद्यपि फोगको कहीं कहीं जमीनमें गाढ़ देते थे, तथापि गैस बिना निकले मानती न थी।

इधर तो निर्माणकर्ताओंको यह कठिनाई थी उधर सोलवेने एक नयी विधि—अमोनिया विधि—निकाल डाली, जिससे लीब्लेंककी विधि को मुकाबला करना था। इस विधि-से सोडा बनानेमें न तो लम्बे चौड़े कारखानेकी जरूरत पड़ती थी, न जटिल यन्त्रोंकी, और पदार्थ भी बहुत शुद्ध बनता था।

अतएव लीब्लेंक विधिको त्यागनेमें ही और अमोनिया विधिको ग्रहण करनेमें ही पूंजीवाले कल्याण समझने लगे। परन्तु लवणाम्लके मूल्यने इन्हें सहारा दिया। फिर तो यह जी तोड़कर इस बातका भी प्रयत्न करने लगे कि फोगमेंसे गन्धक बना लेनेकी कोई तरकीब निकल आवे, तब तो पापड़-वालेको मारलेंगे। १९४५ वि० में एक ऐसा उपाय निकल ही आया और पांच वर्ष बाद ही केवल इंगलैण्डमें ६८०००० मन गंधक निकाल कर बेचा गया।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि गौण पदार्थोंके सदुपयोग के कारण ही लीब्लेंक विधिसे आज कल भी सोडा बनाया जाता है, नहीं तो न जाने कब इसका अन्त हो गया होता। आजकल वैद्युतिक विधि और निकल आई है। देखें इसका प्रभाव लीब्लेंक विधि पर कैसा पड़ता है।

कोयला, उसके रूपान्तर और उत्पत्ति *

सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनो



क बडी पुरानी कहावत है कि 'कोयलोंकी दल्लाली में काले हाथ।' कोयला बेचना तो दरकिनार, कोयलेकी दल्लाली में ही लोगोंके हाथ काले हो जाते हैं। ऐसी और भी कई कहावतें हैं, जिनसे मालूम होता है कि जन साधारण कोयलेको किस घृणाकी दृष्टि से देखते हैं। "कोयला होय न ऊजरो, सौमन साबुन धोय" वाली कहावत भी इस कथनका समर्थन करती है। जहां किसी काली चीजको देखा कि फौरन कह बैठते हैं "कोयले सी काली"। इसलिए साहिबान आपको मालूम हुआ होगा कि मामूली तौरपर कोयलेकी तरफसे लोगोंका क्या खयाल है।

सच पूछिये तो जितनी बेइन्साफी सृष्टिके आदिसे कोयलेके साथ हुई है उतनी किसीके साथ नहीं हुई। इसी शिकायतकी अपील लेकर मैं आपके सामने हाजिर हुआ हूं। संसारमें अनेक कवि हुए हैं पर जहां तक मेरा खयाल है किसीने भी कोयलेकी तारीफ न लिखी। शायद माशूकोंके तिलों या खूबरूयोंकी आंखोंके काजलका खयाल करते हुए

---

* यह व्याख्यान प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम एस-सी ने २० सितम्बर १९१९ के विज्ञान परिषद्के अधिवेशन में दिया था।

उन्हें बेचारे कोयलेकी याद भी आई हो, पर कभी किसीने उसकी उपमा न दी। पर जरा गोर करके देखिये कि काजल क्या चीज है। वह भी तो कोयला ही है। यही कोयला कुल कामिनियाके मद भरे नयनोंकी शोभा हजारगुनी बढ़ा देता है। इसी कोयलेका टीका, जब बच्चोंके माथोंपर लगा दिया जाता है, तो उन्हें बुरी नजरसे बचाता है। मिठाई खाकर जब बच्चे घरसे बाहर निकलते हैं तो उनकी मातायें उन्हें थोडी सी राख या कोयलेका टुकडा खिला देती है, जिसके बारेमें उनका ख्याल है कि बच्चोंको भूत प्रेतसे बचाये रखता है। बच्चोंके हाथ दूध या मिठाई जब कहीं भेजते हैं या बाजारसे मंगवाते हैं तो उसमें भी कोयलेका टुकडा डाल देते हैं। डाक्टर साहिबान भी पेटकी अफरनमें कोयलेके बिस्कुट—हटले पामरके लजीज बिस्कुट नहीं—खिलाते हैं। पानीको साफ़ करने और गुडसे साफ़ शफाफ चीनी तय्यार करनेमें भी हमें इसीका आसरा लेना पडता है।

आजकलकी सभ्यताकी बुन्याद तो हम कह सकते हैं कि कोयलेपर ही खडी है। लाखों करोडों इञ्जन जो हमारे जहाजो, रेलगाडियों, मशीनों और करखानाको रातदिन चलाते रहते रहते हैं, उनकी ताकत कोयलेसे ही हासिल होती है। बडे बडे भट्टे जिनमें लोहा, जस्ता, कांच, सीसा, ताम्बा, टीन आदि पदार्थ बनते है, उनमें भी कोयला ही काम आता है।

संसारमें जितनी जानदार चीजें हैं, उन सबमें कोयला पाया जाता है। इन्सानका जिस्म, जानवरोंके जिस्म, परिन्दोंके जिस्म, कीडे मकोडोके जिस्म, दरख़्तोंके तने, टहनियां और

फूल और फल, जहा देखिये तहाँ कोयलेका अश अवश्य मिलेगा। इसका प्रमाण यह है कि किसी भी चीजको, जो पशुओं या वनस्पतियोंसे सम्बन्ध रखती हो, लेकर आप तपायें, वह झुलस कर कोयलेमें तबदील हो जायगी।

अगर किसी आदमीका वजन दो मन हो तो उसमें लग-भग सोलह सेर कोयलेका अश होगा। इस तरहपर ससार के सब आदमियोंके जिस्मोंमें सात अरब, बीस करोड (७२०-०००००००) मन कोयला मौजूद है। दरख्तों, पौधों और जान-वरोंके जिस्मोंमें जो कोयला मौजूद है, उसका अन्दाजा लगाना तो बहुत ही मुश्किल है।

दुनिया भरकी खानोंमें शायद १४ पदम मन कोयला मौजूद है। इसके अतिरिक्त बहुत से खनिजों, चट्टानोंमें और पत्थरोंमें कोयलेका अश मौजूद है। १०० मन सगमरमरमें लगभग १२ मन कोयला रहता है। यही दशा चूनेके पत्थर या कङ्कडकी है। अब जरा सोचिये कि ससारकी कितनी बडी बडी पर्वत राशिया सगमरमर या चूनेके ककडसे बनी हुई हैं और उनमें कितना अश कोयलेका होगा।

कोयला सिर्फ पृथ्वी मण्डलपर ही नही पाया जाता, बल्कि समस्त देशमें व्याप्त है। प्रत्येक टूटनेवाला तारा (उल्का या meteor), प्रत्येक ग्रह (Planet) प्रत्येक तारा, आस्मानी खाक (आकाशीय धूल) का प्रत्येक कण, प्रत्येक नीहारिका (nebula), प्रत्येक (comet), पुच्छलतारा इन सबमे कोयला मौजूद है। हमारे सूरजकी रोशनी भी कोयलेकी वजहसे ही पैदा होती है। यदि आप किसी गैसके बरनरको जलाय, तो उसकी लौसे रोशनी पैदा होगी। यदि उसके नीचेके

सूराखोंको आप धीरे धीरे खोल दें तो आप देखेंगे कि लौकी रोशनी कम होती जाती है और आखीरमें लौ ज्योतिहीन हो जाती है। इसकी वजह यही है कि पहले लौमें कोयलेके छोटे छोटे कण थे, हवाके पहुंचनेसे यह जल गये, अब उत्तप्त होकर रोशनी देने वाला ही न रहा, रोशनी फिर कैसे आये। अगर किसी झाडनको उक्त लौके पास झाड दें तो खड़ियाके टुकड़े लौमें पहुँच कर फिर रोशनी पैदा कर देंगे।

सूर्यलोक में भी यही होता है, सूरज की सतह पर कोयला भाप बन कर उड़ जाता है, पर वहां के वायुमण्डलमें(atmosphere) में पहुच कर उसके बादल बन जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे कि पृथ्वी पर पानी के बादल बन जाते हैं। यह बादल गरम होकर सूरजकी रोशनी हम तक पहुचाते हैं। इनमें से हर एक बादलका क्षेत्रफल लाखों वर्ग मील होता है और उनका वजन करोडों अरबों मन।

कोयले की जातियां

कोयला कई किस्मका होता है, जैसे (१) बे रवेदार कोयला (२) ग्रेफाइट और (३) हीरा। अब हम इनपर क्रमानुसार विचार करेंगे।

१—बे रवेदार कोयला

इसमें काजल, गैस कोयला, लकड़ीका कोयला, पत्थरका कोयला, हड्डीका कोयला आदि शामिल हैं।

काजल—जिन पदार्थोंमें कर्बन या कोयलेका अंश बहुत ज़्यादा है, उनको परिमित (थोडी सी) हवामें जलाकर बनाया जाता है। आपने पुराने ढंगकी मट्टीके तेलकी डिबिया जलते देखी होंगी। जिन आलोंमें यह जलाकर रख दी जाती हैं,

उनमें बहुत सा काजल जमा हो जाता है। आखोंमें आजनेका काजल भी इसी प्रकार एक दिया जलाकर उसपर दूसरा दिया औंधाकर बनाते हैं। परिमित हवामें जलानेपर जो धुआं पैदा होता है उसे कमरोंमें ले जाते हैं, जिनमें कम्बल लटके रहते हैं। कम्बलों पर काजल जमा हो जाता है। इस काजलको उतार कर (Chlorine) हरिन गैसमें तपाते हैं, जिससे उसमें के कर्बाञ्ज (Hydrocarbons) निकल जाते हैं।

यह काजल काले रोगन, वार्निश, छापेकी स्याही आदिके बनानेमें काम आता है।

गैस कोयला—जब पत्थरके कोयलेको दम घोट तपा दिया जाता है तो उसमें से अमोनिया आदि अनेक द्रव तथा जलानेकी गैस निकलती हैं। पीछेसे गैसके वकयंत्रों (retorts) में कोयला जमा हुआ रह जाता है। यही गैस कोयला होता है, जो बिजलीका सुचालक होता है। बिजलीकी रोशनीकी बत्तियां इसकी ही बनती हैं।

लकड़ी, शक्कर या हड्डीका कोयला—कोई भी पदार्थ जिसमें कर्बनका अंश हो, यदि हवासे अलहदा बन्द जगह या बर्तनोंमें तपाया जाय, उससे कोयला बन जाता है। हिन्दुस्तानमें जमीनमें गड्ढे खोदकर उसमें लकड़ियां भर देते हैं, ऊपरसे गड्ढेका मुंह बन्द कर देते हैं। खाली दो सुराख उसमें छोड़ते हैं। जलाने पर लकड़ियोंमें जो तरह तरहकी गैसें या द्रव रहते हैं वह उड़ जाते हैं। यूरोपमें लकड़ियां बन्द बर्तनोंमें तपाई जाती हैं और जलानेकी गैस, एसीटोन, मिथिल अलकहल आदि पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

कोयलेके गुण

यह तो शायद सभी जानते हैं कि कोयला बगैर धुआंके जलता है और गरमी भी ज्यादा देता है। कोयलेका चूर्ण, विशेषत. उसका जो खून या हड्डीको तपा कर बनाया जाता है, बडा अच्छा कृमिनाशक (disinfectant) और रंग उड़ाने वाला (decolourizing) पदार्थ होता है। इन गुणोंका क्या कारण है? अगर किसी काले कोयलेके टुकडेको आप किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखें, तो आपको वह छोटी सी गन्दी चीज एक निरा तिलिस्म दिखलाई देगी। आपको उसमें लाखों कमरे, दालान, बराण्डे, सुरंगें नजर आयेंगी। यह सुरंगें क्या हैं जीते जागते अजगर हैं, जो तरह तरहकी गैसोंको खींचा करते हैं। एक घन इंच (cubic inch) का कोयलेका टुकडा अमोनिया के १७० घन इंच इस प्रकार सोख सकता है। मामूली तौर पर कोयलेमें हवा भरी रहती है। बस जब कोयलेका चूर्ण किसी गन्दी जगह पर फैला दिया जाता है तो यही हवा उस जगहकी गंदी हवाओंका नाश कर देती है। जहाजोंपर, जिन लकडीके पीपोंमें पानी भरकर रखते हैं, उनके अन्दरके हिस्सेको झुलसाकर काला कर देते हैं। यह कोयला पानीको सफरमें साफ रखता है।

यदि आपको कहीं पर लकडीके लट्ठे जमीनमें गाडने हों तो आप उनके निचले हिस्सोंको झुलसाकर काला कर दें और तब गाड दें। ऐसा करने से दीमक लगनेका खतरा कम हो जायगा और लकडी जल्द गलेगी भी नहीं।

कोयलेकी सुरंगे, बहुत सी चीजोंको घोलोंमें से, (Solution) निकालकर जज्ब कर लेती हैं। थोडा रंग पानीमें घोल लीजिये।

उसमें थोड़ा सा हड्डीका कोयला मिलाकर छानिये। आप देखेंगे कि साफ पानी छनकर निकलता है। शर्बत, शकर वगैरा साफ करनेमें यही हड्डीका कोयला काम आता है।

पत्थरका कोयला

आजसे लाखों वर्ष पहिलेकी बात है। समुद्रामें वर्तमान कालकी अपेक्षा बहुत ज्यादा पानी था। जमीनका क़रीबन कुल हिस्सा पानीमें डूबा हुआ था। हवामें कर्बन द्विओषिद (carbon dioxide) ही भरा हुआ था। जमीनकी अन्दरूनी गर्मी समुद्रोंके पानीको गरम रखती थी। हर जगहसे वे इन्तहा भाप उठती थी। जो गरमी सूरजसे जमीनतक पहुँचती थी, वह कर्बन द्विओषिदके गिलाफसे बाहर न निकलती थी और हवा और जमीनको गरम रखती थी। यह सब बातें वनस्पतिकी उत्पत्ति और वृद्धिके लिए बहुत सहायक थीं। दरख्तोंका खाद्य (गिजा) प्रचुर परिमाणमें मोजूद था। आब-हवा (जलवायु) माफिक थी। फिर क्या था नबातात इतनी बढ़ी जिसका खयालके अहातेमें आना मुश्किल है। आजकल जो कलबमोसेस (club mosses) दो चार इञ्च बडी नजर आती हैं, उस जमानेमें ५० फुट ऊंची और तीन फुट या इससे भी ज्यादा मोटी होती थीं। फर्न्स भी उस जमानेमें दिल खोलकर बढ़ते थे। उनके तनोंकी मोटाई (व्यास) छ फुट और लम्बाई ७०० फुटसे ज्यादा होती थी। इतने घने जंगल उस जमानेमें उग रहे थे कि आजकल वैसे शायद ही कहीं हों।

दरख्त यकेबाद दीगरे उगते थे, बढ़ते थे, सड जाते थे और गिर जाते थे। इस प्रकार हजारों फुट मोटी तहें गिरे हुए दरख्तों, टहनियों और पत्तियोंकी जम गईं। समयके हेर फेरसे

यह तहें समुद्रोंकी तलैटीमें जा पहुँचीं और वहां रेत, मट्टी वगैराके नीचे दब गईं। लाखां बरसोंके बाद वही तहें, दबाव, ज़मीन की भीतरकी गर्मी और नमीकी वजहसे पत्थरके कोयलेके रूपमें बदल गई। फिर कुछ समयके हेर फेरसे यह तहें समुद्रकी तलैटीसे निकलकर ऊपर आ गई और इनके ऊपर फिर हरे भरे जङ्गल खडे हो गये। इन जङ्गलोंकी भी वही दशा हुई जो पहले जङ्गलोंकी हुई थी और कोयलेकी एक तह और जम गई। इस भांति कोयलेकी तहें कुछ कुछ फासिले पर, एकके ऊपर दूसरी, बनती चली गई।

यहांपर यह सवाल पैदा हो सकता है कि जितनी बातें ऊपर बयान की गई हैं, वह केवल कल्पित हैं या उनके लिए कोई प्रमाण भी हैं।

(१) पहला सबूत तो यह है कि कोयलेकी खानोंमें दरख़्तों के तने, फर्न्स, क्लब मोसेस के दाने (Spores) और पत्तियां कभी कभी ज्योंकी त्यों, मिलती हैं। यही ज़बान-ए-हालसे अपनी गुज़िश्ता तवारीख बयान करती हैं।

(२) दूसरा सबूत समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि दरख़्तोंसे कोयला बनता कैसे है। हम पहले ही देख चुके हैं कि लकडीको तपानेसे कोयला तथा अन्य द्रव और गैस बनती है। लेकिन प्रकृतिमें लकडी कहीं बहुत ज़्यादा तो तपाई नहीं जाती, फिर कोयला कैसे बन जाता है। बात यह है कि तपानेसे रासायनिक क्रियाओं (Chemical reactions) का वेग बढ जाता है। जो रासायनिक परिवर्तन मामूली तापक्रम पर (Temporature) बहुत आहिस्ता होता है वही गर्मी बढ़ा देनेसे बहुत तेजीसे होने लगता है। तस्मीना

लगाया गया है कि १० डिग्री (शतांश) गर्मी बढ़ा देनेसे तबदीली दुगनी तेजीसे होने लगती है। इसीसे जो तबदीली लकड़ीमें मामूली तापक्रमपर लाखों वर्षोंमें होती है वह तपानेसे घंटोंमें हो जाती है। वास्तवमें कोयलेके बननेमें प्रायः वही घटनाएं हुई हैं, जो लकडीको तपाकर कोयला बनानेमें होती हैं। अगर ऐसा है तो हमें नेचरमें कहीं थोडी तबदील हुई, कहीं ज्यादा तबदील हुई और कहीं पर बिलकुल पूरी तौर पर तबदील हुई लकडीके नमूने मिलने चाहियें। नेचरमें कोयला हजारों तरहका मिलता है। इनका संगठन (Composition) भी भिन्न भिन्न होता है। जितनी पुरानी तहका कोयला होगा, उसमें उतना ही ज्यादा कर्बनका अंश होगा और उज्जन (Hydrogen) और ओषजनका कम। पृथ्वीकी तहें अपने निर्माण कालके अनुसार कई विभागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक तहका नाम उसके निर्माण कालके अनुसार रखा जाता है। नीचेकी सारणीमें कोयलेकी जाति, उसके बननेका समय और उसका विश्लेषण (Analysis) दिया जाता है। सूखी हुई बीच-वुडके क्या क्या अवयव हैं, यह भी तुलनार्थ दिखलाया गया है।

इस सारणीसे स्पष्ट है कि जितना जमाना गुजरता गया, उतना ही अधिक परिवर्तन कोयलेमें होता गया, क्योंकि लकडीमेंका पानी, कर्बोज (Hydrocarbons) वगैरा पदार्थ निकलते गये और कर्बन ही बचता गया, यहां तक कि सबसे पुरानी तहोंमें कोयला सिर्फ ग्रेफाइट के ही रूपमें पाया जाता है, जो शुद्ध कोयला या कर्बन है। उधर हालकी तहोंमें पाये जाने वाले कोयलेके रूपान्तरों पर विचार कीजिये। पीटमें जड़ोंके रेशे वगैरा बहुत होते हैं और इतना पानी होता है

यह तहें समुद्रोंकी तलैटीमें जा पहुँचीं और वहां रेत, मट्टी वगैराके नीचे दब गईं। लाखों वरसोंके बाद वही तहें, दबाव, ज़मीन की भीतरकी गरमी और नमीकी वजहसे पत्थरके कोयलेके रूपमें बदल गईं। फिर कुछ समयके हेर फेरसे यह तहें समुद्रकी तलैटीसे निकलकर ऊपर आ गईं और इनके ऊपर फिर हरे भरे जङ्गल खडे हो गये। इन जङ्गलोंकी भी वही दशा हुई जो पहले जङ्गलोंकी हुई थी और कोयलेकी एक तह और जम गई। इस भांति कोयलेकी तहें कुछ कुछ फासिले पर, एकके ऊपर दूसरी, बनती चली गईं।

यहांपर यह सवाल पैदा हो सकता है कि जितनी बातें ऊपर बयान की गई हैं, वह केवल कल्पित हैं या उनके लिए कोई प्रमाण भी है।

(१) पहला सबूत तो यह है कि कोयलेकी खानोंमें दरख़्तों के तने, फर्न्स, क्लब मोसेस के दाने (Spores), और पत्तियां कभी कभी ज्योंकी त्यों, मिलती हैं। यही ज़बान-ए हालसे अपनी गुज़िश्ता तवारीख बयान करती हैं।

(२) दूसरा सबूत समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि दरख़्तोंसे कोयला बनता कैसे है। हम पहले ही देख चुके हैं कि लकडीको तपानेसे कोयला तथा अन्य द्रव और गैस बनती है। लेकिन प्रकृतिमें लकडी कहीं बहुत ज्यादा तो तपाई नहीं जाती, फिर कोयला कैसे बन जाता है। बात यह है कि तपानेसे रासायनिक क्रियाओं (Chemical reactions) का वेग बढ जाता है। जो रासायनिक परिवर्तन मामूली तापक्रम पर (Temperature) बहुत आहिस्ता होता है वही गर्मी बढ़ा देनेसे बहुत तेजीसे होने लगता है। तरामीना

लगाया गया है कि १० डिग्री (शतांश) गर्मी बढा देनेसे तबदीली दुगनी तेज़ीसे होने लगती है। इसीसे जो तबदीली लकड़ीमें मामूली तापक्रमपर लाखों बरसोंमें होती है वह तपानेसे घंटोंमें हो जाती है। वास्तवमें कोयलेके बननेमें प्राय: वही घटनाएँ हुई हैं, जो लकड़ीको तपाकर कोयला बनानेमें होती हैं। अगर ऐसा है तो हमें नेचरमें कहीं थोडी तबदील हुई, कहीं ज्यादा तबदील हुई और कहीं पर बिलकुल पूरी तौर पर तबदील हुई लकडीके नमूने मिलने चाहियें। नेचरमें कोयला हजारों तरहका मिलता है। इनका सगठन (Composition) भी भिन्न भिन्न होता है। जितनी पुरानी तहका कोयला होगा, उसमें उतना ही ज्यादा कर्बनका अंश होगा और उज्जन (Hydrogen) और ओषजनका कम। पृथ्वीकी तहें अपने निर्माण कालके अनुसार कई विभागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक तहका नाम उसके निर्माण कालके अनुसार रखा जाता है। नीचेकी सारणीमें कोयलेकी जाति, उसके बननेका समय और उसका विश्लेषण (Analysis) दिया जाता है। सूखी हुई बीच-वुडके क्या क्या अवयव हैं, यह भी तुलनार्थ दिखलाया गया है।

इस सारणीसे स्पष्ट है कि जितना जमाना गुजरता गया, उतना ही अधिक परिवर्तन कोयलेमें होता गया, क्योंकि लकडीमका पानी, कर्बोज (Hydrocarbons) वगैरा पदार्थ निकलते गये और कर्बन ही बचता गया, यहां तक कि सबसे पुरानी तहोंमें कोयला सिर्फ ग्रेफाइट के ही रूपमें पाया जाता है, जो शुद्ध कोयला या कर्बन है। उधर हालकी तहोंमें पाये जाने वाले कोयलेके रूपान्तरों पर विचार कीजिये। पीटमें जडोंके रेशे वगैरा बहुत होते हैं और इतना पानी होता है

यह तहें समुद्रोंकी तलैटीमें जा पहुँचीं और वहां रेत, मट्टी वगैराके नीचे दब गई। लाखों बरसोंके बाद वही तहें, दबाव, ज़मीन की भीतरकी गरमी और नमीकी वजहसे पत्थरके कोयलेके रूपमें बदल गई। फिर कुछ समयके हेर फेरसे यह तहें समुद्रकी तलैटीसे निकलकर ऊपर आ गई और इनके ऊपर फिर हरे भरे जङ्गल खडे हो गये। इन जङ्गलोंकी भी वही दशा हुई जो पहले जङ्गलोंकी हुई थी और कोयलेकी एक तह और जम गई। इस भांति कोयलेकी तहें कुछ कुछ फासिले पर, एकके ऊपर दूसरी, बनती चली गई।

यहापर यह सवाल पैदा हो सकता है कि जितनी बातें ऊपर बयान की गई हैं, वह केवल कल्पित हैं या उनके लिए कोई प्रमाण भी हैं।

(१) पहला सबूत तो यह है कि कोयलेकी खानोंमें दरख्तों-के तने, फर्न्स, क्लब मोसेस के दाने (Spores,) और पत्तियां कभी कभी ज्योंकी त्यों, मिलती हैं। यही ज़बान-ए हालसे अपनी गुज़िश्ता तवारीख बयान करती हैं।

(२) दूसरा सबूत समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि दरख्तोंसे कोयला बनता कैसे है। हम पहले ही देख चुके हैं कि लकडीको तपानेसे कोयला तथा अन्य द्रव और गैस बनती है। लेकिन प्रकृतिमें लकडी कहीं बहुत ज़्यादा तो तपाई नहीं जाती, फिर कोयला कैसे बन जाता है। बात यह है कि तपानेसे रासायनिक क्रियाओं (Chemical reactions) का वेग बढ जाता है। जो रासायनिक परिवर्तन मामूली तापक्रम पर (Temperature) बहुत आहिस्ता होता है वही गर्मी बढा देनेसे बहुत तेज़ीसे होने लगता है। तख़मीना

लगाया गया है कि १० डिग्री (शतांश) गर्मी बढ़ा देनेसे तवदीली दुगनी तेजीसे होने लगती है। इसीसे जो तवदीली लकड़ीमें मामूली तापक्रमपर लाखों वर्षोंमें होती है वह तपानेसे घंटोंमें हो जाती है। वास्तवमें कोयलेके बननेमें प्रायः वही घटनाएँ हुई हैं, जो लकड़ीको तपाकर कोयला बनानेमें होती हैं। अगर ऐसा है तो हमें नेचरमें कहीं थोड़ी तबदील हुई, कहीं ज्यादा तबदील हुई और कहीं पर बिलकुल पूरी तौर पर तबदील हुई लकड़ीके नमूने मिलने चाहियें। नेचरमें कोयला हजारों तरहका मिलता है। इनका संगठन (Composition) भी भिन्न भिन्न होता है। जितनी पुरानी तहका कोयला होगा, उसमें उतना ही ज्यादा कर्बनका अंश होगा और उज्जन (Hydrogen) और ओषजनका कम। पृथ्वीकी तहें अपने निर्माण कालके अनुसार कई विभागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक तहका नाम उसके निर्माण कालके अनुसार रखा जाता है। नीचेकी सारणीमें कोयलेकी जाति, उसके बननेका समय और उसका विश्लेषण (Analysis) दिया जाता है। सूखी हुई बीच-वुडके क्या क्या अवयव हैं, यह भी तुलनार्थ दिखलाया गया है।

इस सारणीसे स्पष्ट है कि जितना जमाना गुजरता गया, उतना ही अधिक परिवर्तन कोयलेमें होता गया, क्योंकि लकड़ीमका पानी, कर्बोज (Hydrocarbons) वगैरा पदार्थ निकलते गये और कर्बन ही बचता गया, यहां तक कि सबसे पुरानी तहोंमें कोयला सिर्फ ग्रेफाइट के ही रूपमें पाया जाता है, जो शुद्ध कोयला या कर्बन है। उधर हालकी तहोंमें पाये जाने वाले कोयलेके रूपान्तरों पर विचार कीजिये। पीटमें जड़ोंके रेशे वगैरा बहुत होते हैं और इतना पानी होता है

पदार्थ	निर्माण काल	शत	उज्जन %	तथा नत्रजन %	राख %
[सू]खी बीचवुड (Dried beech wood)	(Recent) आधुनिक	४९ ८६	६ ०७	४४ ०४	••
जंगली पीट (Forest peat)		५१ ४७	५ ९६	३२ ६८	९ ६७
दलदली पीट (Moor peat)		५२ ५९	६ ३३	२७ ८४	१२ २४
लिगनैट या शिलाजीत (Lignite)	Tertiary द्वेतायुगीय	५७ २८	६ ०३	३६ १९	५९·
ब्रौन कोल (Brown coal)		६१ २	५ १७	२१ २८	१२ ३५
लीअस कोल (Lias coal)	(Mesozoic) मध्ययुगीय	७८ ०८	३ ३९	७ ३२	१० ६९
सेप्रोपेलिक कोल (Sapropelic coal)	Upper carboniferous) कर्बनीय (कोयला)	८० ०७	५ ५३	१० २०	२ ८०
भट्टी का कोयला (Humic or Bituminous)		८३ ४७	६ ९८	९ ५९	१००
पत्थर का कोयला (Anthracite)		९१ ४३	३ ३९	२ ७९	१ ५२
ग्रेफ़ाइड (Graphite)		१००	••	. ..	. . .
हीरा					

कि जलानेके काम में लाना मुश्किल होता है। कुछ दिन हुए एक सज्जन ने पाटको काममें लाने की एक तरकीब निकाली है। यह इसे तोड़कर ईंटे बनाते हैं, जो भट्ठोंमें या चूल्होंमें आसानी से जलाई जा सकती हैं। इसी प्रकार यदि लिगनैट-की सतहको आप गौरसे जांचें तो आपको उसके उसी प्रकार धारियां नजर आयगी जैसी लकड़ीके तख्तोंमें आती हैं।

ऊपरके कथनसे आपको विदित हो गया होगा कि पत्थर का कोयला पुराने जमानेके घने जङ्गलोंके जमीनमें दब जानेसे बना है। वास्तवमें कोयलेको खानोंको हमें सूर्यकी शक्तिका भण्डार समझना चाहिये। सूर्यमेंसे शक्ति उत्पन्न होकर चारों तरफ प्रकाश और तापके रूपमें फैलती है। यह करोड़ों वर्षोंसे बराबर निकल रही है और देशमें (Space) फैल रही है। इसी शक्तिके सहारे हम जिन्दा हैं, वरना दो चार दिनमें ही पृथ्वी मण्डल जीवनशून्य हो जाता। इसी शक्तिके सहारे दरख्तोंकी पत्तियां वायुके कर्बन द्विओषिदको तोड़कर, कर्बन ग्रहण कर लेती है और ओषजन हमारे लाभके लिए फिर पैदाकर देती हैं। सारांश यह कि इसी शक्तिके सहारे वनस्पतियां उगती हैं, फलती और फूलती हैं। आजसे लाखों करोड़ों वर्ष पहले भी यह शक्ति सूर्यसे पृथ्वी तक आरही थी। उसी शक्ति से उस समयके जगल खड़े थे। वही जगल अब हमको कोयलेके रूपमें मिलते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रकृतिने उस जमानेकी सूर्यकी शक्तिको काले कोयलेके रूपमें बदल कर खान रूपी बक्सोंमें बन्द करके रख छोड़ा था। वही आज हम काममें ला रहे है।

कोयलेमें कितनी शक्ति बन्द है? इसका हिसाब भी बहुत मनोरञ्जक है। मुट्ठी भर कोयलेके जलनेसे इतनी ताक़त पैदा होती है कि ५० लाख सेरके वजनको एक फुट उठा सकती है या यों समझिये कि ६७ मनके बोझको जमीनसे म्योर कालेजकी टावरके ऊपर तक पहुचा सकती है। इससे आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि नेचरने कितनी महान् शक्ति हमारे लिए इकट्ठी कर रखी है।

कोयलेकी शक्ति सूर्यके ताप और प्रकाशसे पैदा हुई, वही शक्ति फिर ताप और प्रकाशमें बदल कर आज कल हमारे इञ्जनोंको चलाती हैं और गैस या बिजलीके रूपमें हमारे मकानों या शहरोंको रोशन करती है। साहिबान आज जो रोशनी इस कमरेमें हो रही है वह आजसे कई करोड़ वर्ष पहलेकी सूर्यकी रोशनी है। इस बातको ख़याल कीजिये और नेचरके गूढ रहस्योंकी प्रशंसा कीजिये।

इसी कोयलेसे हमको गैस, कोक, अमोनिया, डामर प्राप्त होते हैं। डामर पहले एक गन्दी चीज-ख़याल की जाती थी, पर आजकल जितने भड़कीले चटकीले रंग आपको नजर आते हैं, जितनी खुशबूदार चीजें, रुई वगैरा आपके काम आती हैं, वह सब इसी डामरसे प्राप्त होती हैं। इसी डामरसे बड़े बड़े विस्फोटक (Explosives) बनते हैं जिनकी सहायता से बड़े बड़े किले एक मिनटमें तहस नहस हो सकते हैं। इसी डामरकी बदौलत आपके लैमजूसका मीठापन है, इसीकी बदौलत सर्जरी चल रही है—सारांश यह कि इसी गन्दी बदबूदार चीजसे हमारी सभ्यताकी उज्ज्वलता कायम है

ग्रेफाइट

यह वही पदार्थ है जिसकी पेंसिल बनती हैं। इसकी बहुत सी खानें हिन्दुस्तानमें भी है। अजमेरके पासकी एक खानके ग्रेफाइटका नमूना मेरे पास है। यह पदार्थ बड़ी ही मुश्किलसे गलता है। बिजलीके भट्ठेमें भी, जिसमें अन्य पदार्थ मोमकी तरह पिघल जाते हैं, यह नहीं पिघलता। इसीलिए इसकी वह घरिया बनाई जाती है, जो बिजलीके भट्ठेमें काम आती हैं। मशीनोंके ओंघने या लोहेके पालिश करनेमें भी यह काम आता है।

सच पूछिये तो यह पदार्थ हीरेसे ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि इसकी बनी हुई पेंसिलोंसे संसारको हीरेसे हजार गुने मूल्यवान विचार प्राप्त हुए है।

कृत्रिम ग्रेफाइट प्राकृतिक ग्रेफाइटसे भी अच्छा होता है। इसे एचीसन कम्पनी बनाती है। रेत और पत्थरके कोयलेका मिश्रण बिजलीके भट्ठेमें तपाया जाता है। पहले कर्बनशिलाकाइद (carbon silicide) बनता है, पर शिलाकण ओषिद उड जाता है और कर्बन ग्रेफाइटके रूपमें बच रहता है।

कृत्रिम ग्रेफ़ाइट बनानेकी एक और रीति है, जिसमें दबे हुए कोयले या पत्थरके चूर्णमें होकर विद्युत्धारा भेजी जाती है।

हीरा

हीरा वास्तवमें मणि माणिकोंका सिरताज है। उसकी सी चमक दमक, उसकी सी आभा प्रभा, किसी अन्य मणि माणिकमें नहीं पाई जाती। परन्तु आधुनिक विज्ञानने यह सिद्ध कर दिया है कि हीरा केवल काले कोयलेका गोरा भाई

है। उसमें यदि कुछ अन्तर है तो केवल रंगमें, वर्तनीय संख्या (refractive index) में और घनत्वमें, परन्तु रासायनिक दृष्टिसे, ज्ञानियोंकी दृष्टिसे—सांसारिक जीवोंके विचारसे नहीं—वह निरा कोयला है। कोई २०० वर्ष हुए लोगोंको यह विश्वास नहीं होता था कि हीरा जैसी चमत्कारिक वस्तु किसी प्रकार भी काले,कोयलेसे सम्बद्ध होगी। परन्तु १८०८ वि० में एक अद्भुत घटना हुई। आस्ट्रियामें फ्रांसिस प्रथम राज्य करते थे। एक दिन उनके पास किसी कीमियागरका गुमनाम खत आया, जसमें यह बतलाया था कि छोटे छोटे हीरोंको तपाकर बड़ा हीरा किस भांति बनाया जाता है। राजाने नौ हजार रुपयेके छोटे छोटे हीरे लेकर एक घरियामें रखकर २४ घंटे तपाये। इस बीचमें उन्हें यह आशा लगी रही कि उक्त समयके अन्त होनेपर एक बड़ा दमदमाता हुआ हीरा मिल जायगा, परन्तु दूसरे दिन उन्हें घरियामें कुछ न मिला।

√ इसके बाद १७७१ में पेरिसमें मेकर नामी रसशास्त्रीने हीरा जलाकर सिद्ध कर दिया कि हीरा वास्तवमें कोयलेका ही रूपान्तर है।?

यह सिद्ध हो जाने पर, कई रसज्ञोंने इस बातका प्रयत्न किया कि कोयलेसे हीरा तय्यार करें। पहले लोगोंने इस बातका प्रयत्न किया कि कोयलेको गलायें, पर उन्हें इस बातमें सफलता न हुई। जन साधारण का यह विश्वास हो चला कि कोयला पिघल नहीं सकता। पर वास्तवमें बात यह है कि कोयलेका द्रवण विन्दु (melting point) उसके उबाल विन्दु (boiling point) से ऊंचा है। यही कारण है कि पिघलनेके पहले ही वह उड़ जाता है। मामूली तौरपर उबाल विन्दु,

द्रवणविन्दुसे ऊंचा होता है, जिससे चीज पहले गलती है और बादमें उबल कर वाष्पमें परिणत हो जाती है। पर हम जानते हैं कि दबाव बढ़ा देनेसे उबालबिंदु बढ़ाया जा सकता है। एक वायुमण्डलके दबावपर पानी १००° श पर उबलता है, परन्तु यदि दबाव १९६ वायुमण्डलके बराबर कर दिया जाय तो पानी ३७०° श पर उबलने लगता है। इसी भांति यदि कर्बन दबाव डालकर तपाया जाय तो वह पहले गलेगा और बादमें उबल कर भाप बन जायगा। सर विलियम क्रुक्सका कहना है कि १७ वायुमण्डलके दबाव पर कर्बन ४१३०° श पर पिघल सकता है। इस तापक्रमपर यदि कोयलेको गला लें और फिर उसे ठंडा होने दें तो शायद हीरेके रवे बन जाय। पर इतना ऊंचा तापक्रम पैदा करना और उसपर प्रयोग करना, दोनों बातें मुश्किल हैं। तथापि कृत्रिम रीतिसे हीरे बन चुके हैं। हेने और होगर्थ (Hanny and Hogarth) ने पहले पहल इस कार्यमें सफलता प्राप्त की। मयसुअन (Moison) को इनसे भी अधिक सफलता हुई, पर हीरे बहुत छोटे छोटे बने। इनमें-से बड़ोंका व्यास एक मिलीमीटरसे अधिक न था। पिघले हुए लोहेमें कर्बन उसी प्रकार घुल जाता है, जिस प्रकार पानीमें शकर घुल जाती है। शर्बतके ठंडे होनेपर मिश्रीके रवे जम जाते हैं, उसी प्रकार लोहेके ठंडे होनेपर कोयला या कर्बन ग्रेफ़ाइटके रूपमें जम जाता है। परन्तु यदि किसी प्रकार दबाव बढ़ा दिया जाय तो ग्रेफाइट न बनकर कर्बन भी रवों-के रूपमें जमेगा, जो हीरे होंगे।

मयसुअनने यह दबाव इस प्रकार पैदा किया —उसने एक लोहेका पोला बेलन लिया, जिसका एक सिरा बन्द था।

इसमें उसने कोयला भरा और उसका मुंह एक पेन्चसे बन्द कर दिया और वेलन (Cylinder) को खौलते हुए लोहेमें डुबो दिया। ऐसी अवस्थामें वेलनमें कर्बन प्रवेश कर गया और वेलनका लोहा कर्बनसे सपृक्त हो गया। तदनन्तर उन्होंने सबके सब लोहेको पानीमें डाल दिया। पहले उन्हें बहुत डर लगा, क्योंकि प्राय. ऐसा करनेसे बडे ज़ोरका धडाका हुआ करता है। यह हम जानते हैं कि पिघला हुआ लोहा ठंडा होनेपर फैल जाता है, अतएव पिघला हुआ लोहा जब पानीमें डाला गया, तो ऊपरका हिस्सा ठोस हो गया पर अन्दरका हिस्सा पिघला हुआ ही रहा। जब उसके ठंडे होनेकी बारी आई, तो उसे फैलनेको जगह कम मिली, क्योंकि वह चारों तरफसे तो ठोस लोहेसे जकडा हुआ था। अतएव उसके अन्दर बहुत भारी दबाव पैदा हो गया। बिलकुल ठंडा हो जानेपर लोहा तेजाबमें गलाया गया और बहुत छोटे छोटे हीरे अलग हो गये।

इन प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो गया कि कोयलेसे हीरा बन सकता है। बडे हीरोंके बनानेमें जो रोक है वह केवल यही है कि हम यह प्रयोग बडे पयमानेपर कर सकें और बहुत ज्यादा दबाव पैदा कर सकें।

विचार करनेसे मालूम होता है कि शायद नेचरमें भी हीरे इसी तरीकेसे बने होंगे। पृथ्वी तलसे ६०० मील नीचे, पृथ्वीके केन्द्रके चारों तरफ एक समुद्र है जिसमें लोहा आदि धातु पिघली हुई अवस्थामें भरी हुई हैं। इस धधकते हुए समुद्रके ऊपर ६०० मील-मोटी चट्टानोंकी तहकी वजहसे इतना ज़्यादा दबाव पड़ रहा है कि उसका खयालमें भी आना

मुश्किल है। इस लोहेके समुद्रमें जिसका तापक्रम भी बहुत ऊचा है—सभव है कि ६०००° श के लगभग हो और जिस पर दबाव भी बहुत ज्यादा पड रहा है—लाखों करोडों मन कर्बन घुला हुआ है। जमीनमें जो हमेशा तबदीलियां होती रहती हैं, जिनकी वजहसे ऊपरके हिस्से नीचे चले जाते हैं और नीचेके ऊपर उठ आते हैं, उनके कारण कभी कभी यह कर्बनसे सपृक्त लोहा जमीनकी सतह तक या उसके बहुत नजदीक तक आ जाता है। वहा आकर एक दम ठडा हो जाता है, फिर वही कैफियत होती है जो मयसुअनके प्रयोगमें हुई थी, और ठडा होनेपर बडे बडे हीरे बन जाते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी ज्वालामुखीके प्रभाव या क्रिया-से भी लोहा ऊपर तक आ पहुचता है।

फिर यह सवाल पैदा होता है कि यह सिद्धान्त केवल कल्पित है या इसके कुछ सबूत भी हैं।

(१) पहला सबूत तो मयसुअनका विख्यात प्रयोग है।

(२) दूसरा सबूत यह है कि प्राय. ऐसे हीरे भी मिला करते हैं जो बिलकुल गोल हुआ करते हैं। उनकी शकल वैसी ही होती है जैसी किसी द्रवकी उस समय होती है जब वह दूसरे द्रवमें डाल दिया जाता है, जिससे वह मिलता नहीं। इससे जाहिर है कि पहले कर्बन लोहेमें घुला हुआ था, पर बादमें लोहेके ठडे होने पर उससे न मिलनेके कारण ऐसे रूपमें बदल गया।

(३) तीसरा सबूत यह है कि कभी कभी हीरे खानमेंसे खोद कर निकाले जानेके बाद एक दम फट जाते हैं और उनके बहुत से छोटे छोटे टुकडे हो जाते हैं। इससे ज़ाहिर

होता है कि यह बड़े दबावके नीचे बने थे। दबावके हटनेपर वह बिखर गये।

(४) चौथा सबूत यह है कि प्राय हीरे खानोंमें सीधी नालियोंमें पाये जाते हैं। यह नालियां जमीनके भीतरसे सीधी सतह तक आती हैं। इनमें एक प्रकारकी नीली मट्टी भरी रहती है, जिसकी मददसे यह अलहदा दिखलाई पड़ती हैं। हीरे इसी नीली मट्टीमें दबे हुए पाये जाते हैं। यह नालियां (pipes) 'पैप्स' कहलाती हैं। यह वास्तवमें पुराने ज्वालामुखियोंके गले हैं।

हीरेके गुण

हीरेका नाम वज्र भी है। वास्तवमें यह प्राय सबसे अधिक कठोर पदार्थ है। परन्तु यह चटखना भी बहुत होता है। पत्थर पर यदि आप हीरा ऊंचेसे डाल दें तो वह अवश्य चटख जायगा। अगर कही उसपर हथौड़ेकी चोट लग जाय तब तो उसके हजारों टुकडे हो जाते हैं।

हीरा निरा रवेदार कोयला होता है। मुगल बादशाहोंके ज़मानेमें, ईश्वरका फज्ल है, कि यह बात मालूम न थी। वरना कोई मन चला बादशाह अपना हम्माम हीरोंको जला कर गरम कराता या कमसे कम हीराभी आगपर अपना खाना बनवाता। एक मन हीरे जलानेमें लगभग ४५ लाख रुपये खर्च होते।

हीरा कोयला है। इसीलिए उसके जलनेसे कर्बनद्विओषिद बन जाता है। किसी मन चले सेठ या साहूकारको कहीं यह न सूझ जाय कि हीरेको जलाकर बनाई हुई कर्बनद्विओषिदसे सोडा वाटर बनाकर पिये।

पुराने किस्सोंमें पढा करते हैं कि एक सुन्दरी थी जिसके मुंहसे हीरे झडा करते थे। पर हम यह कहनेके लिए तय्यार हैं कि आपकी फूकमें (प्रश्वासमें) हीरे निकलते हैं, क्योंकि कर्बनद्विओषिद् बराबर आपके फेफडोंमेंसे निकलती ही रहती है।

संसारमें सबसे बडा हीरा जो अब तक पाया गया है वह कलोनेन हीरा है। इसका वजन ३७५४ कैरट या १०-छटाकके करीब था। २७ फरवरी १९०५ के दिन Premier Diamond mine* के मैनेजर शामके ४ या ५ बजे खानके मुआइनेके लिए गये थे। वहा उन्हें एक ऊंचे स्थान पर कोई चमकती हुई चीज नजर आई, जिसे देख वह जल्दीसे चढ गये और खोदने लगे। जल्दीमें उनका चाकू भी टूट गया, पर प्राप्त हुआ यह अमूल्य रत्न।

सज्जनो, आपने कोयलेके रूपान्तरोंको देखा, उनके गुणों-पर विचार किया और यह जान लिया कि काला कोयला और गोरा हीरा दोनों ईश्वरके सिरजे हुए हैं। दोनों इस स-सारमें अपना अपना काम पूरा करते हैं। रासायनिक दृष्टि से दोनों एक ही है, असलियत दोनोंकी एक ही है। अगर एकमें चमक ज्यादा है, तो दूसरेकी उपयोगिता अधिक है इसलिए हमें आधुनिक विज्ञानका शुक्र गुजार होना चाहिये, जिसने हमारी आंखें खोलदी हैं और बतला दिया है कि असलियत क्या है।

---

* 'प्रीमियर डाइमण्ड माइन' अफ्रीकामें एक हीरोंकी खान है।

२४ घन्टे तक भी इस आशासे तपाथा कि एक बडा हीरा बन जायगा, पर प्रयोगके अन्तमें उसे हीरा एक भी न मिला। लाल अवश्य ज्योंके त्यों मिले। स० १७७१में फ्रांसमें कुछ रसज्ञोंने भी हीरा जलाया, पर लेब्लैंकने इस कथनकी सच्चाई में सन्देह प्रकट करते हुए कहा कि मैं स्वयम् कईबार हीरोंको घरियामें रखकर तपाया है। लीब्लेङ्कके कथनका समर्थन मैलर्ड (Maillard) नामी जौहरीने एक प्रयोग भरी सभामें दिखला कर किया। पर बादमें लोगोंको मालूम हुआ कि उक्त प्रयोगमें हीरे कोयलेकी तहके नीचे दबे हुए थे और उन तक हवा नहीं पहुँच सकती थी। बिना हवा पहुँचे हीरोंका जलना असम्भव था। जब लेवासियाने ओषजनमें हीरा जला कर दिखला दिया तब लोगोंको हीरेके जल सकने में विश्वास होने लगा।

हीरे कै तरहके पाये जाते हैं?

प्रकृतिमें हीरे तीन तरहके पाये जाते हैं.—

(१) जिनके रवे पूर्ण होते हैं। इन्हीं का प्रयोग जवाहिरातमें होता है।

(२) जिनके रवे अपूर्ण होते हैं—यह रवोंसे अधिक कठोर होते हैं। इन्हें बोर्ट (bort) कहते हैं। जो छोटे छोटे टुकडे काटे या पालिस नहीं किये जा सकते, उन्हें भी बोर्ट कहते हैं।

(३) कार्बोनेडो—यह काले या भूरे होते हैं। इनकी निश्चित आकृति नहीं होती अर्थात् रवेदार नहीं होते। इसीसे इनमें फटन (cleavage) नहीं होती।

हीरेके रवोंका आकार

हीरोंके रवे प्राकृतावस्थामें अठ पहलू या बारह-पहलू होते है। प्रत्येक पहलू प्राय. या तो नतोदर (बीचमें नीचा

या दब हुआ) होता है या उन्नतोदर (उभरा हुआ)। प्रायः रगड़ खाकर* या अन्य भूगर्भ सम्बन्धी कारणोंसे यह गोल गेंदके आकारके भी पाये जाते हैं। भारतीय हीरे प्रायः अठपहलू और ब्राज़िल देशीय (Brazilian) बारह पहलु होते हैं। जितने रवेदार पदार्थ होते हैं वह प्राय तहोंके, तले ऊपर, जमनेसे बनते है। कहीं तो यह तहें स्पष्ट दिखाई देती हैं, कहीं पर नहीं। परन्तु यदि रवे को हम काटना चाहें, तो वह अपने पहलुओंके समानान्तर सहज ही फट जाता है। इसीसे कहा जाता है कि उसमें फटन होती है। अतएव फटन रवेदार पदार्थोंका एक विशेष गुण है। हीरे भी अठपहल और बारह पहलके पहलुओं या तलों के समानान्तर दिशाओं में सहज ही फट या कट सकते हैं।

हीरेका रंग

सर्वोत्तम हीरे तो स्वच्छ श्वेत रङ्गके होते है, क्योंकि जैसे इन्द्र धनुषके से रङ्ग उसमें दिखाई पड़ते हैं, वैसे रङ्गीन हीरों में नहीं नजर आते। इसीको रत्नकी ज्वाला (fire) कहते हैं।

अधिकांश हीरे सफेद, पीले या भूरे होते हैं। हरे हीरे इनसे कम पाये जाते हैं। गहरे लाल रंग के हीरे और भी कम होते हैं। नीले रङ्गके तो सिवाय भारतके अन्यत्र नहीं पाये जाते। काले, दूधिया और अपारदर्शी मोतिया रङ्गके हीरे भी कभी कभी पाये जाते हैं।

---

* पहननेके कपड़ोंकी रगड़से अगूठी, हार आदिमें जड़े हुए हीरे घिस जाते हैं और उनकी पालिस खराब हो जाती है। कहां कठोर हीरा और कहां मुलायम रेशम, तदपि निरन्तर घर्षणसे रेशम हीरेको घिस ही देता है!

हीरेकी उत्पत्ति

यूरोपमें एक कथा फैली हुई है कि बृहस्पतिदेवने एक बार सब मनुष्योंको यह आज्ञा दी कि मुझको भूल जाओ। एक मनुष्यने, जिसका नाम डायमण्ड-ऑफ क्रीट था उनकी आज्ञाका पालन करनेसे इन्कार किया। तिस पर क्रुद्ध होकर बृहस्पतिदेव श्राप दिया कि पत्थर हो जा। उसीसे हीरोंकी उत्पत्ति हुई। यह तो हुई दन्त कथा। वैज्ञानिक दृष्टिसे हीरोंकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इसका वृत्तान्त पाठक पिछले अध्यायमें पायेंगे।

दागी हीरा

दोष रहित हीरोंका संसारमें अभाव है। प्रायः सभी हीरे दूषित होते हैं। उनमें दाग या धब्बे रहते हैं। इन दागोंको निकाल देनेके लिए और रत्नमें समुचित चमक दमक पैदा करनेके लिए ही हीरोंको काटते और पालिस करते हैं। पर यह काम बड़ी हुशियारीका है। संसारमें एम्सटर्डम ही ऐसा नगर है जहां यह काम बड़े पैमानेपर होता है। बड़े बड़े हीरोंकी कटाई और पालिस वहीं होती है। छोटे मोटे कामके लिए तो हर जगह हक्काक (lapidaries) होते हैं।

हिन्दुस्तानके हीरे

सं० १८५६ वि० तक भारतकी हीरेकी खानें ही संसारमें सबसे बड़ी खानें थीं। १७२१ वि० में टेवरनियर नामी एक फ्रांसीसी सय्याह भारतवर्षमें आया था। उसने लिखा है कि गोलकुण्डामें साठ हजार आदमी काम करते थे। इसी खानसे कोहेनूर, होप, ओरलोफ, पिट आदि जगत् प्रसिद्ध हीरे निकले थे। आजकल हीरेकी खानें तीन प्रदेशोंमें स्थित हैं।

पहला प्रदेश है मद्रास प्रान्त, जिसमें कदापा वेलरी, करनूल, किशना, गोदावरी और गोलकण्डा शामिल है। दूसरा प्रदेश पहलेसे उत्तरकी तरफ महानदी और गोदावरीके बीचमें है। इसके अन्तर्गत है सम्बलपुर, चन्दा आदि। तीसरा प्रदेश है मध्य भारत, जिसमें पन्ना रियासत भी शामिल है।

ससारके हीरोंके निकासका हिन्दुस्तानका निकास एक सूक्ष्मांश है।

सम्भलपुरमें रेतको धोकर हीरे निकालनेका काम थारा और टोरा जाति के लोग करते हैं। सुनते हैं कि उन्हें जागीर में १६ गांव लगे हुए हैं। यहा पर जो हीरे पाये जाते हैं, वह चार तरहके माने जाते हैं, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।*

बुंदेलखंडमें सर्वोत्तम हीरे 'मोती गुल' कहलाते हैं। दूसरे दर्जेके, जो हरी झाई लिए हुए होते हैं 'मानिक' कहलाते हैं। तीसरे और चौथे दर्जेके जो पीली और भूरी झाई लिए होते है 'पन्ना' और 'बनसपति' कहलाते हैं।

जौहरी हीरोंको तीन तरह का मानते हैं —

'हीरा बरङ्ग नोसादर', 'हीरा मकढूनी,' 'अलमास हदीदी'†।

भारतीय हीरे ब्राजिल या अफ्रिकाके हीरोंसे अधिक भारी होते है और उनमें चमक भी ज्यादा होती है।

हीरोंको पक्का हीरा और बिल्लौरको कच्चा हीरा कहते हैं।

---

* Emanuel's Diamonds and Precious Stones, pp 55

† Powell's Punjab Products, pp 49, Vol I

ओवरसियरोंकी बड़ी देख भाल होते हुए भी बहुत चोरी हुआ करती थी। दास हीराको अपने बालोंमें, मुंहमें, कानोंमें या अंगुलियोंके बीचमें दबा लिया करते थे। कभी कभी वह हीरोंको इधर उधर इस आशामें फेंक दिया करते थे कि रातमें ढूंढ लेंगे।

किम्बरलीकी हीरोंकी खान

यह वर्तमान समयमें संसारकी सबसे बड़ी खान है। इसका सविस्तर वर्णन पाठकोंके भेंट फिर कभी किया जायगा।

आलोककारी पदार्थोंकी रसायन



प्रकाश-भौतिक अथवा मानसिक एक अद्भुत चित्ताकर्षक पदार्थ है। मनुष्य सदा से इसके लिए अविश्रान्त परिश्रम करता रहा है। सृष्टिके आदिमें जब मनुष्यकी उत्पत्ति हुई, आकाशमें विचरनेवाले ज्योतिष्पिण्डोंको देखकर उसकी बुद्धिका विकाश होने लगा। इस बाहिरी (भौतिक) प्रकाशने भीतरी प्रकाश (ज्ञान, विज्ञान) की नींव डाली। रात्रिके अंधेरे या परिमित उजालेके उपरान्त दिनमें सूर्य भगवानके प्रखर प्रकाशको देख कर मनुष्यको कितना आनन्द होता था और अब भी होता है-वैदिक कालके ऋषियोंने नीचेके मंत्रोंमें इसे भली भांति प्रकाशित किया है—

ॐ उद्वय तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २ ॥

[जिस अंधकारमें हम घिरे हुए थे, उससे निकल आये हैं और ऊंचे आकाश तथा उत्तम प्रकाशवाले सूर्यके दर्शन हमने किये हैं ।]

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यं ।

[सब जीनेवाली वस्तुओंको जाननेवाले देवके चोबदार (किरणें) उन्हें ऊपर उठा रहे हैं, जिससे हम सब उनके दर्शन कर सकें ।]

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम् सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ।
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतम् ।
अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

[अहा, देवताओंका नेता आ उपस्थित हुआ है। वह मित्र, वरुण तथा अग्निकी आंख है। वह चराचरकी आत्मा है। उससे वायु, पृथ्वी और आकाश सब व्याप्त है।

हम सौ वर्षतक देखते रहें, सौ वर्षतक जीते रहें, सौ वर्षतक बोलते रहें, सौ वर्षतक धनी बने रहें–बल्कि सौ वर्षसे अधिकतक] मनुष्यको क्या सारी प्रकृतिको ही सूर्योदयके समय महत आनन्दका अनुभव होता है। चिड़ियां अपना मधुर गान सुनाकर, पत्तियां पाद्य अर्घ्य देकर, कलियां खिल खिलाकर और अपना सौरभ वायुमें फैलाकर, आकाश मण्डल रंग बिरंगे कुमकुमोंसे होली खेलकर, हवा अपनी अठखेलियां

दिखाकर सूर्यके शुभागमनपर प्रमोद प्रदर्शित करती हैं। वसुधरा अनोखा, शान्त, उज्ज्वल, लावण्यमय रूप धारणकर और मधुर प्रकाशकी चादर ओढ आगतपतिका नायिका बन जाती है।

मनुष्यको, अपनी उत्पत्तिके बादही जानवरों से अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करना पडा होगा। पहले तो अनुभवत यह वृक्षोंपर ही रहते होंगे, परन्तु बादमें घरबनाकर रहना सीखा होगा। वृक्षवासन कालमें ही उन्होंने यह देखा होगा कि वायुके वेगसे निकटस्थ वृक्षोंकी टहनियोंमें सघर्ष होता है और अग्नि पैदा हो जाती है। इसी अनुभवसे उन्होंने आग जलाना और प्रकाश पैदा करना सीखा। घरोंकी जगली पशुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए उन्होंने पहले पहल इस आरम्भिक रीतिसे प्रकाश करनेकी तरकीब निकाली, क्योंकि जंगली पशु प्रकाशसे भय मानते हैं और उसे देखकर भाग जाते हैं। कुछ मनुष्योंका तो खयाल है कि प्रकाशको देख भूत भी भाग जाते हैं, पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि डरपोक आदमीमें भी प्रकाशकी उपस्थितिसे साहसका संचार हो जाता है।

सन्सारमें सबसे पहली तरकीब रोशनी पैदा करनेकी यही थी। मनुष्य जैसे जैसे उन्नति करता गया, रोशनी करनेके तरीकोंमें तरक्की होती गई। कृषिका प्रचार होने और तेलहन पदार्थोंके उपयोग जान लेनेके बाद हमारे चिरपरिचित 'दियाबाती' का जन्म हुआ होगा। इसके बाद मोमका प्रयोग मोमबत्तीके लिए होने लगा।

मोमबत्ती

बहुत पुराने जमानेमें मोमबत्तियां मधुमक्खिकाके मोमसे बनती रही हैं, परन्तु पीछेसे जानवरोंकी ठोस चर्बियोंका प्रयोग होने लगा। मोमबत्तियां बनानेका पुराना ढंग यह था कि मोम या चर्बीको किसी बरतनमें रखकर पिघला लेते थे। तदुपरान्त एक विशेष प्रकारके पौदेके अन्दरूनी भाग (Pith of rush) या रुईकी बत्तीका उचित लम्बाईका टुकडा लेकर उसमें डुबोते थे। और निकालकर सुखा लेते थे। सुख जानेपर फिर डुबोते थे। इस भांति बारबार डांव देकर सुखाते-जाते थे, जबतक कि बत्तीके चारो ओर मोमकी काफी मोटी तह न जम जाती थी। इंगलैएडमें इस प्रकारकी बत्तियोंको, उनके बनानेकी विधिके कारण, डिप्स (dips) कहते थे।

पुराने जमानेमें इंगलैएड आदि देशोंमें यह प्रथा थी कि स्त्रियां चर्बी बचा बचाकर रखती जाती थीं और घरका काम कर चुकनेपर रातकेलिए मोमबत्तियां तैय्यार किया करती थीं। भारतवर्ष जैसे सर्व सम्पन्न देशमें इस बातकी इतनी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि यहां तो इतने विविध भांतिके और सस्ते तेलहन पदार्थ मिलते थे कि उनसे तेल निकालकर जलानेमें अधिक किफायत होती थी। इन पुराने ढगकी बत्तियोंमें एक और ऐब होता था, इन्हें जलानेपर बहुतसा द्रव पदार्थ इनमेंसे निकलकर बहता था, जिससे बडी असुविधा होती थी।

रसायनने जहां मनुष्यके अन्य उपकार किये तहां बिचारी यूरोपकी स्त्रियोंकी यह दोनों दिक्कतें भी मिटा दीं। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें ही एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक शिव्रुल

(Chevreul) ने वानस्पतिक तथा पाशव चर्बियों और तेलोंकी परीक्षा आरम्भकी और उनकी प्रकृतिका निर्णय कर उसने यह निर्धारित किया कि यह सब ग्लिसरीनके यौगिकोंके मिश्रण होते हैं। प्रत्येक तेल या चर्बीमें (वानस्पतिक हो चाहे पार्शव) ग्लिसरीन [क$_{३}$ उ$_{८}$ ओ$_{३}$ C3 H8 O3], नीचे दिये हुए अम्लोंमेंसे, किसी एक या अधिकके साथ यौगिक बनाकर रहती है.—

खजूराम्ल (Palmitic acid)

क$_{१६}$ उ$_{३२}$ ओ$_{२}$ (C16 H32 O2)

वसाम्ल (Stearic acid)

क$_{१८}$ उ$_{३६}$ ओ$_{२}$ (C18 H36 O2)

जैतूनाम्ल (Oleic acid)

क$_{१८}$ उ$_{३४}$ ओ$_{२}$ (C18 H34 O2)

इनमेंसे पहले दो अम्ल तो ठोस हैं और उनके यौगिक (एस्टर) भी ठोस होते हैं, परन्तु अन्तिम अम्ल द्रव है और उसके यौगिक (एस्टर) द्रव होते हैं। यह अम्ल जैतूनके तेल (Olive oil) में पाया जाता है। जिन चर्बियोंमें ग्लिसरीनके जैतून एस्टरका अंश होता है वह बहुत हो बहती है। इसलिए ग्लिसरीन जैतूनेतको मोमबत्ती बनानेके पहले चर्बियोंमेंसे निकाल देना चाहिये।

मोमबत्ती बनानेकी आधुनिक विधि

चर्बीको पहले तेजाब मिले हुए पानीमें उबालते हैं, जिससे उसके रेशे अलग हो जाय। तदुपरांत चर्बीको उत्तप्त भापमें गरम करते हैं और उसके साथ थोडा सा बुझा हुआ चूना भी रख देते हैं। ऐसा करनेसे चर्बी विश्लिष्ट हो जाती है और उसके

अवयव गिलसरीन तथा अम्ल अलग अलग हो जाते हैं। अम्लों-को शुद्ध करके भपकेमें गरम करते हैं और द्रव अम्लोंको (जैतूनाम्ल) ठोस अम्लों (खजूर तथा वसा अम्ल) से अलग कर लेते हे। जो ठोस इस प्रकार प्राप्त होता हे उसमें अधिकांश वसाम्ल (स्टियेरिक एसिड या स्टियारिन) होता हे। इसमें थोडासा पाराफिन मोम मिलाकर आजकल मोमबत्तियां बनाई जाती हैं। पुरानी चर्बीकी मोमबत्तियाकी अपेक्षा यह बत्तियाँ अधिक कडी, साफ, अपारदर्शी होती ह और जलनेपर न तो मुडती हैं और न बहती हे। इनकी लौ भी धूम रहित और स्वच्छ प्रकाशमान होती है।

पाराफिन मोम

यहांतक हमने चर्बीसे मोमबत्ती बनानेका जिक्र किया हे। इससे अधिक परिमाणमें तथा सस्ता मिलनेवाला एक और पदार्थ हे, जिसे पाराफिन मोम कहते हैं। पहले यह स्काटलैण्ड फेलोट्रियज प्रान्तके तेलिया टामर (Oil Shale) को भपकेमें गरम करके बनाया जाता था। आजकल तो जर्मनीमें यह भूरे कोयले या लिगनैटको गरम करके और अमेरिकामें पेट्रोलियमको गरम करके भी बनाया जाता हैं। इसके अवयव प्राय वह योगिक होते हैं जिनमें केवल कर्बन तथा उज्जन पाये जाते हे और इसीलिए कर्बोज्ज कहलाते हैं। स्पष्ट है कि यह पाराफिन चर्बियोंकी जातिका योगिक नहीं है। बत्ती बनानेके पहले मोमको शुद्ध कर लेते हैं और उच्च तापक्रमपर गलनेवाले अंशको ही लेते हैं। इस मोमकी बत्तियोंमें केवल एक त्रुटि होती हैं कि गरमीके मौसिममें रखी रखी ही टेढ़ी

हो जाती हैं और गरम देशोंमें गरमीके मौसिममें जलानेमें बडी असुविधा होती है।

हम पहले बतला चुके हैं कि पहले पहल मोम बत्तियां मधुमक्षिकाके मोमकी बनाई जाती थीं। यह मोम चर्बी तथा तेलोंकासा ही यौगिक होता है। इसमें मिलिस्सिल अलकहल और खजूराम्लके मूल (अश) रहते हैं।

ह्वेल मछलीके (Physeter microcephalus) तेलसे भी एक पदार्थ निकाला जाता है जिसे स्परमेसीटी कहते हैं। इससे भी मोमबत्तियां बनती हैं, पर बहुत महगी होती हैं। उनका महत्व केवल इतना ही है कि यह प्रकाश नापनेकी प्रमाण मानी जाती हैं। इनकी लौ बडी और एकसी रहती है।

मोमबत्तियोंकी एक बडी भारी त्रुटि कैसे निकाली

पाठको ! आप तो आरामसे मोमबत्ती जलाते हैं, आपको यह मालूम भी न होगा कि आजसे सौ वर्ष पहले भले मानसोंको बत्तियां जलानेमें कितनी असुविधा होती थी। उन बिचारोंको थोडी देर बाद बत्ती कैंचीसे काटनी पडती थी। ऐसा क्यों करना पडता था इसका पूरा पूरा ब्योरा तब समझमें आयगा जब हम यह जान लें कि बत्ती जलती कैसे है।

मोमबत्ती कैसे जलती है

स्मरण रहे कि यद्यपि मोम जलनेवाला पदार्थ है, परन्तु वह उस वक्त तक नहीं जलता जबतक कि भापकी दशामें परिणत होकर एक विशेष तापक्रम तक, जिसे ज्वलन बिन्दु कहते हैं, गरम नहीं हो जाता। जब मोमबत्तीकी बत्तीके पास जलती हुई दियासलाई लाते हैं, तो उससे लिपटा हुआ मोम पिघलता है और भापमें परिणत हो गरम होकर जलने लगता है।

यह सब कारवाई एक सैकण्डमें हो जाती है। परन्तु बत्तीमें मोम थोड़ासा रहता है। अतएव लौ छोटी होती जाती है और नीचेको उतरती है। जहां यह मोम तक पहुंची कि उसका पिघलना आरम्भ हुआ और वह बत्तीके रेशों द्वारा ऊपरको चढ़ने लगा। जब वह लौ तक चढ़ जाता है तो भापमें परिणत हो जाता है और गरम होकर लौको बढ़ा देता है। अन्त में ऊपर चढ़ते हुए मोम और नीचे आनेवाली गरमीमें साम्यावस्था आजाती है और लौ एक समान जलती रहती है। यह पिघला हुआ मोम बह क्यों नहीं जाता? इसका कारण यह है कि बत्तीके जलनेमें जो हवा जल्दी होती है वह नीचेसे खिंचती है और यह मोमबत्तीके बाहरी भाग को ठंडा करती हुई बत्ती तक पहुंचती है। परिणाम यह होता है कि लौके नीचे पिघले हुए मोमका एक सुन्दर गोल ताल बन जाता है, जिसमें लौ कमलके समान सुशोभित होती है।

अब जो मोम बत्तीमें चढ़कर भाप में परिणत हो जाता है वह एक प्रकारका खोल सा बना लेता है जो केवल बाहर ही बाहर जलता है और भीतर गैसें भरी रहती है। यह गैस बत्ती को हवासे बचाये रखती है और उसे पूरी तौर पर जलने नहीं देती। नतीजा यह होता है कि बत्ती लम्बी होती जाती है। उसमें मोम बहुत चढ़ता है, जो अच्छी तरह जल नहीं सकता अतएव लौ लम्बी होकर ज्योतिर्हीन होती चली जाती है और धुआं देने लगती है। इस अधजली बत्ती को काटकर, लौका आकार घटाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं, जिससे फिर वही साम्यावस्था आ उपस्थित हो।

पुराने जमाने में इसीलिए बराबर बत्ती को काटना पड़ता

था, जिससे न तो ज्यादा मोम बत्ती में चढ़कर धुआं देता था और न खराब होता था और न लो लम्बी और ज्योतिर्हीन होती थी। इसीलिए गेटे ने लिखा है:—

There could be no greater discovery made,
Than of candles to burn without snuffers and

यह आविष्कार भी एक फ्रांससीसी केमवासीरस (Cambacores) ने १८२५ में किया। उसने कहा कि बटी हुई बत्तियोंकी जगह गुथी हुई या बुनी हुई बत्तियोंका प्रयोग करना चाहिये। यह सभी जानते हैं कि गुथी हुई चीज जलनेपर खम खा जाती है। यह बात प्रत्येक व्यक्ति आज कलकी मोमबत्तियोंमें देख सकता है। बत्ती जलकर मुड जाती है। इस प्रकार उसका अध जला (झुलसा हुआ) ऊपरी भाग हवा तक पहुंच जाता है और पूरा जल जाता है। बत्ती अपने आप कट कर या जल कर स्वाहा हो जाती है और अब हम मोमबत्ती बिना बार बार काटे हुए जला सकते हैं।

बत्तीकी मोटाई, उसकी बुनावट, उसे मोमबत्ती बनानेके पहले शोरेके घोलमें या किसी अन्य रासायनिक पदार्थमें डुबोकर सुखाना आदि बातें मोमकी प्रकृतिपर निर्भर रहती हैं। इन सब बातोंका बडा अहतयात रखना पडता है।

घी और काफूर

भारतमें घी भी जलाने के काम आता था। आजकल भी कमसे कम पूजा पाठके समय घी काममें लाते हैं। बडे आदमी कपूर या कपूर बत्तियां जलाया करते थे। आजकल यह केवल आर्ती उतारनेके काम आता है।

मट्टीका तेल कबसे काम आने लगा ?

हम पहले कह चुके हैं कि स्काटलैण्डमें एक प्रकारका तेलिया डामर खानसे निकलता है। उसको भपकेमें गरम करके मोम निकाला करते थे। परन्तु गरम करने पर बहुतसा तेल भी निकलता था। पहले तो यह योंही बरबाद कर दिया जाता था, पर बादमें विज्ञान भक्त जर्मन इसे बहुत सस्ते दाम-पर मोल ले जाने लगे। खोज करनेपर पता चला कि उन्होंने एक लम्पका आविष्कार किया है जिसमें वह तेल जलाते हैं। इस प्रकार खनिज तेलका प्रयोग करना पहले पहल जर्मनोंने संसारको सिखाया।

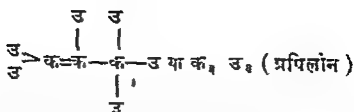
इस घटनाके बाद स्काटलेण्डकी आमदनी भी बढ़ गयी। परन्तु सबका समय सदा एकसा नहीं रहता, थोड़े ही दिन बीते थे कि रशिया और अमेरिकामें तेलके कुओंका पता लग गया। तब तो स्काटलेण्डको सिवा अपनी आमदनीसे हाथ धो बैठनेके कोई चारा ही न था। परन्तु

'छत्रिय तनुधर समर सकाना।
कुलकलंक तेहिं पावर जाना॥'

विज्ञानका खड्ग हाथमें ले स्काटलेण्ड प्रतियोगिताके रण अजिरमें आ डटा। वहांके वैज्ञानिकोंने इस व्यवसायमें ऐसे सुधार परिवर्तनादि किये कि वह आजतक बड़े फायदे-के साथ चल रहा है।

मट्टीका तेल

यह कहांसे निकलता है और कैसे निकाला जाता है, इन प्रश्नों पर "सरस्वती" तथा "विज्ञान" दोनोंमें लेख निकल चुके हैं। उन लेखोंको पढ़ कर पूरी जानकारी हो जायगी।



इथिलीनमें इथेनकी और प्रपिलीनमें प्रपेन की अपेक्षा २ उज्जन के परमाणु कम हैं। यह कर्बोज्जोंकी एक भिन्न श्रेणी है, जिसका व्यापक सूत्र है $क_न$ $उ_{२न}$। पहिली श्रेणी को मिथेन या पाराफिन श्रेणी कहते हैं। दूसरीको इथिलीन श्रेणी कहते हैं। एक और तीसरी श्रेणी है, जो दूसरी से भी अधिक अतृप्त है, जिसे एसेटिलीन श्रेणी कहते हैं। इसका व्यापक सूत्र $क_न$ $उ_{२न-२}$ है। इस तीसरी श्रेणी का पहला सदस्य एसेटिलन गैस है, जो लम्पोंमें गैस मसालेसे तैय्यार करके जलाया जाता है और जिसका सूत्र उ–क≡क–उ है। इन तीन श्रेणियोंके अतिरिक्त और भी कई श्रेणिया हैं, जैसे बेंजीन, जिसका मूल पुरुष बेंजीन ($क_६$ $उ_६$) है, इत्यादि।

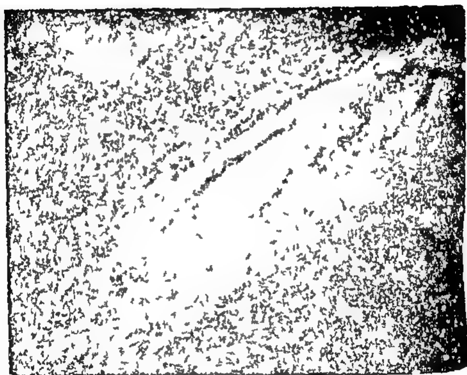
अमेरिकन पेट्रोलियम या मट्टीके तेल में प्राय मिथेन श्रेणी के कर्बोज्ज क $उ_४$ से लेकर $क_{१०}$ $उ_{२२}$ तक मिले होते हैं परन्तु रूसके पेट्रोलियममें बेंजीन श्रेणी के कर्बोज्ज पाये जाते हैं। इन श्रेणियोंके आरम्भिक मेम्बर तो गैस या द्रव होते हैं, पर ज्यों ज्यों उनमें कर्बन की मात्रा बढती जाती है, अणुभार अधिक होता जाता है, त्यों त्यों वह कम उडनशील होते जाते हैं अर्थात् उनका उबाल विन्दु बढता जाता है। जब कर्बनकी संख्या सोलह से अधिक हो जाती है तो यौगिक ठोस हो जाता है। अतएव जब पेट्रोलियमको गरम करते हैं तो उबाल विन्दुओंके क्रमसे उसमेंसे भाप बनकर यौगिक निकलने लगते

है। जो भाप १२०° और १४०° शके बीचमें निकलती है, उसे पेट्रोलियम ईथर कहते हैं। इसी प्रकार अन्य पदार्थ मिल जाते हैं। स्मरण रहे कि भाप को भपके में ठण्डा करके फिर द्रवमें परिणत कर इकट्ठा करते जाते हैं। ऐसा करनेसे प्राय. नीचे दी हुई चीजें भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर इकट्ठी कर ली जाती हैं.—

तापक्रम	पदार्थ	किस काम आता है
१२०°–१४०° का	पेट्रोलियम ईथर	घोलक है।
१६० –१६०° का	पेट्रोलियम या गैसोलीन	मोटरकार चलाने और गैस बनानेके काम आता है।
२५०°–३००° का	(Benzine) बेंजिन	चमडे या कपडे पर चर्बीके दाग धब्बे पड जाते हैं, उनके छुड़ानेमें काम आता है।
३००°–५५०° का	केरोसीन तेल	लम्पोंमें जलता है और इसकी गैस बनती है।

इससे भी ऊचे तापक्रमपर वैसेलीन, पाराफिन मोम और औंघने के तेल प्राप्त होते हैं।

यह तो मालूम हो गया होगा कि कैरोसीनमें जो कर्बोज्ज होते हैं उनमें कर्बनका अंश बहुत ज्यादा होता है। अतएव उन्हें जलानेके समय चिमनियोंका प्रयोग किये बगैर बहुत धुआ निकलता है। चिमनी के प्रयोगसे हवा उचित परिमाणमें पहुँचती रहती है और स्वच्छ निर्मल ज्योति प्रकट होती



प्लेट ३—अन्तर्मेदा मण्डल की नीहारिका। (देखिये पृष्ठ २०८)

हैं। जो भाप १२०° और १४०° शके बीचमें निकलती है, उसे पेट्रोलियम ईथर कहते हैं। इसी प्रकार अन्य पदार्थ मिल जाते हैं। स्मरण रहे कि भाप को भपके में ठण्डा करके फिर द्रवमें परिणत कर इकट्ठा करते जाते हैं। ऐसा करनेसे प्राय नीचे दी हुई चीजें भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर इकट्ठी कर ली जाती हैं —

तापक्रम	पदार्थ	किस काम आता है
१२०°–१४०° फा	पेट्रोलियम ईथर	घोलक है।
१६०–१९०° फा	पेट्रोलियम या गैसोलीन	मोटरकार चलाने और गैस बनानेके काम आता है।
२५०°–३००° फा	(Benzine) बेंज़िन	चमडे या कपडे पर चर्बीके दाग धब्बे पड जाते हैं, उनके छुडानेमें काम आता हैं।
३००°–५५०° फा	केरोसीन तेल	लम्पोंमें जलता है और इसकी गैस बनती है।

इससे भी ऊचे तापक्रमपर वैसेलीन, पाराफिन मोम और औंघने के तेल प्राप्त होते हैं।

यह तो मालूम हो गया होगा कि कैरोसीनमें जो कर्बोज्ज होते हैं उनमें कर्बनका अंश बहुत ज्यादा होता है। अतएव उन्हें जलानेके समय चिमनियोंका प्रयोग किये बगैर बहुत धुआं निकलता है। चिमनी के प्रयोगसे हवा उचित परिमाण में पहुँचती रहती है और स्वच्छ निर्मल ज्योति प्रकट होती

वह जिनमें गैस द्वारा गरम होकर जाली प्रकाश करती है। तीसरे बिजलीके लैम्प। इन तीनों प्रकारके लेम्पोंमें पाठकोंने अन्तर देखा होगा। केवल गैसकी लौके और गैस द्वारा गरम हुई जालीके प्रकाशमें कितना महत् अन्तर है तथापि उक्त लेखकने गैसके प्रकाशको ही दिनका प्रकाश जैसा बतलाया है। यदि वह उत्तम जालीका प्रकाश देख पाता तो उसके आश्चर्य का क्या ठिकाना रहता, पर एक बात इस कथनसे अवश्य प्रतीत होती है और वह यह है कि गैसकी रोशनीके पहले गलियोंमें बड़ी खराब रोशनी होती होगी।

पत्थरका कोयला कोई निश्चित यौगिक नहीं है। वह कई पदार्थोंका मिश्रण मात्र है, पर मिश्रणके अवयवोंकी सची प्रकृतिका ज्ञान हमें अभी तक नहीं हुआ है। कोयलेमें निम्न लिखित मौलिक पाये जाते हैं.—कर्बन, उज्जन, ओषजन, नत्रजन और गंधक। अन्तिम दो कम मात्रामें पाये जाते हैं। जब पत्थरके कोयलेको बन्द बरतनों (रिटोर्टों) में तपाते हैं या डिस्टिल करते हैं तो जलानेकी गैस, द्रवोंका मिश्रण, जिसमें अमोनिया और टार (अलकतरा) प्रधान होते हैं, प्राप्त होता है और रिटोर्टोंमें कोक बच रहता है। वास्तवमें उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रकार और उनकी मात्रा, कोयलेकी प्रकृति और तपानेके तापक्रम (आंच) पर निर्भर होता है, परन्तु प्राय. गैस के कारखानोंमें एक टन कोयलेसे नीचे दिये पदार्थ इन परिमाणोंमें मिलते हैं —

(१) जलानेकी गैस	११००० घन फुट
(२) अलकतरा	१२० पौण्ड

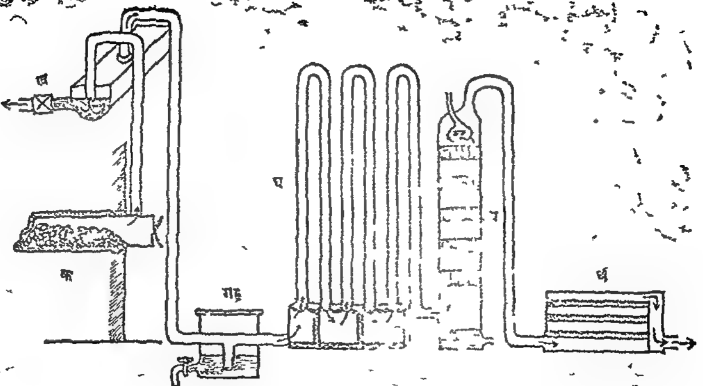
(३) अमोनियम गन्धेत २५ पोण्ड
(४) कोक १५०० „

५० वर्ष पहले अमोनिया और अलकतरा किसी काममें न आते थे, बल्कि उनका पैदा होना एक प्रकारकी आफत समझी जाती थी। पर आज कल यह बड़े कामके पदार्थ समझे जाते हैं। कभी कभी तो अमोनियाके दाम तपाये हुए कोयलेसे ज्यादा बैठते हैं। अलकतरेसे तो आज कल न जाने कितने अमूल्य पदार्थ बनाये जाते हैं। कोकका भी लोहेके कारखानों-में बहुत काम पड़ता है। पाठक इसका तथा गैस बनानेका सूक्ष्म वृत्तान्त 'ताताका लोहेका कारखाना' शीर्षक लेखमें पढ़ चुके हैं।* यहां पर केवल गैस बनानेका कुछ विस्तृत वृत्तान्त दिया जायगा।

कोयला बड़े बड़े मिट्टी (फायरक्ले) के बरतनोंमें तपाया जाता है। इनमेंसे एक क चित्र २१ में दिखलाया गया है। यहां-से गैस ऊपर आने वाली नलीमें चढ़ती है, जिसका दूसरा छोर एक नालीमें डूबा रहता है। यहांपर कुछ पानी और अलकतरा जमा हो जाता है, जो बहकर ख द्वारा टार वेल (कोलटार जमा होनेका स्थान) में पहुँच जाता है। जैसा तीरों द्वारा बतलाया है गैस एक दूसरे पैपमें चढ़कर ग में होती हुई घ में पहुँचती है। ग में पहुँचनेपर बहुत कुछ जल अमोनियाको घुलाकर नीचेके होजमें जमा हो जाता है। घ में भी वही लम्बी लम्बी नलियां हैं, जिनमें गैस खूब ठंडी होजाती है और रहा सहा पानी और अमोनिया (घोल) जमा हो जाता

---

*देखो विज्ञान भाग ७ पृष्ठ ६६



चित्र ३१—कोल गैस बनाने और शुद्ध करनेका यन्त्र

है। य से निकल कर गैस च गुम्बदमें चढती है। गुम्बदके ऊपरसे पानीका फव्वारा गिरता है, जो गैसको अच्छी तरह धो देता है। धोनेसे प्राय बचा खुचा अमोनिया, कुछ कर्बन-द्विओषिद् (CO_2) और उज्जन गन्धिद (H_2S) पानीमें घुल जाते हैं। यहासे निकल कर गैस छ में जाती है जहा उपरोक्त दोनों पदार्थ गैसमेंसे अलग कर लिये जाते हैं। कर्बन द्विओषिद् और उज्जन गन्धिदका अलग करलेना बडा आवश्यक है, क्योंकि पहला पदार्थ तो गैसके प्रकाशको कम कर देता है और दूसरा जलकर गधक द्विओषिद बनाता है, जो मकानोंमें रहने वालोंके स्वास्थ्यको और रखे हुए सामानको खराब कर देता है।

छ में पहले गैसोंको चूनेकी तहोंमें से निकालना पडता है, जिनमें कर्बनद्विओषिद जज्ब हो जाता है। बादमें लौह ओषिदमें होकर गैस निकलती है। उसमका उज्जन गधिद् लौह ओषिद्को लौह गधिदमें बदल देता है और स्वयम् पानी बन जाता है। यह लोह गधिद यदि हवामें रख दिया जाय तो फिर ओषिदमें बदल जाता है और गधक अलग हो जाता है। इस भाँति उसी लौह ओषिदका कई बार प्रयोग किया जा सकता है। पर कुछ दिनों बाद उसमें इतना गधक इकट्ठा हो जाता है कि वह निकम्मा हो जाता है और गधकका तेजाब बनानेवालोंके हाथ बेच दिया जाता है।

शुद्ध होनेके बाद गैस गैसमापक (गैसोमीटर) में पहुँच जाती है और वहाँसे ग्राहकोंके पास पैपों द्वारा पहुँचती रहती है।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि गैसका सगठन कोयलेकी जाति और तापक्रमपर निर्भर होता है। इसीलिए भिन्न भिन्न

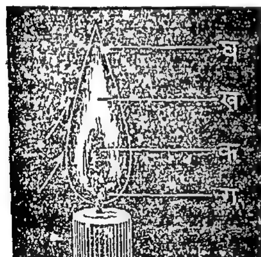
कारखानोंकी गैस भिन्न भिन्न सगठनकी होती हैं। यदि एक ही कारखानेको लिया जाय, तो उसमें भी सदा एकसी गैस नहीं बनती है। मामूली तौरपर गैसके अवयवोंके भेद और परिमाण इस प्रकार होते हैं.—

उज्जन	४६ प्रतिशत	(आयतनमें)	
मिथेन	३५	"	"
असंपृक्त कर्बोज्ज	४	"	"
कर्बन एकौषिद्	५	"	"
कर्बन द्विओषिद	५	"	"
नत्रजन	६	"	"
ओषजन	५	"	"

लौमेंसे क्यों प्रकाश निकलता है?

ऊपरकी गिनाई हुई गैसोंमेंसे नत्रजन और कर्बन द्विओषिद् जलती ही नहीं, यह ता बिना जले ही वायुमण्डलमें जा मिलती है। अतएव इनके रहनेसे गैस पतली पड जाती है (उसमें मिलावट हो जाती है) और इसीलिए उसकी प्रकाश करनेकी शक्ति कम हो जाती है। उज्जन अप्रकाशमान अदृश्यप्राय लौसे जलती है, कर्बन एक.ओषिद्के जलनेसे अप्रकाशमान नीली लौ पैदा होती है, मिथेन मन्द प्रकाशवाली लौसे जलती है। इथिलीन आदि असपृक्त कर्बोज्ज अवश्य प्रकाशमान लौ पैदा करते हैं और इन्हींसे गैसका प्रकाश होता है। यहांपर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि गैसोंके जलनेसे प्रकाश क्यों पैदा होता है? क्या कारण है कि मिथेन अथवा इथिलीनके जलने से प्रकाश पैदा हो और उज्जनके जलनेसे न हो? इस प्रश्नका उत्तर सर हम्फ्री डेवी ने बहुत दिन हुए दिया था। लौका

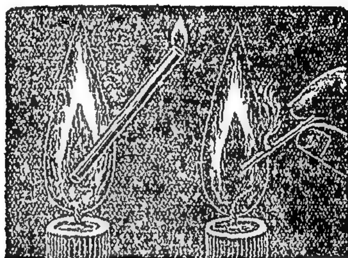
प्रकाशमान होना उन कर्बन कणों पर निर्भर होता है, जो कर्योज्नोंके टूटनेसे पैदा होते हैं और जलती हुई गैसोंकी गर्मी से गरम होकर प्रकाश देने लगते हैं। इन कर्बन-कणोंके वर्तमान होनेका प्रमाण यह है कि यदि किसी कटोरीको किसी लोके प्रकाशमान भागमें थोड़ी देर रखें तो उस पर काजल जम जाता है। प्राय यह कण वायुमें नहीं पहुँच पाते, क्योंकि लोके किनारे तक पहुँचने पर वह वायुकी ओषजनसे मिल कर कर्बन डिओषिद बना लेते हैं। इसीलिए प्रत्येक लौमें, जो कर्योज्नोंको जलानेसे पैदा होती है, तीन प्रान्त होते हैं। एक भीतरी प्रान्त जिसमें बेजली गैस अथवा वाष्प रहती है। दूसरा प्रकाशमान प्रान्त जिसमें उत्तप्त कर्बन कण रहते हैं। तीसरा एक अदृश्यप्राय बाहरी भाग जो प्रकाशमान भागको घेरे रहता है और जिसमें कर्बन कण जलते हैं।



चित्र २२–मोमबत्तीकी लौ। क–बेजली गैस। ख–जलती हुई प्रकाशमान गैस। ग–नीला भाग, जिसमें भाप बड़ी तेजीसे जलती है। घ–जलती हुई गैसका अदृश्य प्राय प्रान्त।

उपर्युक्त व्याख्यासे ज्ञात होगा कि यदि कर्बन-प्रद पदार्थ गैस-में मिला दिये जायँ तो गैसकी प्रकाश देनेकी शक्ति बढ़ाई जा सकती है। इसीलिए असपृक्त कर्बोज्जोंको मिला कर

कम प्रकाश देनेवाली गैसों को अधिक प्रकाश देनेवा
बना देते हैं।

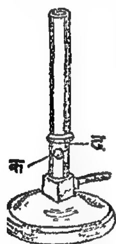


चित्र २३—क भागमें यदि जल्दीसे दियासलाईका सिरा घुसेड
जाय तो दियासलाई न जलेगी, क्योंकि उसमें बेजली गैस होती है।
प्रकार यदि उसमें एक नलीका सिरा रख दिया जाय, तो बेजली गैस
के दूसरे सिरेसे निकलने लगेगी और जलाई जा सकती है।

इसी प्रकार उज्जनके जलनेसे जो लौ पैदा होती
उसमें ठोस कण पहुँचा दें तो तीव्र प्रकाश उत्पन्न होता
उज्जन और ओषजनके मिश्रणको जला कर उसमें चू
एक छड़ी रख देते हैं। छड़ी खूब गरम होकर तीव्र प्रकाश
लगती है। इसीको लैमलैट कहते हैं।

कोल गैसमें यदि ओषजनकी पर्याप्त मात्रा मिला
जाती है तो बहुत ज्यादा गरमी पैदा होती है। इस सिद्
का प्रयोग बुनसन नामी वैज्ञानिकने एक बरनरमें
था जो अब तक उसके नामसे विख्यात है। बुनसनके

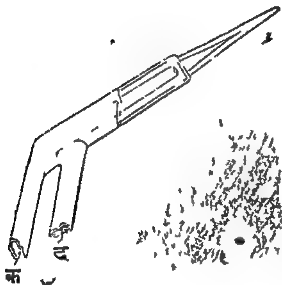
नरमें गैस एक बहुत छोटे छेदमें से निकलती है। यह छेद एक चौड़ी नलीसे घिरा हुआ होता है, जिसके निचले भाग में दो छेद होते हैं। गैस छिद्रमेंसे बड़े जोरसे निकलती है और ऊपर चढ़ती हुई आस पासके छेदोंमेंसे हवा खींचती हुई साथ ले जाती है। इन पार्श्वस्थित छेदोंके बन्द करने या थोडा बहुत खोलनेके लिये एक पोला नली पर चढा रहता है। इस पोलेमें भी उतने ही बड़े छेद रहते हैं। अतएव इसके छेद और नलीके छेद जब मिल जाते हैं तब पूरे खुल होते हैं, नहीं तो थोडे खुले होते हैं या बिलकुल ढक जाते हैं।



चित्र २४—क, छिद्र। द, पोला।

बरनर जलानेके लिए पहले नलीके छेद, पोला घुमाकर, बन्द कर देने चाहियें। दियासलाई जला कर गैसकी टोंटी खोल गैस जलानी चाहिये। पहिले प्रकाशमान लौ पैदा होती है। फिर पोला घुमाकर अप्रकाशमान कर देना चाहिये। यदि बहुत ज्यादा हवा नलीमें घुसती है तो लौ विस्फोटन शील हो जाती है और नलीके अन्दर प्रवेश कर सूक्ष्म-छिद्र के ऊपर जलती रहती है। ऐसी अवस्थामें गैस जलनेसे बड़े हानिकारक पदार्थ पैदा होते हैं, जिनकी उपस्थिति सौभाग्यवश उनकी दुर्गन्धसे मालूम हो जाती है। यदि हवाके स्थानपर हम ओषजनका प्रयोग करें तो और भी ज्यादा गरमी पैदा हो सकती है, क्योंकि हवामें जो ओषजनके साथ नत्रजन मिली रहती है वह उसे पतली

और निर्बल कर देती है। पर ओपजनका प्रयोग करते समय उपरोक्त बरनर काममें नहीं ला सकते, क्योंकि इसमें लौ के नलीमें प्रवेश करनेका और विस्फोटन होनेका डर रहता है। इसीलिए एक विशेष बनावटका बरनर काममें लाया जाता है। इसमें दो नलियां होती हैं, एकके भीतर दूसरी। गैस बाहरकी नलीमें जाती है और मुह पर जला दी जाती है। एक लम्बी धुआं देती हुई लौ इस प्रकार पैदा होती है। अब भीतरी ट्यूब द्वारा हवा अथवा ओपजन भेजी जाती है और वह पहलेकी लौको जोरदार, ज्यादा गरम और ज्योतिहीन कर देती है। ऐसी लौ यदि किसी चूनेकी डली या छडी से स्पर्श करे तो उसे श्वेत-उत्तप्त कर देती है, फिर छडी मेंसे बडा तीव्र प्रकाश निकलता है। यह भी एक प्रकार की लैमलैट हुई।



चित्र २५—द, द्वारा गैस जाती है क, द्वारा वायु या ओपजन जाती है।

इस ओपजन-कोलगैस-लौका प्रयोग कृत्रिम रत्नोंके बनानेमें सफलता पूर्वक हुआ है। कोलगैसको लौका प्रकाश साधारणतः कम होता है। यह पाठक रेलके डिब्बोंमें देखते होंगे, परन्तु जालीकी (मैंटिल) सहायता से यह प्रकाश बहुत तेज

किया जा सकता है। जालीके आविष्कारने ही अब तक कोल गैसको आलोककारियोंके समूहमें अच्छी स्थितिमें छोडा है, नहीं तो बिजली कभीकी उसका सिर नीचा कर देती और किसी कामका न छोडती। कलकत्तेकी गलियोंमें और सडकों-पर जो गैसका प्रकाश होता है वह प्रयाग और लखनऊकी बिजलीकी बत्तियोंसे कहीं बढा चढा है।

एसीटिलीन

कोल गैसको छोड दूसरा स्थान एसिटिलीनका है। यह गैस गैसमसाले (केलसियम कर्बिद) पर पानी डालनेसे पैदा होती है। यह बैसिकिलों और मोटरोंमें प्राय जलाई जाती है। साधारण तौरपर तो यह धुआं देनेवाली ज्योतिसे जलती है, पर खास तौरके बरनरमेंसे निकलने पर, जिसमें निकलनेसे इसमें कुछ हवा मिल जाती है, वह बडे तीव्र प्रकाशसे जलती है। पर अभाग्यवश बडे पयमानेपर इस-का प्रयोग नहीं हो सकता। इसके दो कारण हैं। एक तो इसमें बडी दुर्गंध आती है। दूसरे यदि इसे इकट्ठा करके पात्रमें दबा कर रखें तो धडाके के साथ यह खुद बखुद उड जाती है और नुकसान पहुँचाती है।



चित्र२६—गैस चूल्हा। द द्वारा गैस प्रवेश करती है क, द्वारा वायु जाती है। बीचके छल्लेमें जो छिद्र हैं, उनमें से निकल कर गैस जलती है। उठे हुए डडों पर पतीली रखी जाती है।

छोटी और तिरस्कार करने योग्य नहीं है। जो काम करो बहुत सोच समझ कर करो, जो बात तुम्हें अपने लक्षित मार्गसे हटाये, उससे बचो, अन्यथा सभी बातों को पूरे ध्यानसे देखो, विचार करो और उनसे लाभ उठाओ।

कुछ उदाहरण हम अपने कथनके समर्थनके लिए दिये देते हैं। मान लीजिये कि आप बाजारमें चले जा रहे हैं और अचानक किसी आदमीका धक्का लग गया। प्रायः सभी इसे एक छोटी सी बात कहेंगे और टाल देनेका उपदेश देंगे। पर टाल देनेका उपदेश क्यों दिया जाता है? क्या इसलिए कि घटना तुच्छ है? वास्तविक कारण यह है कि यदि टाल न दे और झगड़ा करनेको उद्यत हो जाय, तो समय, शक्ति, धन आदिका बहुत कुछ अपव्यय और दुरुपयोग होनेकी सभावना होती है। इन सब बातोंका खयाल करके और यह सोच कर कि और बहुत से आवश्यक और उपयोगी काम करते हैं, तरह दे जाना ही उचित हो जाता है। पाठकोंने बहुत से ऐसे मुकदमोंका हाल सुना होगा कि जिनमें दो चार हाथ जमीन पर लाखों रुपये खर्च हो गये हैं।

महाभारतमें लिखा है कि पाण्डवोंने एक घर बनाया था, जिसमें छाया प्रकाश और परिवर्तनका ऐसा प्रबन्ध रखा था कि थलमें जलका और जलमें थलका आभास होता था। पाण्डवोंने कौरवोंको महलके देखनेका निमन्त्रण दिया। कौरव आये। दुर्योधन थलमें कपड़े समेट कर, सावधान होकर, आगे बढ़ने लगा, पर जहां पानी आया वहां असावधानी से गिर पड़ा और भीग गया। द्रौपदीसे यह देख कर न रहा गया

और कह बैठी; "आखिर हैं तो अंधेकी सन्तान"। इन शब्दोंने ही वह द्वेषके बीज बो दिये, जिनका फलस्वरूप महाभारत हुआ और भारतका भारी अध.पतन आरम्भ हो गया।

लार्ड रैलेने एक बार यह निश्चय किया कि गैसों का गुरुत्व निकालें। उन्होंने प्रत्येक गैस कई विधियोंसे बनाकर शुद्ध की और गुरुत्व निकाले। नत्रजन भी उन्होंने दो तरहसे बनाई—एक तो वायुसे ओषजन अलग करके और दूसरे कई औषधों-को तपा कर। क्रमसे दोनों तरह से बनाई हुई नत्रजनको एक काचकी कुप्पीमें भर कर तोला तो मालूम हुआ कि वायु से बनाई हुई नत्रजनका भार २.३१०१ ग्राम और ओषधियोंको तपाकर बनाई हुई नत्रजनका भार २.२९९० ग्राम बैठता है। (दबाव और तापक्रम दोनों दफा एक ही था।) यह मूल्य एक ही प्रयोग से नहीं निकाले गये थे, किन्तु कई प्रयोगोंके परि-णामोंके औसत निकालने से प्राप्त हुए थे। इनमें अन्तर केवल ११ मिलीग्राम (सहस्राशग्राम) अर्थात् एक तोलेका दस हजारवां भाग था, पर लार्ड रैलेने इस छोटी सी बातको टाल न दिया। प्रयोगपर प्रयोग करते गये। उन्होंने गूढ़ विचार करके वह सब त्रुटिया निकाल दीं, जिनसे तोलमें अशुद्धता आ सकती थी और यह निश्चय कर लिया कि पूर्वोक्त अन्तर प्रायोगिक अशुद्धताकी सीमाके बाहर है। अर्थात् प्रयोगोंके कारण इतना अन्तर नहीं हो सकता—यह अन्तर वास्तविक है। इतना निश्चय करनेपर उन्होंने १८९२ की १९वीं सितम्बरके नेचरमें लिखा, "हालमें ही नत्रजनका गुरुत्व निकालनेसे जो मुझे मूल्य मिले हैं, उनसे मैं बडी दुविधामें पड गया हूं। यदि आपके पाठकोंमें से कोई सज्जन उसका कारण बतला

सकेंगे तो मैं बड़ा अनुगृहीत हूंगा। दो विधियोंसे नत्रजन तय्यार कर प्रयोग करनेसे भिन्न भिन्न गुरुत्व निकलते हैं।" इस घटनाके पश्चात् लार्ड रेलेने सर विलियम रेमसेके साथ गवेषणा शुरू की और आर्गन नामक गैसका पता चलाया। यह गैस नत्रजनसे प्राय ड्योढ़ी भारी है। और हवामें थोड़ी मात्रामें मिली रहती है। जब हवासे नत्रजन तय्यार की जाती है तो यह गैस नत्रजनमें ही मिली रह जाती है। अतएव उसका गुरुत्व अधिक निकलता है। कहां तोलेके दस हजारवें भागका अन्तर और कहां एक नये मौलिक (गैस) का आविष्कार। यदि रेले महोदय भी इस छोटी सी बातपर ध्यान न देते तो आज हम इस गैससे परिचित न होते। लार्ड रेलेके प्रयोग करने से प्राय. १०० वर्ष पहले केवेण्डिश महोदयने वायुकी नत्रजनके ओषिद् बनाये थे और यह देखा था कि नत्रजन सबकी सब नहीं खप जाती और उसका एक थोड़ा सा भाग बच रहता है। उन्होंने यह अनुमान किया था कि सम्भवत. वायुमें एक और अज्ञात मौलिक मिला हुआ है, पर उन्होंने उसकी परीक्षा नहीं की, अतएव उसके खोज निकालने का यश किसी औरको ही मिला।

वोल्टा महोदयको एक दिन क्या सूझी कि एक ताम्बे और एक जस्तेके टुकड़ेको उठा कर खेल करने लगे। खेलते खेलते उन्होंने उन टुकड़ोंका एक एक छोर तो ज़बानपर रख लिया और दूसरे छोरोंको मिला दिया। मिलाते ही उन्हें एक हलके धक्केका अनुभव हुआ। जब जब स्वतंत्र छोरोंको उन्होंने मिलाया, तब तब यह हल्का धक्का लगा। सहसा उन्हें प्रोफेसर गेलवेनीके प्रयोगकी सुधि उठ आयी, फिर तो उनके हर्षका

पारावार नहीं रहा। कुछ दिन पहले प्रोफेसर गेलवेनीने यह निरीक्षण किया था कि यदि किसी चिरे हुए मेंढकके कटि-प्रदेशकी नसों और टांगकी मांस पेशियोंको एक ऐसे चिमटे-के दो सिरोंसे स्पर्श कराया जाय, जिसके दोनों भाग भिन्न भिन्न धातुओंके बने हों, तो मुर्दा मेंढक फडफ उठता है। इससे पूर्व उन्होंने यह भी देखा था कि विद्युत् यन्त्रोंसे पैदा हुई बिजली भी ऐसी फडकन पैदा कर देती है। अतएव उन्होंने यह सिद्धान्त ठहराया कि चिमटेसे स्पर्श करानेपर जो फड़कन होती है वह मेंढकके शरीरस्थ पशु विद्युत्के कारण होती है। इस सिद्धान्तका विरोध बहुत से वैज्ञानिकोंने किया, जिनमें मुख्य वोल्टा थे। वोल्टा महोदयका कहना था कि धातुनिर्मित चिमटेके सम्पर्कसे बिजली पैदा होती है। उपरोक्त घटना-के पश्चात् उन्हें पूर्णतया स्पष्ट हो गया कि बिजली ताम्बे और धातुके सम्पर्कसे और उनके छोर किसी घोलमें डूबे होनेसे पैदा होता है। इसी सिद्धान्तपर उन्होंने साधारण विद्युत्घटका निर्माण किया।

संसारमें भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहां बहुत अच्छी नील पैदा होती है। यहांसे लाखों मन नील प्रति वर्ष यूरोपको जाया करती थी, पर थोड़े दिनोंसे उसका निर्यात बहुत कम हो गया है। गत युद्धमें निस्सन्देह भारतके भाग जागे और नीलकी खेतीसे लोगोंने फायदा उठाया, पर जान पडता है कि यह बुझते हुए दीपककी आखिरी चमक दमक है। यदि नये नये परिष्कृत-उपायोंका आश्रय-लेकर नीलकी खेती और निर्माण विधि परिमार्जित न की जायगी, भारतीय नीलको भारतमें भी कोई न पूछेगा। रंगरेज जब विलायती कृत्रिम

नीलको न कुछ समयमें तैय्यार कर लेते हैं तो देशी नीलके तैय्यार करनेमें क्यों समय और शक्ति खराब करेंगे।

कृत्रिम नीलके इतिहासमें भी एक अत्यन्त तुच्छ घटनाने चमत्कार कर दिखाया। नकली नील नेपथेलीनसे बनायी जाती है। नेपथेलीन वही सफेद दुर्गंधमय पदार्थ है, जिसकी गोलियां प्लेग कालमें मकानोंमें रखते हैं या कपड़ोंको किसारीके खानेसे बचानेमें काममें लाते हैं। पहले नेपथेलीनसे थैलिक अम्ल बनाते हैं। ऐसा करनेके लिए नेपथेलीनपर गरम और गाढ़े गंधकाम्लकी क्रिया कराते हैं, तथापि परिवर्तन अत्यन्त धीरे धीरे होता है। इस विधिके सुधारनेके उद्देश्यसे जो प्रयोग हो रहे थे, उन्हींमें एक बार एक थरमामीटर (तापमापक) की घुण्डी (Bulb) टूट गई और पारा गरम किये हुए द्रवोंमें जा मिला। पारेने पहुँचते ही परिवर्तनकी गति बढा दी और उसे सुगम बना दिया। कदाचित थरमामीटर न टूटता तो कृत्रिम नील आज दिन बाजारोंमें दिखाई भी न पड़ती।

प्रीस्टली महोदयको गैसोंके बनाने, इकट्ठा करने और उनकी परीक्षा करनेका बड़ा शौक था। एक बार उनके पास एक आतिशी शीशा या ताल आगया। उससे उनको विशेष प्रेम हो गया और उसके स्वत्वका उन्हें बडा अभिमान था। एक दिन उसी तालको लिये लिये वह अपनी प्रयोगशालामें घूम रहे थे और जिस तिस पदार्थपर उसके द्वारा सूर्यकी किरणोंको केन्द्रीभूत करते थे। जब उन्होंने पारद ओषिद पर किरणोंको एकत्रित करके डाला तो उन्हें मालूम हुआ कि उसमेंसे एक प्रकारकी गैस निकलती है। इस प्रकार बच्चोंकी तरह

सिर पैरके खेल करते हुए प्रीस्टलीने उस गैस, ओषजन, का आविष्कार किया जिसके कारण उनका नाम सदा याद रहेगा।

सैकेरीनका आविष्कार भी इसी अद्भुत रीतिसे हुआ। आविष्कर्ता महोदय एक दिन प्रयोगशाला बन्द करनेके कुछ देर पहले अपने कामसे बडे असन्तुष्ट हो रहे थे। चलते चलते उन्होंने उन सब द्रवोंको मिला डिया, जिनसे वह प्रयोग कर रहे थे और इस मिश्रणसे कुछ देर तक खेल करके घर चले गये। घर पहुंच कर हाथ धोये और रोटी खाने लगे। रोटी मीठी लगी। मासपर हाथ बढाया, मास मीठा लगा। जिस चीजको हाथ लगाते थे वही मीठी हो जाती थी। वह बहुत बिगडे और कहने लगे—"आज हमारे साथ अच्छा मजाक हुआ है। सभी चीजों में दिल खोल कर शक्कर डाली गई है।" उनके घरमेंसे कहा गया कि शक्कर नही मिलायी गई है। उनसे यह भी पूछा गया, "आज आपको क्या हो गया है। जो चीजें औरोंको फीकी मालूम होती है आपको मीठी लगती हैं! इसमें क्या रहस्य है।" तब उन्हें खयाल आया कि कहीं उनके हाथों-में मीठे कर देनेकी शक्ति तो नहीं आगई है। हाथको चाटा तो अत्यन्त मीठा पाया। दौडे हुए प्रयोगशाला पहुचे, वहा द्रवोंके मिश्रणको शक्करसे सैकडों गुना अधिक मीठा पाया। फिर तो उन्हें स्पष्ट हो गया कि द्रवोंके मिलानेसे एक नया यौगिक बन गया है। बादमें प्रयोग करके उन्होंने सैकेरीनके बनानेकी ठीक विधि जान ली।

जगद्विख्यात रसायनशास्त्री लीबिगने एक बार एक द्रव बनाया, जो अयोडीनके हरिद्से (Chloride of Iodine) बहुत

"अभी थोडे दिनोंकी बात है कि गर्मियोंकी छुट्टियां होनेके एक दिन पहले पर्किन महोदय अपनी प्रयोगशालामें काम कर रहे थे। चलते चलते सोडियमके कुछ बचे हुये टुकडे उन्होंने एक परखनलीमें डाल दिये, जिसमें अइसोप्रीन नामक द्रव रखा हुआ था। कालेज खुलनेपर उन्होंने देखा कि उस नलीमें एक रबड़ सदृश पदार्थ भरा है। निकाल कर देखा तो रबडके सभी गुण उसमें मोजूद थे। इसी आकस्मिक प्रयोगमें कृत्रिम रबडका जन्म हुआ।

उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं, पर जितने दिये गये हैं पर्याप्त होंगे। उनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि छोटी छोटी घटनाओंका महत्व पूर्ण परिणाम निकल सकता है। अतएव उन्हें उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखकर सदा गम्भीर विचार और परिणाम दर्शितासे काम लेना चाहिये। जान बूझकर आंख बन्द करके चलना न सीखना चाहिये। इसमें सिवा हानिके लाभ नही हो सकता। परमात्माने जो ज्ञानके साधन दिये हैं अवश्य काममें लाने चाहियें।



उज्जनके चमत्कार



ज्जन एक ऐसी गैस है, जिससे विज्ञानकी बारहखडी जानने वाले भी परिचित हैं। विज्ञान पढनेवाले प्राय: इसी गैसको पहले पहल बनाया करते हैं। इसके बनानेकी सहल तरकीब यह है कि एक परखनलिका लेकर, उसमें जस्तेके कुछ टुकडे डालकर, गंधकका कुछ पतला तेजाब डाल दो। देखोगे कि नलिकामेंसे कुछ बुदबुदे बडे आनन्दसे यशदके टुकडोंके आस पाससे निकल निकलकर नृत्य करते हुए तेजाबकी सतह तक आकर गायब हो जाते हैं, हवामें मिल जाते हैं। यदि जलती हुई दियासलाई इस नलिकाके मुहके पास लाई जाय तो थोडी ही देरमें नलिकामें कुछ जलती हुई ज्वालासी दिखाई देगी। यह ज्वाला जलती हुई उज्जनकी है। यह तो उज्जन बनानेकी खेलकी रीति हुई। प्रयोग करनेकेलिए इस वायुको अधिक मात्रामें तय्यार करके वायुबटोंमें इकट्ठा करके रखनेकी विधि विज्ञान भाग ५ सख्या ४ पृष्ठ १५२ परदी हुई है। वहा पर इस वायुके कुछ गुण तथा कुछ चमत्कारोंका वर्णन भी दिया हुआ है। संक्षेपसे इसके गुण यहां गिनाये जाते हैं।

उज्जनके भौतिक तथा रासायनिक गुण

जितनी गैसें मनुष्यको मालूम हैं, उन सबमें यही सबसे ज्यादा हलकी है। हवा इससे लगभग साढ़े चौदह गुनो भारी है। पानीमें यह घुलनशील नहीं है। जलता फतीना दिखानेसे

यह जल उठती है। यदि हवा या ओषजनके साथ यह मिला-कर जलाई जाय तो जोर का धडाका होता है। यदि इस गेस का पान किया जाय तो स्वर बहुत ऊंचा हो जाता है।

उज्जन बनाने की दो नई विधियां

धातुओंको तेजाबोंमें गलानेसे उज्जन पैदा होती है, यह बात पहले बतलाई जा चुकी है। पानीमें भी उज्जन विद्यमान है, यह बात दो प्रकारसे सिद्ध की जा सकती है—सश्लेषणसे अथवा विश्लेषणसे। उज्जनको जलाइये, पानी बन जायगा। पानीमें विद्युद्धाराका प्रवाह कराइये उज्जन और ओषजन पैदा हो जायगी। अतएव पानीसे भी उज्जन निकाल सकते हैं। इसकी एक तरकीब तो अभी बतला चुके हैं, जब विद्युत्प्रवाह तेजाब मिले पानीमें होगा तो धन ध्रुवपर ओषजन और ऋण ध्रुवपर उज्जन निकलने लगेगी। [देखो विज्ञान भाग ७ अङ्क २ पृष्ठ ५६] दूसरी तरकीब यह है कि पानी और धातुओंकी रासायनिक क्रिया कराई जाय। कुछ धातुएं तो ऐसी हैं जो पानीके सम्पर्कमें आतेही पानीमें घुलने लगती हैं और पानीमें-से उज्जन निकलने लगती है। यह धातुएं सोडियम, पोटासियम आदि हैं। कुछ धातुयें ऐसी भी हैं जो गरम पानी या भापके साथ क्रिया करती हैं। इनमें लीथियम, मग्नीसियम, लोहा आदि हैं। यदि उत्तप्त लोहेके ऊपर होकर भाप निकले तो उज्जन बनेगी और लोह ओषिद रह जायगा। यह एक साधारण क्रिया है, जिसकी जब चाहें परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु कमसे कम एक दफा तो यह बड़ी भयानक घटनाका कारण हो चुकी है।

वात भट्टा उड गया

बुलवरहैम्पटन नगरमें लोहे बनानेका वात-भट्टा कुछ दिनसे यथा विधि कामकर रहा था, पर एक दिन अचानक ऐसा धडाका हुआ मानों सैकडों जगह बिजली गिरी हो। और १०० फुट ऊंचे भट्टेके छोटे छोटे टुकडे होकर चारों तरफ दूर दूर तक ऐसे गिरे जैसे ओलोंकी वर्षा होती हो। इन पत्थर और ईंटोंके टुकड़ोंके साथ मट्टी और पिघले लोहेकी वर्षा भी हुई, जिससे आस पासके मकानों और काम करने वालोंको बडी हानि पहुँची।

इस दुर्घटनाका कारण यह था कि 'टौवरसे' सम्बन्ध रखनेवाली एक नालीमें थोडा पानी पहुँच गया था, उधर वात भट्टेके पेंदेमेंसे रिसरिसकर श्वेत उत्तप्त लोहा भी उसी नालीमें पहुँचने लगा। परिणाम यह हुआ कि उत्तप्त लोह और पानीकी क्रियासे उज्जन पैदा हो गई जो वायुके ओषजनके साथ मिलकर बडे जोरके धडाकेके साथ जल उठी। इसी धडाकेसे भट्टीका पेंदा उडगया और उसमें से १००० मन पिघला हुआ लोहा निकल पडा। फिर क्या था, जहा जहां इस ज्वालामयी नदी और पानीकी भेंट हुई वहीं सलामी दगने लगी। पासके कई मकान टूट गये। थोडी दूरपर ही छः आदमी कामकर रहे थे, वह भी धडाकेके वेगसे इधर उधर उडकर जा पडे और धूल मट्टी, कंकड पत्थर और गरमा गरम लोहेके टुकडोंसे दब गये। बेचारे बडी बुरी तरहसे घायल हुए, पर गनीमत इतनी ही थी कि उनकी जान बच गई।

एक जर्मन जंगी जहाज़ का बैलट फट गया

कुछ वर्ष हुए एक जर्मन जंगी जहाजके लिए बैलट तैयार

हा रहा था। एक वैलटमें कुछ कारीगर कामकर रहे थे। उनके पास कुछ जस्ता था। जब यह वैलट तय्यार हो चुका तो कारीगर जस्ता उसीमें छोडकर चले गये। वैलट जहाजपर चढ़ाया गया, उसमें पानी भरकर गरम किया गया और इंजन अपनी मधुर ध्वनि करते हुए चक्कर लगाने लगे। जहाजने बन्दरको छोडकर समुद्रमें प्रवेश किया। उस दिन उसकी परीक्षा होनेवाली थी। जहाजकी चाल देखकर अफ़सर लोग बडे प्रसन्न हो रहे थे कि इतनेमें बिजली गिरनेका सा प्रकाश और शब्द हुआ। जहाज एकदम रुक गया। सारा जहाज भभकती हुई भापसे भरगया और इंजनरूमके प्राय सभी आदमी मर गये। इस घटनाका क्या कारण था, यह किसी की समझमें नहीं आया। जहाज फिर बन्दरमें लाया गया और उसकी मरम्मत होने लगी। कुछ दिन बाद वैलटमें वही जस्तेके टुकडे मिले, तब उस दुर्घट घटनाका सच्चा कारण जान पडा। खौलते हुए पानीमें जस्ता गलने लगता है। अतएव जब पानी वैलटमें खौलने लगा तो जस्ता उसमें गलने लगा और उज्जन पैदा होने लगी। यह उज्जन वैलटमें मोजूद रहनेवाली ओषजनके साथ मिल गयी और इस प्रकार एक विस्फोटक वायुमिश्रण पैदा हो गया। बेचारे काम करनेवालों-को इसका बिलकुल पता भी नहीं था, कि थोडी देरमें इस स्फोटक मिश्रणके स्फोटनसे वैलट फट जायगा। जिन मिस्त्रियों ने जस्ता उस वैलटमें छोड दिया था, उन बेचारों के खयालमें भी यह बात नहीं आयी थी, कि इस तुच्छ घटनाका परिणाम इतना भयानक होगा और उनकी जरा सी भूलसे उनके इतने निर्दोष भाइयोंकी जान जायगी।

दियासलाईकी नगडदादी उज्जन वत्ती

उज्जन ज्वलनार्ह पदार्थ है, परन्तु इसको जलायें कैसे। आजकल तो दियासलाईसे जला सकते हैं; पहले जमानेमें तो दियासलाई होती न थी। उस जमानेमें प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें आग दबा कर रखता था। जब आवश्यकता होती थी, घास फुस रख कर फूका और ज्वाला उत्पन्न कर लिया करते थे। उसीसे अपने लम्प दीपक आदि जला लिया करते थे परन्तु डोबेरीनर महोदय ने (१७८०—१८४६) जो एक जर्मन रसायनज्ञथे, उज्जनके एक अद्भुत गुणकी परीक्षा की। उन्होंने यह मालुम किया कि यदि बहुत बारीक प्लाटीनम* पर उज्जन वायुकी बहुत बारीक धारा टकर खाती है तो गरमी पैदा होती है और उज्जन जल उठती है। उज्जनका यही गुण वह उज्जन वत्तीके बनाने में काममें लाये। उज्जन वत्तीको हम आधुनिक दियासलाई-की नगडदादी कह सकते हैं।

रसायनज्ञोंकी दृष्टिमें उज्जनका महत्त्व

उज्जन उन सब पदार्थोंसे जो पृथ्वीपर मिलते हैं हलकी होती है। [अनुमान किया जाता है कि सूर्य आदि सितारोंमें एक उज्जनसे भी हलका पदार्थ विद्यमान है, जिसे कोरोनियम नाम दिया गया है।] अतएव रासायनिक नाप तौलमें उज्जन-

*यह पदार्थ पहले भारत वर्षमें निकाला जाता था, पर प्राय: फेंक दिया जाता था। जो लोग नदियोंकी रेतको धोकर सोना निकालते थे, उन्हें कभी कभी केवल सफेद रवे मिला करते थे, इस पदार्थको वह सफेद सोना कहा करते थे और इसका उपयोग न जाननेसे इसे फेंक दिया करते थे। यही सफेद सोना प्लाटीनम था।

को ही प्रमाण पदार्थ मानते हैं। इसका गुरुत्व १ मान कर समस्त पदार्थों का वाष्प गुरुत्व (वायवीय दशामें गुरुत्व) निकालते हैं। इसीके परमाणुका भार एक मान कर समस्त मौलिकोंका परमाणु भार निकालते हैं। इसीकी युयुत्सा एक मानते हैं, इसकी योग शक्ति एक है। इसमें और भी कई विलक्षणताए हैं, जिनका यहां वर्णन करना रुचिकर न होगा।

प्रोट (Pront) ने पहले पहल मौलिकोंके परमाणु भारोंकी परीक्षा की, तो उन्हें पता चला कि परमाणु भार प्रदर्शक संख्याए प्राय: पूर्णाङ्क होती हैं। इस निरीक्षणसे उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि परमाणु भारोंमें जो पूर्णाङ्कोंसे अधिकता या न्यूनता है वह प्रयोगोंकी भूलके कारण है और वास्तवमें परमाणु भार पूर्णाङ्क होने चाहियें। इसका कारण उन्होंने यह ठहराया कि उज्जन ही मूलप्रकृति है। उसीसे समस्त मौलिकों की उत्पत्ति हुई है। मौलिकोंके परमाणु, उज्जनके परमाणुओंके सग्रह मात्र हैं। अतएव जब उज्जनका परमाणुभार एक माना जायगा, तो अन्य मौलिकोंकी परमाणु भार सूचक संख्याए आप ही पूर्णांक होंगी।

इस सिद्धान्तका विरोध बड़े जोरके साथ हुआ। स्टास, ड्यूमा, मेरिग्नेक आदिने मौलिकोंके परमाणु भार बड़ी होशियारीके साथ ठीक ठीक निकाले और यह सिद्ध किया कि वह पूर्णांक नहीं हैं। प्रौटने जो मान लिया था कि पूर्णांकोंसे परमाणु भारोंका अन्तर, प्रायोगिक अशुद्धियों और त्रुटियोंके कारण होता है, ऐसा मानना न्याय संगत नहीं है, क्योंकि प्रयोगोंमें इतनी अधिक भूलका होना असंभव है। उदाहरण—यदि क्लोरीन (हरिद) का परमाणु भार ३५.५ है तो इसमें ३५की

भूल होना असमव है। यदि उसका परमाणु भार ३५.° निकलता; तो शायद यह मान भी लेते कि वास्तवमें परमाणु भार ३५ है। इस प्रकार प्रौटके प्रोटैल (मूल प्रकृति) वादका अन्त हुआ। पर थाडे दिनों से फिर वैज्ञानिक ससार एक नये प्रोटैल वाद-को मानने लगा है, जिसमें उज्जनका स्थान विद्युत् कणोंने ले लिया है। अब यह माना जाता है कि विद्युत्कणोंकी भिन्न भिन्न सख्याओंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे रचना करके एकत्रित हो जानेसे ही भिन्न भिन्न मूल तत्वों की उत्पत्ति हुई है।

उज्जनकी द्रवावस्था

जिस प्रकार अन्य गैसें ठडक पहुचाने और दबाव डालने-से द्रव हो जाती हैं, उसी प्रकार उज्जन भी द्रव रूपमें परिणत की जा सकती है। बहुत दिनों तक वैज्ञानिकों का यह ख्याल बना रहा कि उज्जन उन गैसोंमेंसे है जो द्रवी भूत नहीं हो सकती। ऐसी गैसों को स्थायी (Permanent) गैस कहते थे। परन्तु १८८४ में ओलज्यूस्कीने द्रव उज्जन तय्यार करके इस विचार को निर्मूल सिद्ध कर दिया। ओलज्यूस्की केवल थोडा सा द्रव तय्यार कर सका था और वह भी थोडी देरके लिए; परन्तु देवरने बहुत सी द्रव उज्जन तय्यार कर डाली और उससे परीक्षाऐं भी कीं। द्रव उज्जनका तापक्रम – २५२°श होता है। बरफके तापक्रमसे भी २५२°श कम नीचे। यह तापक्रम केवल शून्यसे २१°श ऊचा है। शून्य का तापक्रम तो महा-प्रलय का तापक्रम समझना चाहिये। उस तापक्रमपर पदार्थ-में पूर्ण निस्तब्धता आ जाती है। अणुओंकी गति रुक जाती है और पदार्थके गुणों में अद्भुत परिवर्तन आ जाता है। तेज-से तेज तेजाब इस तापक्रमपर पानीसे भी अधिक निष्क्रिय हो

जाते हैं। द्रव उज्जन पानीकी तरह निर्मल और स्वच्छ होती है। हां, इसको शीतलता प्रचण्ड दावानलसे भी अधिक दाहक है। तुलसीदासजी, ने जब यह लिखा कि शीतल सिख भी दाहक प्रतीत हुई, उस समय उनको केवल शून्य के आस पास के तापक्रमोंके विषयमें कुछ नहीं मालूम था। जिस बातको उन्होंने अस्वाभाविक बतलानेकी कोशिश की, वह वस्तुत. स्वाभाविक है। यदि द्रव उज्जनकी एक बूंद किसी अंगपर डाल दी जाय तो त्वचा और रुधिर जमकर पत्थर हो जांय और उसी प्रकारका घाव हो जाय जैसा गरम गरम लोहेके स्पर्श करनेसे होता है। द्रव उज्जन पानीसे १४ गुनी अधिक हलकी होती है। इसमें काग, लकड़ी और तेल उसी भाँति डूब जाते हैं जैसे पानीमें पारा या सीसा। इस द्रवको यदि जल्दी जल्दी उड़ाया जाय तो वह स्वयम् ठोस हो जाता है और तापक्रम-२५६° श तक कम हो जाता है। द्रव उज्जनको बड़ी तेजीसे वाष्पमें परिणत करने से हीलियम गैसको द्रवीभूत किया गया है, जो ४ ५° केवल पर उबलती है। द्रव हीलियमको अपने आप उड़ने से ३°श केवल तक तापक्रम घटा सकते हैं। इस प्रकार द्रव उज्जनने केवल तापक्रमके शून्य अर्थात् महाप्रलयके तापक्रमका कुछ अनुभव प्राप्त होने का द्वार खोल दिया है। जिन सूर्य सम्प्रदायोंके सूर्य ज्योतिहीन हो गये हैं, उनके ग्रहों और उपग्रहोंका तापक्रम केवल शून्य है। वायु मण्डलके बाहर यदि हम जा सकें तो प्राय यही तापक्रम हमको मिलेगा। यदि सूर्य भगवान, ज्योति तथा ताप देना बन्द कर दें तो हमारे पृथ्वी मण्डल की भी यही दशा हो जाय।

उज्जनकी अद्भुत व्यापकता

यहां पर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उज्जन कहां कहा और किस किस रूपमें पायी जाती है। वायुमण्डलमें थोडी बहुत उज्जन सदैव रहती है। यह वायुमण्डलमें आती कहांसे है? सुनिये, आपके उच्छ्वासमें उज्जन रहती है। जो गैसें मिट्टीके तेलके कुओं और ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे निकलती रहती हैं, उनमें उज्जनका कुछ अंश रहता है। पौधोंकी उच्छ्वासमें भी उज्जन रहती है। किसी किसी खानमेंसे भी उज्जन निकला करती है। जर्मनी प्रदेशान्तर्गत स्टासफर्टकी पोटाशकी खानोंमेंसे भी यह गैस निकलती रहती है। कभी कभी तो उक्त खानमें कारनेलैटकी तहोंमेंसे बिलकुल शुद्ध उज्जन बडे वेगसे निकलने लगता है। अनन्त देशमें भी उज्जन व्याप रही है। अतएव जैसे जैसे सूर्य भगवान अपनी सम्प्रदाय सहित नोमील फी सैकण्डके वेगसे न मालूम किस लक्ष्यसे दौड लगाते हुए आगे बढते हैं, उक्त उज्जनमेंसे थोडी सी पृथ्वीके वायुमण्डलमें भी खिच आती है।

ऊपर जितने उज्जनके निर्गम स्थान बतलाये हैं, उन सबसे आई हुई उज्जन यदि वायुमण्डलमें ही रहती तो अबतक उसकी खासी मिकदार इकट्ठी हो जाती, परन्तु ऐसा नहीं होने पाता। इसका कारण? जब जब बिजली चमकती है, कुछ उज्जन ओषजनसे सयोग कर पानीमें परिणत हो जाती है। दूसरे पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक नहीं है कि उज्जनको वायुमण्डलमें ही रख सके। इसलिए उज्जन वायुमण्डलमेंसे निकल निकलकर अनन्त देशमें विचरने लगती है।

जाते हैं। द्रव उज्जन पानीकी तरह निर्मल और स्वच्छ होती है। हां, इसकी शीतलता प्रचण्ड दावानलसे भी अधिक दाहक है। तुलसीदासजी, ने जब यह लिखा कि शीतल सिख भी दाहक प्रतीत हुई, उस समय उनको केवल शून्य के आस पास के तापक्रमोंके विषयमें कुछ नहीं मालूम था। जिस बातको उन्होंने अस्वाभाविक बतलानेकी कोशिश की, वह वस्तुत. स्वाभाविक है। यदि द्रव उज्जनकी एक बूंद किसी अंगपर डाल दी जाय तो त्वचा और रुधिर जमकर पत्थर हो जांय और उसी प्रकारका घाव हो जाय जैसा गरम गरम लोहेके स्पर्श करनेसे होता है। द्रव उज्जन पानीसे १४ गुनी अधिक हलकी होती है। उसमें काग, लकडी और तेल उसी भाँति डूब जाते हैं जैसे पानीमें पारा या सीसा। इस द्रवकोयदि जल्दी जल्दी उड़ाया जाय तो वह स्वयम् ठोस हो जाता है और तापक्रम-२५९° श तक कम हो जाता है। द्रव उज्जनको बड़ी तेजीसे वाष्पमें परिणत करने से हीलियम गैसको द्रवीभूत किया गया है, जो ४ ५° केवल पर उबलती है। द्रव हीलियमको अपने आप उड़ने से ३°श केवल तक तापक्रम घटा सकते हैं। इस प्रकार द्रव उज्जनने केवल तापक्रमके शून्य अर्थात् महाप्रलयके तापक्रमका कुछ अनुभव प्राप्त होने का द्वार खोल दिया है। जिन सूर्य सम्प्रदायोंके सूर्य ज्योतिहीन हो गये हैं, उनके ग्रहों और उपग्रहोंका तापक्रम केवल शून्य है। वायु मण्डलके बाहर यदि हम जा सकें तो प्राय. यही तापक्रम हमको मिलेगा। यदि सूर्य भगवान, ज्योति तथा ताप देना बन्द कर दें तो हमारे पृथ्वी मण्डल की भी यही दशा हो जाय।

यहां पर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उज्जन कहां कहां और किस किस रूपमें पायी जाती है। वायुमण्डलमें थोड़ी बहुत उज्जन सदैव रहती है। यह वायुमण्डलमें आती कहांसे है? सुनिये, आपके उच्छ्वासमें उज्जन रहती है। जो गैसें मिट्टीके तेलके कुओं और ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे निकलती रहती हैं, उनमें उज्जनका कुछ अंश रहता है। पौधोंकी उच्छ्वासमें भी उज्जन रहती है। किसी किसी खानमेंसे भी उज्जन निकला करती है। जर्मनी प्रदेशान्तर्गत स्टासफर्टकी पोटाशकी खानोंमेंसे भी यह गैस निकलती रहती है। कभी कभी तो उक्त खानमें कारनेलैटकी तहोंमेंसे बिलकुल शुद्ध उज्जन बड़े वेगसे निकलने लगती है। अनन्त देशमें भी उज्जन व्याप रही है। अतएव जैसे जैसे सूर्य भगवान अपनी सम्प्रदाय सहित नौमील फी सैकण्डके वेगसे न मालूम किस लक्ष्यसे दौड़ लगाते हुए आगे बढ़ते हैं, उक्त उज्जनमेंसे थोड़ी सी पृथ्वीके वायुमण्डलमें भी खिंच आती है।

ऊपर जितने उज्जनके निर्गम स्थान बतलाये हैं, उन सबसे आई हुई उज्जन यदि वायुमण्डलमें ही रहती तो अबतक उसकी खासी मिकदार इकट्ठी हो जाती, परन्तु ऐसा नहीं होने पाता। इसका कारण? जब जब बिजली चमकती है, कुछ उज्जन ओषजनसे संयोग कर पानीमें परिणत हो जाती है। दूसरे पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक नहीं है कि उज्जनको वायुमण्डलमें ही रख सके। इसलिए उज्जन वायुमण्डलमेंसे निकल निकलकर अनन्त देशमें विचरने लगती है।

अंश था उसमें उज्जन अवश्य होगी। यह भी सम्भव है कि उज्जन आकाशमें से ही इस उल्काने सोखली हो। एक बात और भी हो सकती है कि उल्का केवल आकाशीय धूल कणोंके एकत्रित होनेसे बन गया हो और यह उज्जन आकाश व्यापिनी उज्जनमेंसे हो आई हो। असली बातका पता लगाना कठिन है, परन्तु इतना निश्चय है कि पृथ्वी मण्डलके बाहर भी उज्जन मौजूद है।

उज्जन मय आदि, मध्य और अवसान

सबसे नये अर्थात् सबसे अधिक गरम, तारों में प्राय उज्जन ही उज्जन पाई जाती है! अन्य गैसोंका बहुत कम अंश रहता है। ज्यों ज्यों तारे ठंडे होते जाते हैं उनमें पदार्थोंके चिन्ह भी पाये जाने लगते हैं। किसी तारेका एक या दस बीस मनुष्य-जीवनकी अवधिमें इतना ठंडा हो जाना सम्भव नहीं, परन्तु आकाश विहारी तारोंकी परीक्षा करनेसे उन्हें हम एक विकाश क्रमसे विभाजित कर सकते हैं, और यह अनुमान कर सकते हैं कि विकाशके आरम्भसे लेकर भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें तारोंका रूप परिवर्तन किस नियमसे हुआ होगा। इन तारोंका जीवन इतना दीर्घ होता है कि मनुष्यकी कल्पनासे परे है। सम्भव है इन तारोंपर हमारे ग्रहकी नाईं हजारों क्या लाखों बार विज्ञानकला सम्पन्न जातियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार हो चुका हो या होनेवाला हो।

ताराकी उत्पत्ति नीहारिकाओंसे, जो उज्जन प्रधान वायवीय पिण्ड होते हैं, होती है। उनका अन्त कैसे होता है? या तो जब तारे बिलकुल ठण्डे होकर ज्योतिहीन हो जाते हैं, या ऐसे दो या अधिक ज्योतिहीन पिण्ड आपसमें टकरा जाते

हैं। टक्करके वेगसे असीम उत्ताप प्रकट होता है और प्रायः दोनों पिंड उत्तप्त होकर वापिस लौट जाते हैं। इनकी टक्करका फल स्वरूप एक नया ब्रह्मांड बीचमें पैदा हो जाता है। यह नीहारिका होता है। एक तो यह विधि है, जिससे नये ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति होती है और मृत पिण्डोंको जीवन दान मिल जाता है। दूसरी एक और विधि है, जिसमें कोई पिंड सहसा जल उठता है, उसमें बड़े जोरका धड़ाका होता है और वह वाष्पमें परिणत हो इधर उधर बिखर जाता है।* यह घटना आकाशमें ज्योतिषियोंने अनेक बार देखी है। प्रतिवर्ष ऐसे अस्थायी तथा अपने आपको जलाकर भस्मकर देनेवाले तारे दीखा करते हैं। प्राय ज्योतिषी स्वय इस महाप्रलयका दृश्य अपनी आखों देखते ह पर छाया चित्रों द्वारा ही इनका ठीक पता चलता है। इन अस्थायी तारों पर एक विस्तृत लेख [विज्ञान भाग ५ पृष्ठ २६६ तथा, भाग ६ पृष्ठ ४३] निकल चुका है। इसलिए यहां केवल एक घटनाका उल्लेख किया जाता है। परसियस नक्षत्रमें एक तारा कुछ दिन हुए दिखलाई दिया। कुछ दिनमें वह आकाशस्थ समस्त तारोंसे अधिक प्रकाशमान हो गया। परन्तु २४ घण्टे बाद ही वह धीमा पडने लगा, उसका रश्मिचित्र बदलने लगा और अन्त में नीहारिका सा हो गया। इससे अनुमान किया जाता है कि परमाणुविक स्फोटन या फटन हुआ। छायाचित्रोंकी परीक्षासे पता चला कि इसमेंसे छोटे छोटे नीहारिकानत पिंड निकल निकलकर प्रकाशके वेगसे चारों ओर

* इन दोनों सिद्धान्तों को विस्तारसे पढ़ना हो तो विज्ञान भाग ६ पृष्ठ ४५ पर पढ़ लीजिये।

बिखर गये। इस प्रकार एक सच्ची महाप्रलयके देखनेका सौभाग्य कुछ ज्योतिषियोंको प्राप्त हुआ।

तारोंका जन्म नीहारिकाओंसे होता है और अन्त भी नीहारिकाओंके रूपमें परिणत होकर होता है। जबतक तारे स्थिर रहते हैं तबतक उनमें उज्जन आदि बहुतसे पदार्थ पाये जाते हैं। इस भांति हम कह सकते हैं कि तारोंका आदि, मध्य और अवसान उज्जनमय होता है। आदिमें उज्जन ही उज्जन रहती है, वह ही सम्भवतः अनेक रूप धारण कर लेती है, और अन्तमें फिर उज्जन ही उज्जन रह जाती है। यही अनीन्द्रिक विकाशवाद है।

व्योम विहरण

पाठक वृन्द! इस लेखकने पृथ्वीसे लेकर करोड़ों मीलकी दूरीपर स्थित तारों तककी खबर ली, परन्तु यह न सोचा कि मनुष्य वायुमण्डलमें ही कितनी दूर जा सकता है। विज्ञानकी कोई भी शाखा इतनी साहस पूर्ण और शोकजनक घटनाओंसे परिपूरित ना होगी, जितना कि व्योम-विहरणका इतिहास है। परीक्षा करने वालों और प्रयोगकर्ताओंने जितना निस्वार्थ, सत्य प्रियता और आत्मत्याग तथा मृत्युका दार्शनिक निरादर इसकला की पुष्टि और परवृद्धिमें दिखलाया है, उतना कहीं और देखनेमें नहीं आता।

पर स्मरण रहे कि इस कलाकी सफलता मुख्यत. उज्जनकी बदौलत हुई। यह सबसे अधिक हलकी गैस है। इसका एक घन गज डेढ सेर बोझको पृथ्वी परसे उठा सकता है। पहले पहल इसका प्रयोग बैलूनमें प्रोफेसर चार्ल्सने फ्रांसमें १८४० वि० में किया था। बैलून बहुत ऊंचे चढ सकते हैं।

१८६१ वि० में (Guy Lussac) गैलुसेक २३००० फीट ऊंचा, १६०७ वि० में बेरल और विक्सिस (Barral and Bixis) २४००० फीट चढ़े और १८६२ वि० में ग्लैशर और कोक्सवेल (Glaisher and Coxwell) ३७००० फीट तक चढ़े। इतनी ज्यादा ऊंचाई तक अभी वायुयान नहीं चढ़ सके हैं। अन्तिम उड़ान का पूरा विवरण विज्ञान भाग ८ पृष्ठ १६५ पर "अद्भुत व्योम विहरण" शीर्षक लेखमें दिया गया है।

एकसे दो भले



यह एक साधारण कहावत है कि एकसे दो भले होते हैं। जब कभी आदमी किसी काममें हाथ डालता है, उसे एक संगी, साथी या सलाहकारकी प्रायः आवश्यकता पड़ा करती है। इस संसारमें बहुत कम ऐसी वीरात्माएँ होती हैं, जो अपने ही भरोसे, बिना दूसरेका सहारा ढूंढे, संसार यात्रा करनेके योग्य होती हैं। पर देखा जाय तो उन्हें भी अपनी आत्मा अथवा परमात्माका अवलम्ब लेना पड़ता है। जहां दो साथी होते हैं तहां एककी कमी दूसरा पूरी कर देता है। यही संग साथका सबसे बड़ा लाभ है।

वैज्ञानिक ससारमें भी इस महान नियमके अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रत्येक मौलिकके कुछ निजके गुण हुआ करते हैं, जैसे कठोरता, वर्धन शीलता, गुरुत्व द्रवणशीलता आदि। अतएव गुणोंपर विचार करके ही हम पदार्थोंका उपयोग करते हैं। जो पदार्थ जिस कामके उपयुक्त जॅचता है उसे उसी काममें लाते हैं। सोनेकी खड्ग, चांदीकी कटार, प्लाटिनमके चाकू, सोडियमकी छुरी, पोटासियमकी कढाई, रेडियमकी अगूठी, न आजतक बनी है, न कभी बनेंगी। शमशीर हिन्दके लिए इस्पात ही काम आवेगी और अगूठियोंके लिए सोना या चादी। पर प्राय ऐसा होता है कि हमारे किसी खास कामके लिए किसी एक पदार्थमें सब गुण पाये जाते है, पर कोई न कोई अवगुण या कमी भी उसमें निकल आती है। जब ऐसी समस्या आकर उपस्थित होती है तब उपरोक्त कहावत ही चारितार्थ होती है कि एक से दो भले। इसीके कुछ उदाहरण पाठकोंके विनोदार्थ यहां देते है।

लोहा बहुत ही सस्ता पदार्थ है, जो सब जगह मिलता है और आसानीसे बनाया जा सकता है। इसलिए लोहेसे अनादि कालसे नित्यके जीवनमें काम आनेवाली चीजें बनायी जाती हैं। तवा, कढाई, कलछी, चिमटे इत्यादि लोहेके बनते हैं। पर लोहा नरम होता है, इसलिए तलवार, बन्दूक, भाले, कटार, हथौडे इत्यादि चीजें जिनमें सख्ती चाहिये, लोहेकी नहीं बनायी जाती हैं। यहां काला कोयला, जो स्वयम् लोहे से बहुत कम कडा होता है, लोहेके आड़े आता है और उसे कठोरता प्रदान कर देता है।

इस्पात या फौलाद वास्तवमें साधारण लोहा होता है, जिसमें सौ भागमें एक हिस्सा कोयलेका रहता है। इसी कोयलेके तुच्छ परिमाण की बदौलत फोलादके इतने प्रशस्त गुण होते हैं।

लोहेमें एक और भी कमी है। जहा उसे हवा लगी और पानी पडा कि मुरचेने उसे खाना शुरू किया। जो लोहेकी चीजें बनती हैं, उन्हें इसीलिए किसी तरकीबसे बचानेका प्रयत्न किया जाता है। जो बहुत बडी चीजें हैं, जैसे पुल, रेलके अजन और जहाज, उनपर तो रोगन कर देनेसे काम चल जाता है। सिंदूर या अलुमिनियमकी बुकनी अलसीके तेलमें मिलाई और पोत दी। ग्रेफाइट (पत्थरके कोयलेका एक रूपान्तर) भी कहीं कहीं काममें आता है, पर छोटी छोटी रोजके कामकी चीजों पर आये दिन रोगन करना न आसान ही है, न अच्छा ही। आपको पानी रखनेके लिए एक वर्तन चाहिये। सबसे सस्ती धातु लोहा है। आपने वर्तन लोहेका बना लिया। पानी धीरे धीरे लोहेको खाने लगेगा। थोड़े दिनोंमें उसमें छेद हो जायँगे। लोहेकी रक्षा करना इसलिए आवश्यक है।

अब यदि आप इसपर रोगन करते हैं तो पानी न पीनेके कामका रहेगा न नहानेके कामका। इसीलिए वैज्ञानिकोंने एक और तरकीब निकाली। उन्होंने लोहेपर अन्य ऐसी धातोंका चढाना शुरू किया जिन्हें नम हवा नहीं खाती। ऐसी धातुएँ रांग और जस्ता है। यह दोनों ही सुगमतासे पिघल जाती हैं। इसीलिए पिघली हुई धातुमें डोब दे देने भरसे धातु लोहेपर चढ जाती है। रांग या टीन चढे हुए लोहेकी चद्दरके मामूली मट्टीके तेलके पीपे होते हैं, जिन्हें हम भ्रमवश टीनके पीपे कहते

हैं। जस्ता चढी हुई लोहेकी चद्दरकी बालटियां, पानीके नल, कोठियां, टंकियां, इत्यादि होती हैं।

पाठकोंको मालूम होगया होगा कि जिस पीपेको वह टीनका समझते थे वास्तवमें वह लोहेका बना होता है। सच है कि संसारमें चीजें जैसी ऊपरसे दीखती हैं वैसी असलियतमें नहीं होतीं। सीनेकी सुइयां, कागज टांकनेके आलपीन भी प्राय ऊपरसे चमकती हुई साफ सफेद धातुके बने हुए दिखाई पड़ते हैं। किन्तु यदि हम उनकी ऊपरकी तह खुरच डालें तो मालूम हो जायगा कि वह भी लोहेके बने होते हैं। आलपीन पीतलके भी बनाये जाते हैं। पीतलके ऊपर टीनकी तह रहती है। यह तह आलपीनोंको पिघली हुई टीन या रांगमें डुबोकर नहीं चढाते, प्रत्युत् एक अनोखी रोचक विधि से चढ़ाते हैं। आप थोडा सा तूतिया पानीमें घोललें और घोलमें कोई लोहेकी चीज डाल दें, तो थोडी देरमें लोहेपर तांबा चढ़ जायगा। पुराने ज़माने के रसायनके भक्त इसी प्रयोगसे यह सिद्ध किया करते थे कि लोहा तांबेमें तबदील हो जाता है, पर आजकल हम जानते हैं कि शनैः शनैः लोहा घुलता जाता है और तांबा चढता जाता है। इसी प्रकारकी एक तरकीबसे आलपीनोंपर टीन चढाई जाती है। टीनका एक घोल तय्यार किया जाता है और उसमें पीतलके आलपीन छोड़ दिये जाते हैं।

एक धातुपर दूसरी धातु चढानेका आजकल एक और भी तरीका निकल आया है। वह यह है कि जिस धातुको चढ़ाना होता है उसका एक विशेष प्रकारका घोल तय्यार कर लिया जाता है। उस घोलमें एक ओर तो धातुकी एक

तख़्ती लटका दी जाती है और दूसरी ओर वह चीज लटका देते हैं जिसपर धातु चढ़ानी होती है। तदनन्तर किसी बाटरी-के छोर इन दोनोंसे तार द्वारा जोड़ देते हैं। बिजलीकी धारा बहनेसे धातु चढ़ जाती है। (जिस चीज पर धातु चढ़ानी होती है उसको सदा बाटरीके ऋण पटसे जोड़ते हैं।) इस तरकीबसे आजकल सैकड़ों चीजोंपर निकिल, सोना, चांदी चढ़ाया करते हैं।

बाइसिकिलके कल पुर्जे, ताले, कबजे, कड़े इत्यादि चीजों-पर निकिलका मुलम्मा कर देते हैं। डिबियों, तश्तरियों, खिलौनोंपर भी निकिलका मुलम्मा रहता है, रसोईके बर्तनों पर टीन का मुलम्मा रहता है, जिसे कलई कहते हैं। चमचों और प्यालोंपर भी कलई कर देते हैं, किन्तु चान्दी चढ़ा देना अधिक उचित होता है। चम्मच और कांटे ब्रिटेनिया धातु अथवा जर्मन सिल्वरके होते हैं। ब्रिटेनिया मेटेल तो टीन और सुरमेका धातु मिश्रण होता है, पर जर्मन सिल्वरमें तांबा, जस्ता और निकिल रहता है। इनपर चान्दी चढ़ा देनेसे अम्लोंका प्रभाव नहीं पड़ता।

कलई कर देना अथवा मुलम्मा चढ़ा देना एक धातुकी कमीको दूसरीसे ढककर पूरे कर देनेकी विधि है। जहां ऊपर-की तह उतरी कि अन्दरकी धातुके सब ऐब निकल आये। यह दशा वेष-भूषा-मात्रके जेंटिलमेनोंकी सी है। "उघरे अन्त न होइ निबाहू।" मुरादाबादी गिलासों, कटोरियों और थालियों-की जो दशा महीने दो महीने बरतनेके बाद हो जाती है, वह सभीको मालूम है। गिलटकी तश्तरियोंमें जब कोढ़सा चूने लगता है, लाल लाल धब्बे पड़ने लगते हैं, तब कैसा घृणित

दृश्य होता है। अब कलईको छोड एक दूसरी विधिपर विचार करना उचित है, जिसमें किसी धातुके अवगुण विशेष निकाल देनेके लिए किसी दूसरी उपयुक्त धातुको लेते हैं और गलाकर दोनोंको एक मेल कर देते हैं। इस विधिका सबसे साधारण और सरल उदाहरण पीतलका है। ताम्बेके बरतन खाने बनानेके काम नहीं आ सकते। वह खानेको जहरीला कर देते हैं। ताम्बा मुलायम भी बहुत होता है और जल्दी घिस जाता है। उसके बर्तन पिचक जाते हैं और भद्दे हो जाते हैं। जस्ता बहुत जल्द अम्लोंमें गल जाता है। पीतलमें यह दोनों अवगुण बहुत घट जाते हैं। साथ ही साथ कड़ापन आ जाता है।

पैसे, पाई, अधन्ने तांबेके बने कहे जाते हैं, परन्तु वास्तवमें शुद्ध तांबेके नहीं होते, क्योंकि तांबा बहुत जल्दी घिस जाता है। तांबेमें ५ प्रतिशत मुलायम टीन मिला देनेसे महान परिवर्तन हो जाता है। जो धातु-मिश्रण इस भांति तय्यार होता है वह तांबेसे कहीं ज्यादा कड़ा होता है।

सोने, चांदीका भी यही हाल है। इन धातुओंके सिक्के या जेवर बनाये जाय तो उपयुक्त कठोरता न होनेके कारण न तो उन पर बढिया काम हो सकता है और न रोजमर्राके इस्तेमालके लायक होते हैं। इसीलिए उनमें सदैव तांबा मिला दिया जाता है। गिनीमें २२ कैरटका सोना रहता है। अर्थात् उसके प्रत्येक २४ भागमें २ भाग तांबेके रहते हैं।

इसी प्रकार अलुमिनियमको अधिक कठोर बनानेके लिए उसमें २% मेगनीसियम मिला देते हैं। इस धातुमिश्रणको मगनेलियम कहते हैं।

ऊपर जितने उदाहरण दिये हैं उनमें प्रायः धातु मिश्रण बनानेका एक मात्र लाभ कठोरता बढ़ा देना है। पर यह न समझना चाहिये कि केवल इसी एक गुणके लिए धातु-मिश्रणोंकी कदर की जाती है। नीचे कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं, जिनमें अन्य गुणोंके लिए धातुमिश्रणोंकी रचना की जाती है।

बाटरीमें शुद्ध जस्ता और ताम्बा काम आता था। पर शुद्ध जस्ता बड़ा महँगा पड़ता था। इसलिए मामूली जस्तेको लेकर, गंधकके तेजाबसे साफ कर लेते हैं और पारा चढ़ा देते हैं। पारा जस्तेके साथ मिलकर एक मिश्रण बना लेता है, जो शुद्ध जस्तेकी नाईं ही बाटरीमें काम देता रहता है।

धातुके तारोंकी बाधा तापक्रमके अनुसार बदलती रहती है। इस कारण प्रमाण-बाधाएँ बनानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी, क्योंकि जहाँ तापक्रममें जरा भी अन्तर होता था कि बाधामें भी अन्तर हो जाता था। आजकल कई धातु मिश्रण ऐसे मिल गये हैं जिनकी बाधा तापक्रमके बहुत अन्तर हो जाने-से भी नहीं बदलती। ऐसा एक पदार्थ मैंगेनिन है, जिसकी बाधा ०°श से ४०°श तक उतनी ही बनी रहती है। इस पदार्थमें ८४ भाग ताम्बेके, १२ मैंगेनीजके और ४ निकिलके होते हैं।

हम जानते हैं कि बरफका द्रवण विन्दु ०°श है, किन्तु नमकका घोल ०°श पर नहीं जमता या गलता। जितनी मात्रा नमककी अधिक होगी, उतना ही द्रवणविन्दु कम हो जायगा। २३ प्रति शत नमक मिला देनेसे द्रवणविन्दु २३ ६°श हो जाता है। इसी भाँति जब एक धातु दूसरीमें गला दी जाती है तो दोनोंका द्रवणविन्दु कम हो जाता है। यहाँ जिस धातुकी

मात्रा अधिक होती है वह घोलक और जिसकी कम होती है वह घुलित कहाती है। किसी धातुको लीजिये, उसमें कोई दूसरी धातु गलाइये और शनै शनैः उसकी मात्रा बढ़ाते जाइये। द्रवणविन्दु घटता चला जायगा और एक न्यूनतम स्थान तक द्रवणविन्दु घट जायगा। तदनन्तर यदि घुलित धातुकी मात्रा बढादें तो द्रवणविन्दु बढने लगेगा। यदि मात्रा इतनी अधिक बढ़ादें कि पहली धातुकी मात्रा उसके सामने न कुछ हो जाय तो द्रवणविन्दु दूसरी धातुका हो जायगा।

सारांश यह कि धातु मिश्रणका द्रवणविन्दु धातुओंसे कम होता है। इसका सबसे साधारण उदाहरण टांका है। टांकेमें राँग और सीसा रहता है। रांगका द्रवणविन्दु ४४०°श और सीसेका ६१७°श है, किन्तु टांका ३७४° पर ही पिघल जाता है। जब चार चार धातुओंको मिलाकर धातु-मिश्रण बनाये जाते हैं, तब तो द्रवण विन्दु और भी कम हो जाता है। एक पदार्थ है जिसे वुड्स फ्यूसिबिल एलोय (Woods' fusible alloy), अर्थात् वुड महोदयका आविष्कृत द्रवणशील धातुमिश्रण, कहते हैं। वह ६५°श पर पिघल जाता है। इसका यों अनुमान लगाइये कि यदि इसकी देगची बनाकर पानी खौलाना चाहें, तो पानीके खौलनेके बहुत पहले ही वह पानी होकर बह जायगी। इस पदार्थमें बिस्मिथके ४, सीसेके २, राँगका १ और कादमियमका १ भाग होता है। इसके द्रवणविन्दुका मिलान इसके घटकोंके द्रवणविन्दुओंसे कीजिये तो बडा आश्चर्य होगा। रांग और सीसा तो ४४०°श और ६१७°श पर पिघलते हैं, पर बिस्मिथ और कादमियम भी (५१४°श और ६०८°श पर) कम तापक्रमों पर नहीं पिघलते।

इन द्रवणशील धातु-मिश्रणोंका उपयोग व्यापारमें बहुत होता है। फायर-एलारमों अथवा आगसूचकोंमें इस धातु-मिश्रणका प्रयोग होता है। एक बिजलीकी घण्टीमें इसके बने हुए तारसे एक कील कस देते हैं। जब आग लगती है तो तार थोड़ी गरमी पाकर पिघल जाता है और कील गिरते ही घण्टी बजने लगती है। इसी प्रकार पंखों और लम्पोंके साथ भी (फ्यूज) लगा देते हैं, जो आवश्यकतासे अधिक धारा पहुँचनेमें गल जाते हैं और धाराका बहना बन्द कर देते हैं। स्प्रिंकलर्समें भी यही धातुमिश्रण काम आते हैं। बडे बडे गोदामोंमें जगह जगह पानी छिडकनेके स्प्रिंकलर्स लगे होते हैं। उनके मुंह द्रवणशील धातु मिश्रणसे बन्द रहते हैं। गरमी पाकर धातुमिश्रण गल जाता है और पानी निकलना आरम्भ हो जाता है और आग बुझ जानेकी बहुत कुछ सम्भावना रहती है।

धातुमिश्रणोंका रङ्ग भी अजीब होता है। चाँदी और जस्तेसे गुलाबी, सोने और एलुमिनियमसे बैंजनी, ताम्बे और अलुमिनियमसे सुनहरी, तांबे और जस्तेसे पीला धातु-मिश्रण बनता है।

जिस प्रकार स्वर्गलोकसे गङ्गा जब आईं तो शङ्करने ही उनका वेग सम्भाला, इसी प्रकार तेज मिजाज फ्लोरीनकी उत्पत्तिके समय एक इरीडियम और प्लाटिनमके धातु मिश्रणके ही बरतन बनाये गये थे।

हम देख चुके हैं कि मनुष्यको सगी साथीकी आवश्यकता पडती है और उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। धातोंमें भी ।

यह बात पाई जाती है। ईश्वरको भी सृष्टिके लिए प्रकृतिकी उपेक्षा रहती है। अतएव "एक से दो भले" वाली कहावत अक्षरस. सत्य है।

'का कह तोहि पुकारूँ ?'

कर्वन द्विओषिद के रहस्यपूर्ण चमत्कार ।



लियस सीजरके कत्ल किये जाने के बाद जब मार्क एंटोनीने अपने दोस्तके खून का बदला लेनेके इरादे से रोमके निवासियोंके सामने वह ओजस्वनी वक्तृता, वह पुरजोर तकरीर दी जो इतिहास में विख्यात है और उनके दिलों में जगह करली तो क्लिओपेट्राने भी यही मसलहत समझी कि एंटोनीसे मित्रता करे और उसे अपने हुस्नका गुलाम बनाले। वह इस अभीष्टमें कितनी कृतकार्य हुई यह सभी इतिहासज्ञ जानते हैं। हम सारी प्रेम कहानी सुनाना नहीं चाहते। केवल प्रेमियोंकी पहली भेंटके अवसर पर जो एक घटना हुई उसका उल्लेख करना चाहते हैं। क्लिओपेटराने अपना वैभव और विलास प्रियता दिखलाने के लिये एक जाममें शराब भरकर उसमें कुछ मोतियोंको गलाया और एंटोनीको प्याला पेश किया।

इतिहासकार के लिए तो इतना लिखना काफी है पर वैज्ञानिकको अधिक विस्तृत वृत्तान्तकी अपेक्षा है। यद्यपि वह

पर्याप्त नहीं है तथापि वैज्ञानिक ज्ञान चक्षु से उस सुदूर काल में घटित घटनाको आज ऐसी स्पष्ट रीतिसे देख सकता है मानों उसके आंखों के सामने हो रही है। वह दावेके साथ कह सकता है कि मोतियाको शरावमें छोड़नेके समय शरावमें एक उफान सा आया होगा, जो प्रेमियोंकी उमगोंका, मनके भावोंका, दिलोंके जोश और जजबातका नमूना होगा। या यों कहिये कि जिसने बतला दिया कि परिवर्तनशील संसारमें मायावी मोह उतना ही क्षण भङ्गुर और अपायी है जितना इस शरावका जोश। रूप लावण्यके मदसे मतवालो, होश सम्भालो, चेतो, यह यौवन मोतियाकी आवकी तरह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। वायुके बुलबुलों की तरह गायब हो अनन्तमें समा जायगा।

शरावका जोष कमहोने पर मोतियोंके वेघुले हुए टुकडोंके आस पाससे हवाके कुछ बुलबुले निकल कर इठलाते नृत्य दिखाते प्यालेके ऊपर तक आ गायब हो जाते होंगे। यह प्रयोग पाठक आप भी घर पर कर सकते हैं। थोडासा आम चूर लेकर पानी में कुछ देरतक भिगो दीजिये। तदनन्तर छान कर कांचके साफ गिलासमें भर लीजिये और खड़िया या संगमरमरके कुछ छोटे छोटे टुकडे डाल दीजिये। आप देखेंगे कि पहले एक उफान सा आता है जो धीरे धीरे शान्त हो जाता है और अन्तमें उन टुकडों के आस पाससे वायुके बुलबुले आनन्द पूर्वक निकलते हैं और अपना तमाशा दिखाते हुए अनन्त वायुमें जा मिलते हैं।

जो गैस इस प्रकार बनती है उसीका नाम कर्बन द्विओषिद है। यह गैस हमारी उच्छ्वासमें रहती है। इस बातकी

परीक्षा भी सुगमतासे की जा सकती है। एक गिलासमें निथ
हुआ चूनेका साफ पानी रखिये और किसी निगालीके ए
सिरे को उसमें डुबो कर दूसरे सिरेसे फू किये। थोडी देर
पानी दूधिया हो जायगा। हम हर समय शुद्ध वायु अन्द
खींचते रहते हैं और कर्वन द्विओषिद मिश्रित वायु बाह
निकालते रहते हैं। यही कर्वन द्विओषिद चूनेके साफ पानी
को गदला कर देती है। यहां पर एक बात और बतला देन
आवश्यक है जिसका काम आगे चल कर पडेगा। वह यह
कि यदि निगालीसे आप फूकते ही रहें तो जो गदलापन पहले
पैदा होगा वह गायब हो जायगा और चूनेका पानी फिरसे
स्वच्छ और निर्मल हो जायगा। इसका कारण यह है कि
कर्वन द्विओषिद पानीमें घुलकर कर्वनिक अम्ल बना लेती
है। यही घुले हुए चूनेके साथ मिलकर खड़िया बना लेता है
जिस कारण एक बुकनी सी पैदा होकर पानी गदला हो
जाता है। जब चूनेकी खडिया बन चुकने पर अम्ल खडिया
को घुलाने लगता है और, जो पर्याप्त मात्रा में हुआ तो, पानी
को साफ कर देता है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वह इस बातको
याद रखें कि जिस पानीमें कर्वन द्विओषिद घुला रहता है वह
खडियाको घुला सकता है, शुद्ध पानीमें खड़िया अनघुल है।

प्रत्येक गृहस्थके घरमें प्रति दिन लकड़ी और कोयले
जलते हैं और अन्त में बचती है एक मुट्ठी भर राख। इस
प्रकार प्रतिदिन संसारमें करोड़ों मन ईंधन जल जाता है और
मुश्किल से उसका दसवां भाग राखके रूपमें बच रहता है।
धुएकी गाडी उडती चली जाती है। यह न जाने कितना
कोयला स्वाहा कर जाती है। दुनियाके कारखानों में भी न

मालूम कितना कोयला गायब हो जाता है। प्रतिदिन स्टेशनों-परसे सैकडों गाडियां कोयलेकी भरी निकलती हैं, बडे बडे स्टेशनों पर देखिये तो कोयलेके पहाडसे चिने रहते हैं। जहाजोंमें कोठेके कोठे कोयलेके भर कर बन्दर से रवाना होते हैं, पर सफर खतम होनेतक सब खाली हो जाते हैं। प्रति वर्ष लगभग ३० अरब मन कोयला जलाया जाता है। लकडी-का तो पता ही चलाना मुश्किल है। प्रश्न यह है कि कोयला और लकडी जाते कहा हैं ? क्या जलकर इनका अन्त हो जाता है और यह गायब हो जाते हैं ?

सायसने इस बातकी बहुत खोज और परख की है और यह मालूम किया है कि पदार्थका नाश नहीं हो सकता । दुनियाकी कोई चीज मिटती नहीं, सिर्फ उसकी शकल बदल जाती है। कोयला भी जलकर आंखोंसे ओझल होजाता है, पर सच पूछिये तो वह न दिखलाई देनेवाली एक गैसमें बदल कर हवामें जा मिलता है। यह वही गैस है जिसकी चर्चा हम आज कर रहे हैं। इसका नाम हम आपको बतला चुके हैं कि कर्बन द्विओषिद है।

अद्भुत चक्र

कोयला जलता है। इसका क्या अर्थ, इसका क्या मतलब ? रसायन शास्त्री, कीमियागर, आपको बतलायेगा कि कोयला हवाके एक हिस्से ओषजनके साथ मिलकर एक मुरक्कब, यौगिक, बना लेता है, जिसे कर्बन द्विओषिद कहते हैं। इस यौगिकके, इस गैसके, बननेमें ही गरमी पैदा होती है, जिससे हम काम लेते हैं। यौगिक हवामें जा मिलता है। हवामें से इसे पौधे पीलेते हैं और बढ़ते हैं। पौधोंको या फलों

को पशु पक्षी खाते हैं। इस तरह कोयलेका अंश उनके शरीरों में जा पहुंचता, है या दरख्तोंके धरतीमें गिरकर दब जानेसे पत्थरका कोयला बन जाता है। इस भांति फिर कोयलका कोयला होजाता है। उधर जो कोयला पशु पक्षियों के जिस्मों में जा पहुंचता है वह भी हर सांसके साथ थोडा थोडा करके बाहर निकलता है, जिसकी जांच करनेकी तरकीब हम ऊपर लिख आये हैं। सच पूछिये तो हम भी कोयले की तरह जल रहे हैं, पर जलते है बहुत ही आहिस्ता आहिस्ता। यही वजह है कि जलनेमें और सांस लेनेमें कर्बन डिओषिद बनता है। इंजनोंमें कोयला झोंका जाता है और हमारी जठराग्नि (पेट की आग) में रसीला भोजन। पर काम दोनोंका एक ही है— गरमी पैदा करना और मशीन चलाना।

जब कभी सोडा, लेमनेड, रसभरी, आदिकी बोतलें खोली जाती है, तो यही गैस आपके शौककी दाद देनेके लिए बडे जोरसे बाहर निकल पडती है। या यों कहिये कि दर्वाज़ा खुलते ही, जिस तरह कैद खानेसे कैदी निकल भागते हैं, डाट खुलनेसे गैस हवा हो जाती है। शकर अंगूर या महुएसे, लाहन डाल कर, जब शराब बनाते है तब भी यही गैस पैदा होती है। इसीके पैदा होनेसे शराब बनानेके मटकों या नादोंमें झागसे दिखाई देते हैं। जहां जहां चीजें सडती है या उनमें खमीर उठता है, तहा यह गैस अवश्य रहती है।

सारांश यह है कि दरख्तों या जानवरोंके तनों या जिस्मों के जलने, सडने और गलनेसे यह गैस पैदा होती है। यही संगमरमर या चूनेके पत्थरके तपाने या तेजाबमें गलानेसे पैदा होती है। इसी वजहसे यह हवामें मौजूद रहती है।

अब इसकी गुप्त गाथा भी सुन लीजिये। यह एक ऐसी गैस है कि आंखसे देखी नहीं जा सकती है—अदृश्य है। इसमें रंग नहीं होता। यह पानीमें घुल जाती है और जिस पानीमें यह घुली रहती है उसमें खड़िया घुलने लग जाती है। यह चूनेके साफ पानीको गदला कर देती है। इस गैसमें बत्ती जलती नहीं रह सकती। यदि किसी बरतनमें यह गैस भर ली जाय और उसमें जलता फलीता या मोम बत्ती रख दी जाय, तो फौरन बुझ जाय। इसी तरह यदि उस बरतनमें कोई जानवर रख दिया जाय तो फौरन दम घुटकर मर जाय।



चित्र २७—वायुघट में गैस भरी है। जलती हुई मोमबत्ती पर गैस को उड़ेलकर बत्ती बुझाई जा सकती है।



चित्र २८—गैस भरे घटमें से गैस उड़ेलकर दूसरे घटमें भर सकते हैं। खाली घटकी वायु निकल जायगी और उसमें गैस भर जायगी।

यह गैस हवासे भारी होती है, इसीलिए यह पानीकी तरह उड़ेली जा सकती है। किसी बरतनमें इस गैसको इकट्ठा कर लीजिये, फिर बरतनको जलती हुई बत्ती पर इस तरह

थामिये जैसे पानी उड़ेलते है, तो आप देखेंगे कि बत्ती बुझ जाती है। हवासे भारी होनेके कारण ही यह अंधे कुओंमें या उन कुओंमें जो कम चलते है, खत्तियोंमें और पुराने तहखानों में जमा हो जाती है। इसीसे अकसर पुराने तहखानोंमें या कुओंमें जो लोग बे अहतयातीसे चले जाते है वह बेहोश हो जाते हैं और कभी कभी जान तक खो बैठते है। ऐसी कोई वारदात हो जाने पर गांवोंके सोधे सादे लोग समझने लगते हैं कि उनमें भूत रहते हैं।

एक बार मेरे एक दोस्त, जो एक गांवमें रहते है, आये और कहने लगे कि भाई तुम वडी सायस छोंका करते हो, लो एक सच्ची आंखोंकी देखी बात हम तुम्हें सुनाते हैं, फिर देखें तुम्हारी सायस कहां काम देती है। एक दिन कुछ लडके खेलते हुए गांवके बाहर चले गये। वहां उनकी गेंद एक अंधे कुएमें जा गिरी। कुएके बारेमें यह मशहूर था कि उसमें भूत रहता है। इसीलिए, गो कुआ पाच छ॰ हाथसे ज्यादा गहरा न होगा और उसमें सीढी लगी है, किसीकी हिम्मत न हुई कि उसमें उतर जाय और गेंद उठा लाये। इतनेमें वहां जयदेव और सुखदेव दोनों भाई आ पहुँचे। सुखदेव आगरेमें रह आया है और समाजी खयालातका आदमी है। उसने लडकों को हिम्मत दिलायी और उनसे कहा कि कुएमें उतर कर गेंद निकाल लाओ, पर डरके मारे उतरता कौन? इसलिए सुखदेव खुद उतरा, पर ज्योंही वह गेंद उठानेको झुका कि झट बेहोश होकर गिर पडा। यह देख जयदेवने आस पासके खेतोंमें काम करनेवाले दो एक आदमियोंको बुलाया और खुद हनुमानजीका ध्यान धर कुएमें उतर कर सुख-

देवको उठा दिया और झट पट बाहर निकल आया। आध घटे तक उस पर पानी छिड़का, हवाकी, उसके हाथ पैर ऊपर नीचे किये, तब कहीं उसे होश आया, नहीं तो वह मर चुका था। जयदेव तो कहता था कि वह दमसाधकर कुएमें घुसा था, इससे वह बच गया, पर हम तो यही जानते हैं कि हनुमानजीने सहायता की, नहीं तो सब नमस्ते निकल जाती।

मैंने अपने मित्रसे कहा, "आपके गावमें जब खत्ती खोली जाती हैं तो दो तीन दिन तो वैसेही खुली रहने देते हैं और फिर जलता हुआ फूस नीचे उतारते हैं, तब नीचे उतरते हैं या योंही एकदम खत्ती खोलकर उसमें घुस जाते हैं?" उन्होंने कहा, "नहीं, एकदम नहीं घुसते।" मैंने पूछा, "अंधे कुओंको जब साफ कराते हैं तो उतरनेके पहले, खाली चरस क्यों चलाते हैं और उसे इस प्रकार क्यों उलटते हैं जैसे पानी भरा हो? इसी प्रकार तहखानोंमें भी उतरनेके पहले पूरा एहतियात क्यों करलेते हैं?" इन बातोंका वह कुछ उत्तर न दे सके तब मैंने उन्हें ऊपर दी हुई बातें बतलाईं और समझाया—

"कर्बन द्विओषिद हवासे भारी होनेके कारण गुफाओं, गड्ढों, तहखानों अंधे कुआं आदिमें भर जाती है। इसमें प्रवेश करनेसे आदमी दम घुटकर मर जाता है। आपके गांवके सुखदेव ने शीघ्रीसे उतरनेमें और कुएमें रहनेमें देर लगायी। इसीसे वह बेहोश होकर गिर पड़े। यदि खूब सांस भर कर और दम साधकर वह उतरते, जैसा जयदेवने किया, तो कुछ हानि नहीं पहुँचती। खत्तियों और अंधेकुओंमें भी जलता हुआ फूस इसीलिए उतारते हैं कि उनमें की हवा गरम होकर ऊपर उठने लगे और उसकी जगह साफ हवा पहुँच जाय। खाली चरस

चलानेका भी यही अभिप्राय है। चरसमें हवा रहती है, जब वह कुएमें फांस दिया जाता है तो भारी गैस उसमें भरने लगती है और उसकी हलकी हवा कुएमें फैल जाती है। इसी लिए बाहर खींचे जानेपर उसमें गैस भर आती है, जो चरम मेंसे पानीकी तरह उडेल दी जाती है। चरसमें फिर साफ हवा भर जाती है, जो उसके फासे जाने पर कुएमें रह जाती है। इस तरह कई बार करनेसे सब गैस निकाल ली जाती है और साफ हवा भरदी जाती है।

मेरे मित्रकी समझमें बात बैठ गयी। उन्होंने इस लेखमें दी हुई और और बातें बडे शौकसे सुनीं।

मौतकी घाटी

ससारमें बहुत से ऐसे स्थान ह, जिन्हें हम 'मौतकी घाटी' या "मौतके गड्ढे" कह सकते हैं। यह अकसर गड्ढे या नीचे स्थान होते हैं, जिनमें न जानवर जाते हैं और न आदमी, क्यों- कि उनमें जाते ही प्राण पखेरू उड जाता है। बात यह है कि उनके पेंदोंमें बहुत छोटे छोटे बारीक छेद होते हैं, जिनमेंसे कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है और निचाव होनेके कारण उसी प्रकार जमा हो जाता है जैसे पानी। इन सबमें बहुत मशहूर जगह जावाकी 'मौतकी घाटी (Valley of Death in Java) है। यह एक अंधेरी, गहरी और पेडोंसे घिरी हुई घाटी है और असलमें एक पुराने ज्वालामुखीका मुख है। जो मनुष्य और पशु इसकी छाया और ठंडकके लालचसे उतर जाते हैं, वह अकसर दम घुट जानेसे मर जाते हैं, पर कभी कभी आदमी बेधडके उसमें उतर जाते हैं। इसकी वजह यह है कि कर्बन द्विओषिद उसमें बारहों महीने नहीं निकलता

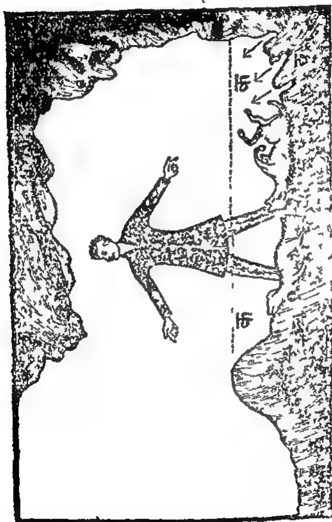
रहता। जब कभी उसका निकलना बन्द हो जाता है, तो दस पाच दिनोंमें घाटीकी हवा साफ हो जाती है, पर जब गैस निकलने लगती है, तो उसमें उतरनेमें बडी जोखिम होती है।

पश्चिमी अमेरिकामें एक ऐसी ही घाटी है, जिसका नाम, 'डेथ गल्च' (Death Gulch) है।

लाचर सी (Lacher See) के आस पासके जगलमें एक नीची जगह है, जिसमें कर्बन दिओषिद सदा भरा रहता है। जो चिडिया या कीडे मकोडे उड कर उसमें घुस जाते हैं फौरन ही मर जाते हैं। थोडे दिनका जिक है कि डाक्टर क्रेटन (Dr Creighton) अपनी लडकी और बांगोके साथ उस जगलमें सैर कर रहे थे कि जोरकी आधी और मेहसे घिर गये। वह वहीं पर एक टूटे फूटे मकानमें बचावके लिए जा खडे हुए। थोडी ही देरमें एक औरत दौडी हुयी आयी और कहने लगी कि मेरा महबूब नीचे गिर गया है और शायद उसके चोट भी लगी है, क्याकि वह बातोंका जबाब नहीं देता। पादरी साहब उसको मदद करनेके लिए उसके साथ हो लिये और उन्होंने जाकर देखा कि एक तहखानेमें कई सीढ़ी नीचे वह आदमी पडा हुआ है। उन्होंने सिर अन्दरको डाला तो दम घुटने लगा, इससे वह समझ गये कि कर्बन द्विओषिद भरा हुआ है और वह सास भर कर और दम साधकर नीचे उतर गये और उसे उठा लाये। पर अफसोस, बहुत देर हो चुकी थी और वह मर चुका था।

ऐसे स्थान अकसर ज्वालामुखियोंके आसपास ही पाये जाते हैं, चाहे ज्वालामुखी मुर्दा हो या जिन्दा। लाचर सी खुद एक मुर्दा अग्निशिखाका दहाना है, जिसमें पानी भर गया

है। नेपिल्समें भी एक गड्ढा है, जिसके पेंदेमेंसे कर्बन द्विओषिद बराबर निकलता रहता है और दो तीन फुट तक भरा रहता है। इसीलिए अगर कोई छोटा जानवर कुत्ता, भेड या



चित्र २९—ग, छिद्र जिनमें से कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है। क, क तक द्विओषिद भरा रहता है।

बकरी उसमें चला जाता है तो मर जाता है। आदमी उसमें जा सकता है, पर खडे रहनेमें ही खैरियत है। जहां बैठा या लेटा

कि दूसरी दुनियामें पहुँचा। इस गड्ढेका नाम इसीलिए, 'ग्रोटो डेल-केन' (Grotto del Cano) पड गया है।

ज्वाला मुखी पहाड और कर्बन द्विओषिद

ज्वालामुखी पर्वतोंके खुले हुए मुखोंमेंसे कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है और जब वह अपनी तेजी दिखलाते हैं तब तो इतना द्विओषिद निकलता है कि हजारों लाखों पशु, पक्षी और अन्य प्राणी दम घुटकर मर जाते हैं। स १८८३ में आइस लेण्डके एक ज्वाला मुखी (Skaptu Gokul) से इतनी ज्याद जहरीली गैस निकली (इसमें कर्बन द्विओषिद और गंधक द्विओषिद दोनों मिले हुए होंगे) कि एकदम भरमें ९००० आदमी, ११००० मवेशी, २८००० घोडे और १९०००० भेड़ दम घुटकर मर गईं।

जमीनमें से यह गैस निकला करती है

एक एकड़ खाद दी हुई धरतीसे साल भरमें डेढ सौ मनसे अधिक कर्बन द्विओषिद निकलता है। इसका कारण यह है कि धरतीमेंके जैव पदार्थोंकी ओषजनके साथ रासायनिक क्रिया होती है और उसका परिणाम रूप द्विओषिद पैदा हो-जाता है।

डा० हिल (Dr Leonard Hill) ने इस सम्बधमें एक व्याख्यानमें कहा था —

"धरतीमें ओषिदीकरण* बराबर जारी रहता है। इसी कारण कुओं और खदानोंकी वायुमें ओषजनकी मात्रा घटती

* पदार्थोंका ओषजनके साथ मिलकर नये पदार्थ बना लेना।

रहता है और कर्बन द्विओषिद बनता रहता है। सोनामक्खी का (लोहे और गंधकका यौगिक) जो अंश धरतीमें रहता है उससे हीरा कसीस और गंधक द्विओषिद बन जाता है। गंधक द्विओषिद पानीमें घुलकर गंधकाम्ल बन जाता है, जो ओषजनसे मिलकर गंधकाम्लमें परिणत होजाता है। गंधकाम्ल चूनेके पत्थरको गलाने और कर्बन द्विओषिद निकलकर वायुमे मिलने लगता है। खानियोंमें हर एक मिनटमें २००० से ५००० घन फुटतक कर्बन द्विओषिद बनता रहता है। इसीके बननेके कारण यहां गरमी पैदा होती रहती है।"

यह एक और कारण है जिससे पुराने कुओं, सुरंगों और खानियोंमें कर्बन द्विओषिद इकट्ठा होजाता है। साधारण लोग इनमे जानेसे डरा करते हैं और डरना उचित भी है। पर जो लोग साहस करके चले जाते हैं, वह कभी कभी, यदि कर्बन द्विओषिद उनमें भरा हुआ हो तो बड़ा धोखा खा जाते हैं। सुरंग आदिमें जानेके पहिले उनकी परीक्षा करलेनी चाहिये, जिसकी आसान तर्कीब यह है कि एक लम्बे बांसके सिरे पर मोमबत्ती जलाकर जमा दो और बांसको सुरंग में डालो। यदि बत्ती जलती रहे तो कोई डरकी बात नहीं है, क्योंकि कर्बन द्विओषिदके अधिक परिमाणमें होनेसे बत्ती बुझ जाती है।

कर्बन द्विओषिद वायुमें कहां से आता है?

हम यह बतला चुके हैं कि जानदार चीजोंके गलने, सड़ने, और जलनेमे कर्बन द्विओषिद पैदा होता है। जमीनमें जो वानस्पतिक अथवा पाशव पदार्थोंके अंश रहते हैं वह भी धीरे धीरे वायुके ओषजनके साथ मिलकर कर्बन द्विओषिद

बनाते रहते हैं। मनुष्यकी श्वासमें भी कर्बन द्विओषिद् रहता है। इन सब कारणोंसे कर्बन द्विओषिद् वायु में पहुँचता रहता है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि श्वासमें कर्बन द्विओषिद् कहांसे आ जाता है और प्रति दिन कितना पैदा होता है और अन्तमें कहा चला जाता है।

मरनेका सबसे बडा चिन्ह क्या है? गरमी का न होना। जिस देहमें गरमी नहीं है वह मुरदा है। गरमी और जीवनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है कि जिस दिलमें गरमी (जोश) न हो वह दिल भी मुर्दा समझा जाता है। परन्तु शरीरमें गरमी कैसे उत्पन्न होती है। वेदमें लिखा है कि यज्ञसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यज्ञसे ही सृष्टिकी स्थित है और यज्ञसे ही इसका लय होगा। मनुष्यके जीवनके विषयमें भी यह कथन अक्षरशः सत्य है। जठराग्निमे नित्य अन्नकी आहुति देनी पडती है, एक बारही नहीं बल्कि कई बार। इसके अतिरिक्त प्रति पलमी एक और हवन होता रहता है, जिसके किये बिना किसी मनुष्यका कुछ मिनटों तक ही जीना हो सकता है। वह हवन है प्राणका अपानमें और अपानका प्राणमें—

'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणः॥

इन दो यज्ञों द्वारा ही जीवनकी स्थिति है। इन्हीं दो यज्ञोंमें जो गरमी पैदा होती है उसीके आश्रित जीवन है। हिन्दुओंके प्रत्येक काममें यज्ञ अवश्य होता है। वास्तवमें हम सब बडे कट्टर हिन्दू हैं। हम देख चुके हैं कि प्रत्येक श्वासमें एक प्रकारका हवन होता है, शरीरका मल जो रुधिरके सचारके कारण फेफडोंमें आकर जमा हो जाता है, उसीको प्रतिक्षण

रहता है और कर्बन द्विओषिद बनता रहता है। सोनामक्खी का (लोहे और गंधकका यौगिक) जो अंश धरतीमें रहता है उससे हीरा कसीस और गंधक द्विओषिद बन जाता है। गंधक द्विओषिद पानीमें घुलकर गंधकाम्ल बन जाता है, जो ओषजनसे मिलकर गंधकाम्लमें परिणत होजाता है। गंधकाम्ल चूनेके पत्थरको गलाने और कर्बन द्विओषिद निकलकर वायुमें मिलने लगता है। खानियोंमें हर एक मिनटमें २००० से ५००० घन फुटतक कर्बन द्विओषिद बनता रहता है। इसीके बननेके कारण यहां गरमी पैदा होती रहती है।"

यह एक और कारण है जिससे पुराने कुओं, सुरगों और खानियोंमें कर्बन द्विओषिद इकट्ठा होजाता है। साधारण लोग इनमें जानेसे डरा करते हैं और डरना उचित भी है। पर जो लोग साहस करके चले जाते हैं, वह कभी कभी, यदि कर्बन द्विओषिद उनमें भरा हुआ हो तो बड़ा धोखा खा जाते हैं। सुरग आदिमें जानेके पहिले उनकी परीक्षा करलेनी चाहिये, जिसकी आसान तर्कीब यह है कि एक लम्बे बांसके सिरे पर मोमबत्ती जलाकर जमा दो और बांसको सुरग में डालो। यदि बत्ती जलती रहे तो कोई डरकी बात नहीं है, क्योंकि कर्बन द्विओषिदके अधिक परिमाणमें होनेसे बत्ती बुझ जाती है।

कर्बन द्विओषिद वायुमें कहां से आता है?

हम यह बतला चुके हैं कि जानदार चीजोंके गलने, सड़ने, और जलनेमें कर्बन द्विओषिद पैदा होता है। जमीनमें जो वानस्पतिक अथवा पाशव पदार्थोंके अंश रहते हैं वह भी धीरे धीरे वायुके ओषजनके साथ मिलकर कर्बन द्विओषिद

बनाते रहते ह। मनुष्यकी श्वासमें भी कर्बन द्विओषिद् रहता है। इन सब कारणोंसे कर्बन द्विओषिद वायु में पहुँचता रहता है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि श्वासमें कर्बन द्विओषिद् कहांसे आ जाता है और प्रति दिन कितना पैदा होता है और अन्तमें कहां चला जाता है।

मरनेका सबसे बडा चिन्ह क्या है ? गरमी का न होना। जिस देहमें गरमी नहीं है वह मुरदा है। गरमी और जीवनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है कि जिस दिलमें गरमी (जोश) न हो वह दिल भी मुर्दा समझा जाता है। परन्तु शरीरमें गरमी कैसे उत्पन्न होती है। वेदमें लिखा है कि यज्ञसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यज्ञसे ही सृष्टिकी स्थित है और यज्ञसे ही इसका लय होगा। मनुष्यके जीवनके विषयमें भी यह कथन अक्षरश सत्य है। जठराग्निमें नित्य अन्नकी आहुति देनी पडती है, एक बारही नहीं बल्कि कई बार। इसके अतिरिक्त प्रति पलभी एक ओर हवन होता रहता है, जिसके किये बिना किसी मनुष्यका कुछ मिनटों तक ही जीना हो सकता है। वह हवन है प्राणका अपानमे और अपानका प्राणमें—

'अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपान तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायण ॥

इन दो यज्ञों द्वारा ही जीवनकी स्थिति है। इन्हीं दो यज्ञोंमें जो गरमी पैदा होती हे उसीके आश्रित जीवन है। हिन्दुओंके प्रत्येक काममें यज्ञ अवश्य होता है। वास्तवमें हम सब बडे कट्टर हिन्दू हैं। हम देख चुके है कि प्रत्येक श्वासमें एक प्रकारका हवन होता है, शरीरका मल जो रुधिरके सञ्चारके कारण फेंफडोंमें आकर जमा हो जाता है, उसीको प्रतिक्षण

हम, श्वास कर्ममें जलाया करते हैं। उसीकी भेंट हम वायु देवके देहमें प्रवेश करने पर चढ़ाते हैं। वायुदेव अग्निका रूप धारण कर उसे अंगीकार करते हैं और स्वयम् कर्बन द्विओषिद बन कर फिर बाहर निकल आते हैं। बिना बलिदान किये कोई काम सिद्ध नहीं होता। जहां हमने हाथ हिलाया, गर्दन हिलायी, या पैर फैलाये कि दो चार प्राणियोंकी बलि देनी पड़ी। यदि आप दौड़ने लगे तब तो प्रति मिनट सैकड़ों प्राणियोंका बलिदान होने लगा। यह प्राणी हैं आप के शरीरकी ईंटें, जिन्हें वैज्ञानिक कोष अथवा सेल कहते हैं। इन्हीं सेलोंके लाखोंके परिमाणमें मिलने से शरीर बनता है। यही बराबर टूट टूट कर, छिन्न भिन्न होकर, अपना शरीर न्यौछावर करके आपको काम करनेकी शक्ति प्रदान करते हैं। रुधिरकी धाराओंके साथ जो ओषजन शरीरमें चक्कर लगाया करती है वही इन मृत सेलोंको भस्म करता रहती है। इसी लिए जब आप दौड़ लगाते हैं तो बहुत सी सैल टूटने लगती हैं और इसीसे अधिक ओषजनकी आवश्यकता पड़ती है। सांस फूल आता है और आप थक जाते हैं। कदाचित् आप उस समय वायुकी जगह शुद्ध ओषजन पान करने लगें तो दम बिलकुल न फूले। पर स्मरण रहे कि दौड़ लगानेसे शरीर को दोनों अवस्थाओंमें बराबर हानि उठानी पड़ेगी।

साधारणतः वायुके १०००० भागमें ३ भाग कर्बन द्विओषिद के रहते हैं। सभा मण्डपों या समाज मन्दिरोंमें १०००० भाग-में ५० भाग तक इसका परिमाण बढ़ जाता है। जब तक कि १०००० भागमें इसका परिणाम ३०० तक नहीं हो जाता तब तक तो सांस लेनेवालोंको पता भी नहीं चलता, परन्तु

इतनी मात्रा बढ जाने पर जोरसे सिरमें दर्द होने लगता है। जो कहीं इससे भी अधिक मात्रा बढी, तो सांस फूलने लगता है और शरीरमें शिथिलता आने लगती है। जब १०० भाग वायुमें २५ या अधिक भाग कर्बन द्विओषिदके होते हें तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है।

निकाली हुई प्रश्वासमें प्राय. १०० भागमें ५ भाग कर्बन द्विओषिदके रहते हैं, पर यदि बहुत देर तक सांस रोककर निकाली जाय तो मात्रा १० या १२ प्रतिशत हो जाती है।

हम ऊपर बतला आये हैं कि वास्तवमें जितनी जानदार चीजें हैं—पेड क्या, पशु क्या और मनुष्य क्या—सभी धीरे धीरे जल रही हैं। जिस दिन यह जागती जोत बुझती है उसी दिन जीवनका अन्त हो जाता है। इस जोतसे जो गरमी पैदा होती है, उसीसे जिन्दगी कायम रहती है। अब जरा सोचिये कि पेड, पशु, पक्षी और मनुष्य आदि प्राणी श्वासोच्छ्वास क्रियामें नित्य कितनी कर्बन द्विओषिद गैस बना डालते हैं। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि एक दिन रातमें प्रत्येक मनुष्य लगभग सेर भर कर्बन द्विओषिद बना डालता है। यदि मनुष्य सत्तर बरस जीता रहा तो लगभग ६०० मन कर्बन द्विओषिद पैदा कर देगा। ससारके सब मनुष्य प्रति दिन दो करोड अस्सी लाखमन (२८००००००) कर्बन द्विओषिद बना डालते हैं। अब जरा इन बातों पर भी गौर कीजिये कि पेड, पशु, पक्षियों और अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यकी सख्या कितनी कम है। यह सब मिला कर प्रतिदिन कितनी कर्बन द्विओषिद पैदा कर देते हैं। दूसरे सृष्टिके आदिसे, करोडों वर्षोंके जमानेमें, जितने प्राणी हुए हैं उन्होंने कितनी गैस बना डाली होगी।

दूसरे ज्वालामुखी आजकल तो बहुत कम हैं। सृष्टिके आदिमें तो पृथ्वीपर पग पगपर ज्वालामुखी थे, उनमें से जो कर्बन द्विओषिद हज़ारों वर्षों तक निकलता रहा वह कहां गायब हो गया? आज कलके जमानेमें तो लगभग ३० अरब मन पत्थरका कोयला ही प्रतिवर्ष जलाया जाता है, जिससे लगभग १ खरब मन कर्बन द्विओषिद पैदा हो जाता है। कोयला, घास फूस, लकड़ी, इत्यादि जो चीजें जलती हैं, उनका तो हिसाब लगाना ही कठिन है। फिर जरा सोचिये कि सब मिलाकर कितना कर्बन द्विओषिद पैदा होता है। इस हिसाबसे तो वायुकी ओषजन थोड़े दिनकी ही मेहमान होनी चाहिये थी और कर्बन द्विओषिदकी असीम मात्रा वायु मण्डलमें होनी चाहिये थी। तो फिर आजकल १००००० भाग वायुमें कर्बन द्विओषिदके केवल ३ भाग ही क्यों है? इसके ही साथ यह भी याद रखना चाहिये कि आजकल वायुमें कर्बन द्विओषिदकी मात्रा इतनी धीमी चालसे बढ़ रही है कि लगभग ३५० बरसमें आजकल-की अपेक्षा दुगनी हो जायगी।

चट्टानोंका धूम्रपान

चट्टानोंमे अधिकांश चूना, मेगनीसियम, अलुमिनियम, सोडियम और पोटासियमके सिलाकेत होते हैं। वायुका कर्बन द्विओषिद बराबर इन चट्टानोपर क्रिया करता रहता है और उन सिलाकेतोंको छिन्न भिन्न करके उनका तहसनहस करके, घुलनशील कर्बनेत बना लेता है। यही कर्बनेत बह बहकर धरतीकी उर्वरा शक्ति बढ़ाते हुए अन्तमें समुद्रमें जा पहुंचते हैं। समुद्रमें केलसियम और मग्नीसियम कर्बनेतोंको छोटे छोटे पौदे और जानवर ग्रहण कर लेते हैं और इनसे अनेकानेक पदार्थोंकी

दूसरे ज्वालामुखी आजकल तो बहुत कम हैं। सृष्टिके आदिमें ता पृथ्वीपर पग पगपर ज्वालामुखी थे, उनमें से जो कर्बन द्विओषिद हजारों वर्षों तक निकलता रहा वह कहां गायब हो गया ? आज कलके ज़मानेमें तो लगभग ३० अरब मन पत्थरका कोयला ही प्रतिवर्ष जलाया जाता है, जिससे लगभग १ खरब मन कर्बन द्विओषिद पैदा हो जाता है। कोयला, घास फूस, लकड़ी, इत्यादि जो चीजें जलती हैं, उनका ता हिसाब लगाना ही कठिन है। फिर जरा सोचिये कि सब मिलाकर कितना कर्बन द्विओषिद पैदा होता है। इस हिसाबसे तो वायुकी ओषजन थोड़े दिनकी ही मेहमान होनी चाहिये थी और कर्बन द्विओषिदकी असीम मात्रा वायु मण्डलमें होनी चाहिये थी। तो फिर आजकल १००००० भाग वायुमें कर्बन द्विओषिदके केवल ३ भाग ही क्यों हैं ? इसके ही साथ यह भी याद रखना चाहिये कि आजकल वायुमें कर्बन द्विओषिदकी मात्रा इतनी धीमी चालसे बढ़ रही है कि लगभग २५० वरसमें आजकलकी अपेक्षा दुगनी हो जायगी।

चट्टानोंका धूम्रपान

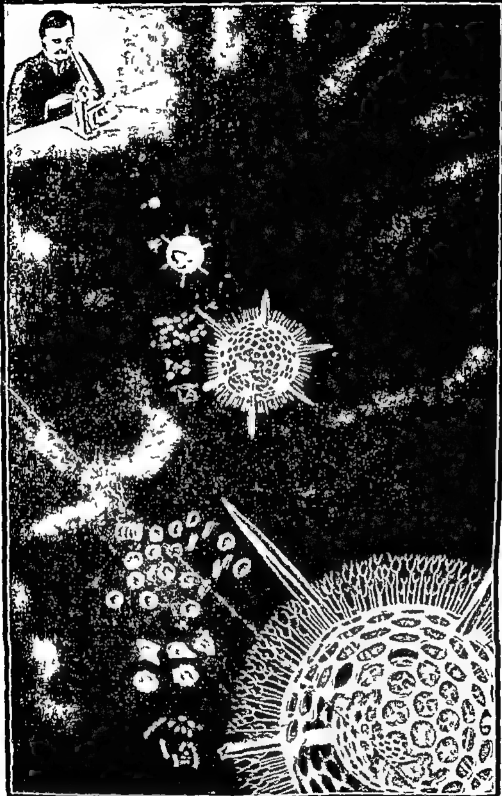
चट्टानोंमें अधिकांश चूना, मेगनीसियम, अलुमिनियम, सोडियम और पोटासियमके सिलाकेत होते हैं। वायुका कर्बन द्विओषिद बराबर इन चट्टानोंपर क्रिया करता रहता है और उन सिलाकेतोंको छिन्न भिन्न करके उनका तहसनहस करके, घुलनशील कर्बनेत बना लेता है। यही कर्बनेत बह बहकर धरतीकी उर्वरा शक्ति बढ़ाते हुए अन्तमें समुद्रमें जा पहुँचते हैं। समुद्रमें केलसियम और मग्नीसियम कर्बनेतोंको छोटे छोटे पौदे और जानवर ग्रहण कर लेते हैं और इनसे अनेकानेक पदार्थोंकी

उत्पत्ति करते हैं। इन्हीसे सीपियां पैदा होती हैं, इन्हींके मोती बनते हैं। इन्हींसे मूंगेके पेड बनते है, जो इकट्ठे हो होकर मूंगों-की चट्टानें और टापू बना लेते हैं। उधर छोटे छोटे फोरेमिनीफरा दिन रात लाखों मन कर्बनेत पानीसे खींच खींच अपना शरीर निर्माण करते रहते हैं और मरकर समुद्रकी तलेटीमें अपनी शवोंके रूपमें चूनेकी वर्षा करते रहते हैं। इन्हींके शवों-से संगमरमर की उत्पत्ति होती है।

जो संगमरमरकी चट्टान और चूनेका पत्थर भूगर्भमें भरा हुआ पडा है उसमें अनुमानतः इतना अधिक कर्बन द्विओषिद मौजूद है कि वायुमें के कर्बन द्विओषिद्से ७५०० गुना होगा। कदाचित् उस सब कर्बन द्विओषिद्को फिर स्वतन्त्र गैस बना दें तो आजकलका वायु मण्डल आयतनमें ८०० गुना हो जाय। आजकल वायु मण्डलका बोझ प्राय ७½ सेर प्रति वर्ग इंच है परन्तु उक्त घटना होने पर लगभग ४०० मन प्रति वर्ग इंच हो जाय और कोई भी प्राणी जीता न बचे।

यह तो प्रकृतिका कर्बन द्विओषिद्को वायुमें न बढने देने-का एक उपाय है और वह भी कैसा उपयोगी है। वायु शुद्ध-की शुद्ध हो जाती है और धरतीकी उर्वरा शक्ति भी बढ जाती है। इसके अतिरिक्त जो अन्य कौतूहलोत्पादक घटनाएं, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, होती हैं उनका तो कहना ही क्या है। कर्बन द्विओषिद्के वायुमें न बढने देनेका दूसरा साधन भी प्रकृतिने कर रखा है, जो पहलेसे कम मनोरञ्जक और उपयोगी नहीं है।

वसन्त ऋतुमें जब वृक्षोंकी नई नई पत्तियां निकलती हैं तो कैसी सुहावनी लगती हैं। प्रत्येक पेड रेशमी कपडे पहने हुए



प्लेट ४—खुर्दबीन—क्षुद्रवीक्षण यन्त्र की शक्ति। यह मनुष्य एक समुद्र के प्राणी रहा है, जो खाली आँख से एक विन्दु सा दिखाई पड़ता है। अधि-शक्तिवाले क्षुद्रवीक्षणों से उस विन्दु की रचना का अधिकाधिक ज्ञान

उत्पत्ति करते हैं। इन्हींसे सीपियां पैदा होती हैं, इन्हींके मोती बनते हैं। इन्हींसे मूँगेके पेड़ बनते हैं, जो इकट्ठे हो होकर मूँगोंकी चट्टानें और टापू बना लेते हैं। उधर छोटे छोटे फोरेमिनीफरा दिन रात लाखों मन कर्बनेत पानीसे खींच खींच अपना शरीर निर्माण करते रहते हैं और मरकर समुद्रकी तलेटीमें अपनी शवोंके रूपमें चूनेकी वर्षा करते रहते हैं। इन्हींके शवोंसे संगमरमर की उत्पत्ति होती है।

जो संगमरमरकी चट्टान और चूनेका पत्थर भूगर्भमें भरा हुआ पड़ा है उसमें अनुमानतः इतना अधिक कर्बन द्विओषिद मौजूद है कि वायुमें के कर्बन द्विओषिद्से २५०० गुना होगा। कदाचित् उस सब कर्बन द्विओषिद्को फिर स्वतन्त्र गैस बना दें तो आजकलका वायु मण्डल आयतनमें ८०० गुना हो जाय। आजकल वायु मण्डलका बोझ प्रायः ७½ सेर प्रति वर्ग इंच है परन्तु उक्त घटना होने पर लगभग ४०० मन प्रति वर्ग इंच हो जाय और कोई भी प्राणी जीता न बचे।

यह तो प्रकृतिका कर्बन द्विओषिद्को वायुमें न बढने देनेका एक उपाय है और वह भी कैसा उपयोगी है। वायु शुद्धकी शुद्ध हो जाती है और धरतीकी उर्वरा शक्ति भी बढ जाती है। इसके अतिरिक्त जो अन्य कौतूहलोत्पादक घटनाएं, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, होती हैं उनका तो कहना ही क्या है। कर्बन द्विओषिदके वायुमें न बढने देनेका दूसरा साधन भी प्रकृतिने कर रखा है, जो पहलेसे कम मनोरञ्जक और उपयोगी नहीं है।

वसन्त ऋतुमें जब वृक्षोंकी नई नई पत्तियां निकलती हैं तो कैसी सुहावनी लगती हैं। प्रत्येक पेड़ रेशमी कपड़े पहने हुए

जान पड़ता है। इनको देखकर शुद्धता, कोमलता और भोले-पनके भाव मनमें उठने लगते हैं। साधारणतः भी बागमें हरियाली कैसी मन लुभानेवाली होती है। पर वास्तवमें क्या शान्त उपवनमें शान्ति छायी हुई होती है? क्या वायुके कोमल स्पर्शमें झूलती हुई नई नई कोपलें इतनी सरल हैं, जितना आप समझते हैं? वैज्ञानिक दिव्य दृष्टिसे देखिये तो आपको पता चले कि क्या भयङ्कर महाभारत हो रहा है। यह जो हरा हरा रोगन आपको पत्तियों पर चढ़ा दिखलाई पड़ता है, यह एक पदार्थ है जिसे हरित राग कहते हैं। इस पदार्थ पर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, तो इसके अणुओं और परमाणुओंमें विचित्र गति उत्पन्न हो जाती है। उसके अणु उस समय साक्षात कालिकाका रूप धारण कर लेते हैं। कर्बन द्विओषिद्का कोई अणु उनके सामनेसे निकला नहीं कि उन्होंने उसे झपट कर पकड़ा, पकड़ कर उसमेंके कर्बनको तो डकार जाते हैं, पर ओषजन पर उनका कुछ अधिक बस नहीं चलता—उसे छोड़ देते हैं। यहां शायद आपको आश्चर्य हुआ होगा कि अणुओंकी उपमा कालिकासे क्यों दी गई। इसका कारण यह है कि कर्बन द्विओषिद्के अणुओंको तोड़कर उनमेंसे कर्बन ग्रहण करना कुछ आसान काम नहीं है। यदि आप कर्बन द्विओषिद्को गरमी पहुँचा कर उसके अवयवी कर्बन और ओषजन अलग करना चाहें तो १८००° शकी गरमी पहुँचानी पड़ेगी। मनुष्यके शरीरसे ५० गुनी ज्यादा गर्मी देनी होगी, बड़े बड़े प्रचण्ड भट्टों में जो गरमी नहीं पैदा होती उतनी गरमी कर्बन द्विओषिद्के अणुओंके तोड़नेके लिए जो काम १८००° श तापक्रम, पर मनुष्य अपने यंत्रोंसे कर पाता

है, वही काम यह छोटी छोटी निर्बल कोंपलें बातकी बातमें कर डालती हैं। इस प्रकार दिन रात पेड़ों और पौधोंकी पत्तियां परिश्रम करती रहती हैं और हमारी बिगड़ी हुई हवाको शुद्ध करती रहती हैं।

पत्थरों और पौधोंके ऋणसे उबरना मनुष्य की शक्तिके बाहर है। फिर यदि पत्थर और पौधोंको कोई श्रद्धा पूर्वक पूजे तो क्या दोष है ? सच पूछिये तो उन्हें न पूजना कृतघ्नता है।

होम्सने (Holmes) इस घटनाका कैसे अच्छे शब्दोंमें वर्णन किया है —

'The great sun
Girt with his mantle of tempestuous flames
Glares in mid-heaven, but to his noontide blaze
The slender Violet lifts its lidless eye
And from his splendour steals its fairest hue
Its sweetest perfume from his scorching fire "

कर्बन द्विओषिदकी कारीगरी

पाठक, भूले न होंगे कि जिस पानीमें कर्बन द्विओषिद घुला रहता है वह चूनेके पत्थर, खड़िया, और संगमरमरको आसानीसे गला सकता है। इस बातकी परीक्षा की जा सकती है। एक प्रयोग पहले दिया जा चुका है। दूसरा प्रयोग जो आसानी से किया जा सकता है यह है कि सोडावाटर लेकर किसी संगमरमरके टुकड़े पर डाल दो और देख लो कि उसका कुछ हिस्सा गल जाता है या नहीं। यदि संगमर्मरका

टुकडा चिकना हुआ तो फौरन ही पता लग जायगा, क्योंकि सोडावाटरके प्रभावसे वह खुर्दरा हो जायगा। कर्बन द्विओ-



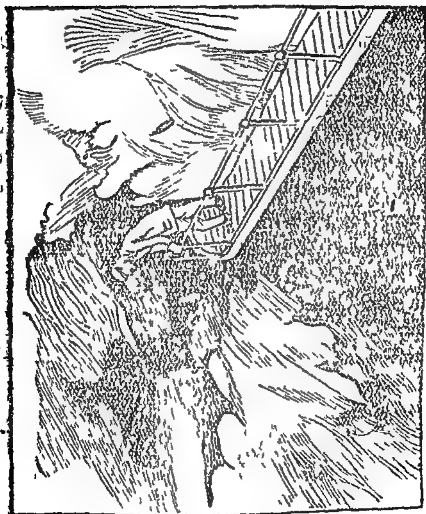
चित्र ३० मेंटिस नामक बालक मीलस्ट्रोम नामक मैमथकेवके एक अत्यन्त गहरे गड्ढे में उतर रहा है।

पिदका यह साधारण गुण प्रकृतिमें बड़े बड़े तमाशे कर दिखाता है, जिनके सामने मनुष्यकी कारीगरी और मनुष्यका परिश्रम बच्चोंकासा खेल मालूम पड़ता है।

पृथ्वीके बहुतसे भाग चूने या खड़ियाकी चट्टानोंके बने हुए हैं। वर्षाका या नदियोंका पानी हवामेंसे कर्बन द्विओषिद घुला लेता है और जब उक्त खड़ियाकी चट्टानोंपर होकर निकलता है तो उनका थोड़ा बहुत अंश घुला लेता है। चट्टानोंका इस प्रकार घुलना, दिन रात बारों महीने जारी रहता है। यह घटना केवल पृथ्वीके पृष्ठपर ही नहीं होती, किन्तु भूगर्भमें भी होती रहती है। एक तो कर्बन द्विओषिद सपृक्त वर्षाका जल जहां रिस रिसकर पृथ्वीमें पहुँचा कि उसने अपने मार्गमें की खड़ियाकी चट्टानोंको गलाना शुरू किया। दूसरे पृथ्वीके भीतर जो बड़ी बड़ी जलकी धाराएं बहतो रहती हैं और जिनसे नदियों, झीलों और कुओंमें पानी पहुँचता रहता है और उस कर्बन द्विओषिदसे सपृक्त रहती हैं जो भूगर्भमें उत्पन्न होती रहती है। यह भूगर्भस्थ धाराएं पृथ्वीके अन्दर बड़ी बड़ी गुफाएं, कन्दराएं और सुरंगें काट लेती हैं।

कर्बन द्विओषिदसे सपृक्त एक घन गज पानी लगभग सेर-भर खड़िया घुला लेता है। इससे सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि भूगर्भमें बहनेवाली प्रबल जलधाराएं हजारों वर्षोंतक बहती रहकर कितनी खड़िया काट काटकर लेजाती हैं। पृथ्वीके इन खड़िया-प्रान्तोंमें गुफाओं और कन्दराओंमें बहनेवाले बड़े बड़े दरिया ही नहीं पाये जाते, बल्कि कभी कभी चौड़े मैदानोंमें बड़ी बड़ी नदियां किसी गढ्ढेमें प्रवेशकर लुप्त हो

जाती है। स्पेनमें गुआडियाना (Guadiana) नदीकी यही दशा होती है। कभी कभी कोई नदी एक गुफामेंसे बड़े वेगसे



चित्र ३१—पाताल तोड़ कुआं (The Bottomless pit)

निकलकर, थोडी दूर खुले हुए मैदानमें बहकर दूसरी गुफामें प्रवेश करती है और गायब हो जाती है। कारलियोनामें एक ही

नदी तीन कन्दराओंमें बहती है और जितनी बार पृथ्वीमें समाकर दूसरे ठौर जा निकलती है, उतनेही भिन्न भिन्न नाम उसके पड़ गये हैं। एडिलसवर्गमें पोयक, प्लानिना (Planina) में उन्ज (Unz) और अपर लेबेक (Upper Laibach) में लेबेक, उसी नदीके तीन नाम हैं।

पृथ्वीके भीतर बहनेवाली इन नदियोंके मार्गों में बडे बडे कौतूहलोत्पादक दृश्य देखनेको मिलते हैं। कहीं तो नदी सकडी होकर बडे वेगसे किसी गड्ढेमें गिरकर गायब हो जाती हैं और कहीं चौडी होकर अन्धकारमय और भयानक झीलोंका रूप धारण कर लेती हैं, जिनके शान्त तलको वायुकी तरङ्गें प्राय स्पर्श ही नहीं करती। पर कभी कभी किसी अदृश्य छिद्रमें होकर बडे वेगसे हवा आने और हलचल मचाने लगती है। जहा कहीं नदीके मार्गमें कठोर चट्टान आजाती है ता नदी एक छोटा सा रास्ता काट लेती है। पर जहा मुलायम चट्टानें मिलती ह वहा तो बडे बडे कमरे खुद आते हैं।

ससारकी खडियाकी गुफाओंमेंसे सबसे अधिक विशाल और विख्यात केंटकीकी मेमोथकेव है। इस गुफामें अनेक विशाल कमरे बने हुए हैं। इनमेंसे प्राय ५७ का तो नामकरण भी होचुका है और उन का पूरा विवरण भी सैर करनेवालोंने दिया है। इनके अतिरिक्त इसमे ११ झीलें सात नदिया, आठ केटेरेक्ट और बत्तीस अन्धकूप हैं। पाताल तोड (Bottomless pit) कूपका चित्र यहा दिया जाता है। यह प्राय १२० हाथ गहरा है। गुफाके अन्दर बहनेवाली नदियोंमें सबसे विख्यात 'ईको रिवर' है। इस नदीके किनारे शब्द करनेसे विचित्र

प्रतिध्वनि सुनाई पडती है। इसीसे इसका नाम इकोरिवर



चित्र ३२—इकोरिवर (Echo river)

पडा है। इन गुफाओं और नदियोंका विस्तृत वर्णन किसी स्वतन्त्र लेखमें दिया जायगा।

सरदी और गरमी



सवेरेका समय है। सूर्यदेव प्राची दिशाकी कायसे निकल तम रूप असुरोंको मार अपनी दिन-यात्रा आरम्भ करनेकी तैयारी कर रहे हैं। बाँध पर खडे हुए हजारों मनुष्य सूर्योदयका सुन्दर दृश्य देख रहे हैं। प्राकृतिक छटाके प्रभावसे धार्मिक भाव पैदा हो उनके हृदयोंको गुदगुदा कर परमात्माके प्रेमसे भर रहे हैं। त्रिवेणीके दर्शनके लिए जब निगाह उठा कर हम देखते हैं तब सिवा धुआँके कुछ नहीं दिखाई देता। दो चार हाथ पर खडे आदमीको भी पहचानना कठिन हो रहा है। सरदी के मारे सबके दाँत बज रहे हैं। सब सरदीकी शिकायत कर रहे हैं।

एक घण्टे बाद धुआं हवा हो जाता है। सूर्यकी प्रखर किरणोंके फैलते ही कुहरा साफ होगया। कपडोंसे लदे हुए ईजिपशियन मम्मीकी तरह तहपर तह कपडे से ढके बाबू लोग ओवरकोटोंको कन्धेपर डालने लगे। देहाती भी अपनी दोहरों-को समेटने लगे और हाथ पैर सीधे कर इधर उधर जाने लगे। एक और घण्टा बीता कि सब सूर्य्यकी प्रचण्डताकी शिकायत करने लगे।

दो घण्टे पहले जिस सूर्य्यकी ऐसी प्रतीक्षा थी, जिसने गरीबोंका दुःख और अमीरोंका बोझा हलका कर दिया था, उसीसे अब लोग घबरा उठे है। हमको संसारकी स्वार्थ

परायणतासे सरोकार नहीं, हम तो केवल यह जानना चाहते हैं कि सरदी या गरमी क्या वस्तु है।

"ठण्ड लग रही है," "चिल्लेका जाड़ा पड़ रहा है," "बड़ी गरमी है" इत्यादि वाक्य छोटे बड़े, राजा और रङ्क सभीकी जबानसे सुनाई दिया करते हैं। परन्तु वस्तुत इन वाक्योंसे वह समझते क्या है? प्राय लोग समझते हैं कि सरदी और गरमी दो भिन्न भिन्न वस्तुयें हैं। जाड़ेके मौसिममें ठण्डका प्राधान्य रहता है और ग्रीष्ममें गरमीका। इतना सभी जानते हैं कि तापका मुख्य उद्गम स्थान सूर्य है, परन्तु ईंधन लकड़ी, कोयला आदिके जलानेसे भी ताप उत्पन्न होता है। जो अधिक शिक्षित हैं वह गैसके जलने और विद्युत्के प्रवाह-द्वारा तारोंके गरम हो जानेसे भी परिचित हैं। इलेक्ट्रिक फुट वार्मरपर पैर रखनेसे कैसा आनन्द आता है, कमरेमें दहकते कोयलोंकी अँगीठी अथवा बिजलीका रेडियेटर रखनेसे सरदी-का बहिष्कार हो जाता है।

ध्यानसे देखा जाय तो जितने तापोत्पादक साधनोंका उल्लेख ऊपर किया गया है वह सभी सूर्यसे ही अपना ताप पाते हैं।

लकड़ीका कोयला तो लकड़ियोंको विशेष रीतिसे जलाने अथवा लोहेके बरतनोंमें तपानेसे प्राप्त होता ही है, परन्तु पत्थरका कोयला भी भूगर्भमें हरे भरे जगलोंके समा जाने और धीरे धीरे उनका विघट्टन हो जानेसे बनता है। पत्थरके कोयलेमें पत्तों, डठलों, तनों और शाखाओंके टुकडे कभी कभी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। लकड़ीके रेशे और धारियां तो सभी टुकड़ोंमें देखी जा सकती हैं। दूसरे खनिज कोयला अनेक

अवस्थाओं और प्रकारोंमें मिलता है, जिससे वनस्पतियोंसे ही उसका पैदा होना सिद्ध होता है, केवल कालान्तर से ही अनेक भेद खड़े हो जाते हैं। अत्यन्त प्राचीन कोयला ग्रेफाइट या एन्थ्रेसाइटके रूपमें मिलता है और हालका बना कोयला पीटके रूप में। कोयलेकी करामात से बिजली और गैस बनती हैं। अतएव यह स्पष्ट हुआ कि तापके देनेवालोंमें मुख्य सूर्य और वनस्पति हैं।

परन्तु वनस्पतियोंमें ताप देनेकी शक्ति कहासे आती है? प्राय इसका सीधा सादा जवाब यही दिया जाता है कि जलाने से। पर गम्भीरतापूर्वक देखिये कि जलने से क्या पैदा होता है? राख तो पड़ी रह जाती है, जो मिट्टीमें मिल जाती है और कुछ गैसें, मुख्यत कर्बन द्विओषिद, वायु में जा मिलती हैं। जब वृक्ष हरा भरा खड़ा था तब उसने कर्बन द्विओषिद वायुसे और खनिज पदार्थ (जो राखके रूपमें जलने पर बच रहते हैं) पृथ्वी से ग्रहण किये थे। पृथ्वी से तो जड़ों द्वारा पानीमे घुले पदार्थ सहज ही पौधे के पिण्ड मे पहुँच जाते है और पौधा उन्हें अङ्गीकार (assimilate) कर लेता है, परन्तु वायुसे कर्बन द्विओषिदको वह किस प्रकार ग्रहण कर लेता है?

जिस प्रकार अन्य प्राणियोंमे श्वासोच्छ्वास की क्रिया जारी रहती है, उसी प्रकार वृक्ष भी साँस लेते और छोड़ते हैं। वायुकी ओषजन श्वास-कर्ममे काम आती है और बिगड़ कर-कर्बन द्विओषिद में बदल कर-बाहर निकल आती है। इस प्रकार जलचर, थलचर, नभचर, स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी इस कामको रात दिन किया करते है। परन्तु वनस्पतियाँ एक और महत्वपूर्ण काम करती रहती है। वह अपने शरीरमे

पैदा हुई कर्बन द्विओषिद गैसको तथा उसको भी, जो बाहर से (वायुके साथ) आती है, वृक्षके बाहर निकलने नहीं देतीं। सूर्यकी किरणों और हरित रागकी सहायता से वह उसको ओपजन और कर्बनमें विभक्त कर देती हैं। कर्बनको तो अङ्गीकार कर लेती हैं और ओपजनको मुक्त कर देती हैं।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वनस्पतियोंका शरीर कुछ खनिज पदार्थों और सूर्यके प्रकाशके संयोग से बनता है। जब लकड़ी जलती है तब इन्हीं यौगिकोंका वायुके ओपजनको सहायता से विघट्टन होता है और सञ्चित ताप हमको मिल जाता है, अतएव वायुकी ओपजनका मुक्तावस्थामें मिलना और जलनेवालोंकी सृष्टि दोनों भगवान् सूर्यकी कृपा से ही सम्भव होने हैं। अतएव तापका एकमात्र स्रोत सूर्य का पिण्ड है।

पर गरमी अथवा ताप है क्या वस्तु ? यह निर्णय करनेके लिए दो एक सरल प्रयोग करने पड़ेंगे। आधपाव पारा लीजिये। उसे ऊँचेसे डाल दीजिये। जब तक वह जमीन से टकराता नहीं है, बँधा हुआ गिरता है। पर पृथ्वीसे टकराते ही वह सहस्रों बिन्दुओंके रूपमें इधर उधर फैल जाता है। या एक भञ्जनशील पदार्थकी गेंद लेकर ऊपरसे छोड़ दीजिये। पृथ्वी से टकराते ही वह छार छार होकर इधर-उधर बिखर जायगी। अब एक लाहेकी गेंद इसी प्रकार और उतने ही ऊपरसे छोड़िये। वह जमीन से टकरा कर टूटती नहीं, किन्तु गरम हो जाती है।

इन प्रयोगों पर विचार करने से यह परिणाम निकलता है कि समान उँचाई से गिरने से उक्त तीनों चीजें पृथ्वी पर समान उनका समयमें पहुँचती हैं और समान वेग होता है।

पृथ्वी से टकराते ही उनकी सामूहिक गति (प्रत्येकको कर्णोका समूह मान सकते हैं) रुक जाती है, इसीलिए गतिसम्भूत शक्ति अवयवी कर्णोंमें पहुँच कर उनकी गति बढा देती है। पारे और कॉचके कर्णोंमे पारस्परिक आकर्षण कम होने से उनके कण इस गतिके आधिक्यको सह नहीं सकते और बिखर जाते हैं। लोहेमें कण बिखरने तो पाते नहीं, अपने अपने स्थान पर ही वेग से घूमने लगते हैं। लोहे और कॉचकी गेंदमें यही फर्क है। लोहेमें तापकी वृद्धि देख सकते हैं, कॉचमें नहीं। कॉचके कण टूट कर इधर उधर ढुलक जाते हैं अथवा उचट जाते हैं। लोहेके कण एक स्थानपर रहते हैं, अतएव उनकी ताप वृद्धि का अनुभव सहजही हो जाता है।

लोहेकी गेंदम तापक्रम बढ गया, पहले दो प्रयोगोंमें जैसा स्पष्ट देखते हैं, उसीके आधारपर यह अनुमान कर लेना न्यायसङ्गत है कि लोहे के कर्णोका वेग भी बढ़ गया, अतएव यह सिद्ध हुआ कि तापक्रममें जब वृद्धि होती है, कर्णोका वेग बढ जाता है। इसीलिए आजकल यह माना जाता है कि अणुओंकी गतिसम्भूत शक्ति ही ताप है।

दो पिण्डोंका समान तापक्रम तभी होगा जब उनके अवयवी अणुओंकी गतिसम्भूत शक्ति समान होगी। यदि पिण्ड क के अणुओंकी गति सम्भूत शक्ति ख के अणुओंकी गतिसम्भूत शक्तिसे अधिक है तो वह अधिक गरम प्रतीत होगा। अर्थात् उसका तापक्रम ऊँचा होगा। जब क, ख को सटाकर रखेंगे तब क के अणु अपनी शक्तिको अशत ख को देने लगेंगे और थोडी देरमें दोनों की गति-सम्भूत शक्ति बराबर हो जायगी। यही ठण्डे और गरम होनेका अर्थ है।

जिन पिण्डोंके अणुओंकी गति-सम्भूत शक्ति हमारे शरीरके अणुओंकी शक्तिसे अधिक है वह गरम और जिनकी कि कम है वह ठण्डे प्रतीत होते हैं। सरदी या ठण्ड केवल गरमी या तापका अभाव मात्र है। ठण्डक अलग नहीं है।

अब प्रश्न यह होता है कि शरीरको जो सरदी गरमीका बराबर अनुभव होता रहता है वह क्यों होता है। इसका रहस्य यह है कि जब वायु-मण्डलका तापक्रम हमारे शरीरके तापक्रमसे अधिक होता है तब हमारे शरीरमें गरमी बाहरसे आने लगती है और हमें गरमीका अनुभव होता है। इसके विपरीत जब वायुमण्डलका तापक्रम शरीरके तापक्रमसे कम होता है तब शरीरसे ताप वायु-मण्डलमें आने लगता है और हमें सरदी लगती है। ताप-विनिमय पिण्डोंमें बराबर होता रहता है। वायुके रहते हुए भी उसकी उपेक्षा कर पिण्ड ताप देते लेते रहते हैं। यदि आग हमसे बहुत फासिले पर जल रही हो तो भी हमारे और उसके बीचके वायुके गरम हुए बिना भी हमें गरमी का अनुभव होता है। इसी क्रियाको ताप-विसर्जन कहते हैं। जो ताप विसर्जन द्वारा फैलता है उसे विसर्जित ताप कहते हैं। विसर्जित बलके दो रूप हैं—ताप और प्रकाश। इन दोनोंका जोड़ा है। सूर्य से विसर्जित बल बराबर आता रहता है। यह वायुको गरम न करके पदार्थों पर गिरता है और उन्हें गरम कर देता है। तब वायुमें तापवाहक धारायें उत्पन्न होकर वायुको गरम कर देती हैं। यही कारण है कि गरमीमें ईंट, पत्थर आदि पहले गरम हो लेते हैं तब वायु गरम होती है।

सूर्यपिण्डका बड़ा ऊँचा तापक्रम है, ६०००° शने भी

ज्यादा है। मनुष्य और साधारण सभी प्राणियोंके देहोंका तापक्रम ३८° श होता है। अतएव सूर्यकी किरणें जब शरीरपर पड़ती हैं तब गरमीका अनुभव होता है। पृथ्वी अपनी कक्षामें सूर्यकी एक परिक्रमा ३६५ दिन और ६ घण्टेमें कर लेती है। परन्तु पृथ्वीकी अक्ष कक्षातल से समकोण नहीं बनाती, बल्कि उसकी तरफ कभी कम और कभी ज्यादा झुकी रहती है। कभी उसका एक छोर सूर्यकी तरफ रहता है, कभी दूसरा। इस झुकावके कारण कहीं सूर्यकी किरणें सीधी गिरती हैं और कहीं टेढ़ी। इसी कारण ऋतुओंमें परिवर्तन होता रहता है।

वायुमण्डल हमारी बड़ी रक्षा करता है। यदि वायुमण्डल न होता और वायुमें भी जल-वाष्प और कर्बन द्विओषिद न होते तो भूतल दिनमें अङ्गारोंके समान उत्तप्त हो जाता और रातमें बरफसे भी सैकड़ों गुना ठण्डा। ऐसी अवस्थामें प्राणियोंका जीवित रहना कब सम्भव होता!

पिघलती हुई बरफका तापक्रम ०° श माना जाता है। इस हिसाबसे सबसे ऊँचा तापक्रम, अर्थात् ६००० दर्जेका, सूर्यपिण्डका है। मनुष्यने भी विद्युत भट्टे तैयार करके छोटे पैमानेमें इस ऊँचे तापक्रमकी नकल की है। बरफसे ठण्डी अनेक वस्तुयें हैं। बरफ और नमक मिलानेसे लगभग – २३° श का तापक्रम पैदा हो जाता है। शोरा मिलानेसे और भी नीचा तापक्रम मिल जाता है। कैलसियमहरिद और बरफके मिश्रणका तापक्रम लगभग – ४०° श है। इस तापक्रमपर कर्बन द्विओषिदका दबाव बढ़ाकर द्रव बना सकते हैं। द्रव कर्बन द्विओषिदको यदि स्वत उड़ने दें तो ठोस कर्बन द्विओषिद प्राप्त हो जाता है। ठोस कर्बन द्विओषिद और ईथरके मिश्रणसे

और भी नीचा तापक्रम (−११०°श) मिल जाता है। सबसे नीचा तापक्रम, जो अब तक प्राप्त हो सका है −२७१° श है। वह तापक्रम, जिस पर तापका नितान्त अभाव है अर्थात् जिस तापक्रमपर अणुओंकी गति बिलकुल रुक जाती है, −२७३° श है। यह केवल सिद्धान्तों द्वारा जाना गया है। प्रयोगशालामें इस नीचे तापक्रमका अभी अनुभव नहीं हुआ है। अनन्त देशमें तो सदैव इसी सरदीका अनुभव होता रहता है। यही सरदी-की पराकाष्ठा और गरमीका मूल विन्दु है। इससे नीचे दरजे-की गरमी या सरदी कल्पनातीत है।

स्वस्थ रहते मनुष्य अपने तापक्रमको सह सकता है, परन्तु शरीरसे गरमीका जल्दी जल्दी निकल जाना या उसमें बाहरसे गरमीका पहुँचना बहुत देर तक सह्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि कमरोंको गरमीमें अनेक उपायोंसे ठण्डा रखनेका और जाडोंमें गरम करनेका प्रयत्न किया जाता है। कपडे भी शरीरकी गरमीको जल्दी जल्दी निकल जानेसे रोकनेके साधन हैं। कपडे पहनने से शरीरमें ताप उत्पन्न नहीं हो जाता, किन्तु उसके विसर्जनकी गति कपडोंके कुवाहक होनेके कारण कम हो जाती है। कपडा जितना कुवाहक होगा उतने ही कम कपड़ोंकी आवश्यकता पडती है। इसीलिए सूती कपडे रेशमी कपडोंसे कम उपयोगी होते हैं। रूईकी कुवाहकता धुननेसे और बढ जाती है। इसी लिए हालकी धुनी हुई अधिक गरम होती है। धुननेसे रुई फैल जाती है और उसके रेशोंके बीचमें बहुत हवा भर जाती है। दबने पर जब हवा निकल जाती है तब वह इतनी गरम नहीं रहती।

सुनते हैं कि लखनऊके नवाब लिहाफ़की जगह कई रजाइयों

का प्रयोग किया करते हैं। वस्तुत. आध आधसेरकी दो रजाइयाँ तीन सेरके लिहाफसे अधिक उपयोगी होती हैं। दोनोंके भीतर भरी और बीचमें दबी हुई हवा उनकी उपयोगिता बढा देती है। इसी हवाकी कुचाहकताके कारण स्त्रियां एक धोती और कुरती पहने ही आनन्दसे विचरा करती हैं और गरीब देहाती एक दोहरमें ही सुखका अनुभव करते हैं।

बरफीले स्थानोंमें बरफमें गड्ढा खोद कर यदि कोई बैठ रहे तो उसे अनेक कम्बलोंका सुख बरफकी कुचाहकताके कारण मिल सकता है।

तांबेके पात्र और पवित्री



न्दुओंमें अनन्त कालसे ऐसा विश्वास चला आता है कि जो मनुष्य ताम्बेके घडेमें रखे हुये पानीसे स्नान करता है वह गंगा स्नानका पुण्य लाभ करता है और जो उसको पीता है वह गंगा जलका पान करता है। परन्तु यह साफ तौर पर लोगोंको बतला दिया जाता है कि ताम्बेके पात्रमें भोजन बनाना या उसमें रख कर खाना अर्थात् ताम्बेके पात्रको जूठा करना सर्वथा अनुचित है और जो ऐसा करता है उसे पाप लगता है। मुसलमानोंमें भी ताम्बेके पात्रोंको साधारणतया व्यवहारमें लाना मना है। उनके मजहबमें ताँबा जब तक उस

पवित्री

हिन्दुओंमें यह रिवाज है कि तांबे, चांदी और सोनेके तारोंका बना हुआ छल्ला जिसे पवित्री भी कहते हैं कनिष्ठिकामें पहना करते हैं। इसका कारण भी प्राय. यही बताते हैं कि ताम्बा, सोना और चाँदी पवित्र पदार्थ हैं। इनका बदनपर रहना अच्छा है। स्नान करते समय यदि इनसे स्पर्श करके पानी बदनपर गिरे तो गंगा स्नानका पुण्य होता है। इसी विश्वाससे गलेमें सुवर्ण और रुद्राक्षका रहना श्रेष्ठ समझा जाता है। प्राय देखा गया है कि स्त्रियाँ दांतोंमें चोंप जडवा लेती हैं जिससे भोजन पवित्र होकर गलेमें उतरे। मरते समय भी यदि सोना मुँहमें पहुँच जाय तो धर्मात्मा हिन्दू समझते हैं कि आत्मा शुद्ध होकर इस लोकसे प्रयाण कर स्वर्गारोहण करेगी। बच्चे जब किसी अशुद्ध वस्तुको या अस्पृश्य व्यक्तिको छूलेते हैं तो उनको स्नान करना पडता है या गंगाजल या सोनेसे स्पर्श किया हुआ पानी उनपर छिडक दिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि वह इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।

पवित्री और सोने और चांदी आदिकी शुद्ध करनेकी शक्ति वास्तविक है वा कल्पित ? क्या आधुनिक विज्ञान इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालता है या नहीं ? इन्हीं बातों पर आइये आज विचार करें। ताम्बेकी कृमिघ्न वा कीटाणु नाशक शक्ति पर तो हम विस्तारसे पहिले ही विचार कर चुके हैं। चाँदीकी कीटाणु नाशक शक्ति पर हालमें ही कुछ प्रयोग पी० सेल (P Saxl) महोदय ने किये हैं। प्रयोगोंकी चर्चा करते हुए नेचर (Nature) ने लिखा है "बहुत कालसे यह हमें मालूम है

कि जो पानी तांबेकी नलियों या बम्बोंमें बहकर आता है वह कृमिघ्न गुण सम्पन्न होता है। हमें इस बातका भी ज्ञान है कि चाँदीको पानीमें डुबोनेसे पानीमेंके कीटाणु मर जाते हैं। इन्हीं बातोंके ज्ञानका उपयोग पी० सेल ने पीनेके पानीके जीवाणु शून्य करनेके एक यत्नमें किया है। काँचकी बोतलको पहले ऊपर तक पानीसे भरो; फिर चाँदीका एक तार उसकी गर्दन तक पानीमें लटका दो और १५ दिन तक इसी प्रकार रखा रहने दो। तदनन्तर पानीको फेंक दो फिर उसमें पानी भरकर तार लटका दो तो पानी ८ घटे तक जीवाणु शून्य रहेगा। परीक्षाओंसे पता लगा है कि इस रीतिसे पानीमेंके मोती झिरे, हेजे तथा आमातिसार के कीटाणु मर जाते हैं"।

उपरोक्त उदाहरणसे प्रतीत होगा कि पानीमें चाँदी डुबो कर रखनेसे पानीके जीवाणु मर जाते हैं। हमें आशा है कि कोई सज्जन रुद्राक्ष और कुशके गुणोंपर भी प्रयोग करके निश्चय करेंगे कि इनका जीवाणुओं पर क्या प्रभाव पडता है।

प्रकृतिकी अटूट ईंट



ननेकी इच्छा, ज्ञानकी पिपासा और देखनेका चाव प्रत्येक प्राणीमें पाया जाता है। यही दो प्रबल प्रेरक मनोवृत्तियाँ हैं, जो मनुष्य मात्रको अपनी दृष्टिका क्षितिज और विद्याका वृत्त बढ़ानेके लिए बाधित करती रहती हैं। ज्ञानोपार्जनके मुख्य साधन मन आदि छः इन्द्रियाँ हैं। किसी बालकको देखिये जहां कोई चीज़ देख पड़ी कि उसने झट पकड़नेका प्रयत्न किया और जहां उसे पकड़ पाया कि कि झट मुहमें रख परीक्षा आरम्भ की। रसीली और स्वादिष्ट वस्तुको बहुत देर तक चूसते रहते और कड़वी या चिरपरी वस्तुको सहसा त्यागते बालकोंको सभीने देखा होगा। बड़ा होनेपर भी निरीक्षण और परीक्षणका चाव बना रहता है। यही कारण है कि बालक निचले बैठना कदापि पसन्द नहीं करते और जहां तक बन पड़ता है उठा धराई करते रहते हैं। परन्तु और बड़े होनेपर प्रायः निरीक्षण और परीक्षणके यन्त्र ही उनसे बगावत कर बैठते हैं अपने परीक्ष्य पदार्थोंमें ही वह ऐसे जा फसते हैं कि कभी कभी मनुष्यको निकम्मा ही कर छोड़ते हैं। परन्तु वीरात्माएं ऐसी भी होती हैं कि उनको निरलग रख अपने ज्ञानकी सीमाको विस्तृत करनेमें लगाये रहती हैं और अपना और अपनी जातिका भला करती रहती हैं। यही वीरात्माएं वैज्ञानिक और उनका अनुशीलन क्षेत्र विज्ञान कहलाता है।

बाल्यावस्थामें शुद्ध ज्ञानकी पिपासा पायी जाती है। बालक आकर अपने पितासे पूछता है "पिता जी यह गोली काहेकी बनी है ?" पिता उत्तर देता है "यह काचकी बनी है" पुत्र इस उत्तरसे सन्तुष्ट न होकर फिर पूछता है "पिताजी कांच क्या होता है ?" इस प्रकार पुत्रके प्रश्नोंका सिलसिला जारी रहता है । पिता उत्तर देता देता हार जाय, पर पुत्र प्रश्न करता करता नही हारता। वास्तवमें पिता पुत्रके प्रश्नोंका उत्तर ही नहीं दे सकता। वह केवल बात टालनेका प्रयत्न करता है। ऐसे प्रश्नोंका उत्तर प्राय पदार्थके विविध वर्गीकरणोंका आश्रय लेकर ही दिया करते हैं। यह कह देना कि अमुक पदार्थ वानस्पतिक, प्राणिज या खनिज है पदार्थकी बनावटका यथार्थ ज्ञान करानेके लिए पर्याप्त समझा जाता है। परन्तु इस प्रकारका उत्तर देना द्रष्टाकी गवेषणा शक्तिको खराब कर देना है। बचपनमें माता पिता द्वारा उपयुक्त शंका समाधान और आधुनिक कुत्सित शिक्षा प्रणाली बच्चोंके मनोंमें गवेषणा शक्तिको बुरी तरहसे दबा देती है। और यही कारण है कि हमारे यहां बालक ज्यों ज्यों बडे होते जाते हैं त्यों त्यों उनकी गवेषणा शक्ति कम होती जाती है। अस्तु आधुनिक शिक्षा प्रणालीका सुधार राजनीतिक सुधारसे कहीं ज्यादा जरूरी है।

संसारमें अगणित पदार्थ देखे और पाये जाते हैं। पृथ्वीके ओर छोरसे अनेक पदार्थ हमारे विनोदार्थ लाये जाते हैं। वसुन्धराके पृष्ठ तलपर जो विपुल पदार्थ मिलते हैं उनके अतिरिक्त रत्नमयीके गर्भसे न जाने कितने रत्न निकाले जाते हैं और हमारे काम आते हैं। इस पदार्थवैचित्र्य और पदार्थ बाहुल्यको

देख मनुष्य अवाक् हो जाता है और परीक्षाका कार्य हताश होकर छोड़ देता है। परन्तु मनकी जो प्राकृतिक इच्छा ज्ञान प्राप्त करनेकी है वह बराबर उसे उकसाती रहती है, उत्तेजित करती रहती है। अतएव मनुष्यको विवश हो धीरे धीरे परीक्षा करते ही बनता है। पहले मनुष्य पदार्थका वर्गीकरण ही करके सन्तुष्ट रहा, पर कुछ कालके अनन्तर उसने पञ्च महाभूतका सिद्धान्त रचा। इसके अनुसार संसारके समस्त पदार्थ पांच महाभूतोंसे निर्माण किये गये हैं और इन्हींकी न्यूनाधिकता पदार्थोंमें विभिन्नता पाई जाती है। परन्तु यह सिद्धान्त कपोल कल्पित था। उसकी नींव प्राकृतिक तथ्यों और प्रयोगात्मक परीक्षण पर खड़ी न की गई थी। वह निरी मन गढ़त थी। जैसे जैसे मनुष्यका प्रयोगात्मक ज्ञान बढ़ता गया और परीक्षा करनेके नये नये तरीके ईजाद होते गये त्यों त्यों मनुष्यके विचारमें अद्भुत परिवर्तन आता गया। संसारके विविध भागोंमें लाखों आदमियोंने अनेक पदार्थोंकी परीक्षा आरम्भ कर दी। बरसों तक जी जानसे वह लोग दिन रात मेहनत करते रहे। पदार्थों की परीक्षामें जुटे रहे, जटिल पदार्थोंको तोड़ तोड़ कर उनका विश्लेषण करके सरल पदार्थ निकालते रहे, अन्तमें यह सिद्ध हुआ कि यह 'दुन्याय गूनागून' यह विचित्र संसार केवल सत्तर सरलतम पदार्थोंके संयोगसे बना है। पदार्थ वैचित्र इन्हीं मौलिकोंके भिन्न भिन्न रीतिसे भिन्न भिन्न परिणामोंमें संयोग होनेका परिणाम स्वरूप है। इन सरलतम पदार्थोंसे अधिक सरल पदार्थ निकालना असम्भव सा प्रतीत होता है—न यह पदार्थ एक दूसरेमें बदले जा सकते हैं।

यही सत्तर प्रकारकी ईंटे हैं जिनसे प्रकृति देवीने अपना परम रमणीय प्रासाद बनाया है। यह ईंटे रग रूपमें, भारमें और अन्य गुणोंमें एक दूसरीसे भिन्न हैं। पर एक प्रकार की ईंटें सब एक सी होती हैं। इन विविध भांतिकी ईंटोंमें से कुछ से तो पाठक परिचित ही होंगे। सोना, चादी, सीसा, रांग, जस्ता, लोहा, गधक, ताम्बा कर्बन (कोयला या अगार) अलुमिनियम और पारा प्राय नित्यके जीवनमें काम आते हैं। मग्नीसियमका तार प्राय बच्चे जलाया करते हैं। निकिलकी इलन्नियां कई सालसे चल रही हैं। शेष मौलिकोंसे या तो जन साधारणसे परिचय है ही नहीं या है भी तो बहुत कमसे। आयोडीनका टिंकचर, नत्रजन ओषजन, हरिण आदिसे कुछ शिक्षित सज्जन परिचित भले ही हों, पर अन्य मौलिकोंका सम्भवत उन्होंने नाम भी न सुना होगा। कुछ मौलिक तो ऐसे हैं जिनके दर्शन थोडेसे सुविख्यात वैज्ञानिकोंको छोड़ अन्य प्राणियोंने किये न होंगे।

इसका कारण क्या है ?

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इसका क्या कारण है। एक कारण है उपयोगिताकी कमी। थोडेसे मौलिक ऐसे हैं जो मनुष्यके काम में नहीं आते। ससारके कार्योंमें भी वे अनावश्यक हैं। यदि आज वे पृथ्वी पर से अतरधान हो जायें तो प्रकृतिके कामोंमें किसी भॉतिकी बाधा न पडे और उनके अभावका हमको पता भी न चले। ऐसे मौलिक स्कैंडियम, गैलियम, ज़ीनन, क्रिप्टन (कृपण) आदि हैं। कुछ मौलिक ऐसे भी हैं कि हैं तो बहुत उपयोगी पर जन साधारण उनका उपयोग नहीं करते। थोरियम और सीरियम लैम्प की जालि-

योंमें मौजूद रहते हैं, परन्तु बहुत कम मनुष्य इस बात से अभिज्ञ होंगे। दूसरा कारण यह है कि कुछ मौलिक बड़े अमूल्य हे, कुछ तो सोने और सफेद सोने (प्लाटीनम) से सैकड़ों गुना कीमती हैं। हीरे और लालों का मूल्य उनके सामने न कुछ है। कुछ इतने कीमती तो नहीं है; परन्तु उनका मूल्य उनकी उपयोगिताके हिसाब से बहुत ज्यादा बैठता है। इसी से इन दोनों प्रकारके मौलिकोंको लोग नहीं खरीदते या खरीद सकते।

मौलिकोंके कीमती होनेके कारण

इनकी कीमत, इनका मूल्य इतना अधिक क्यों है? इसके भी दो कारण हैं या तो यह कि उनका उन खनिजोंमें से शुद्ध रूपमें निकालना जिनमें वह पाये जाते हैं बहुत कठिन है। खनिजोंके अवयवोंके साथ इतनी दृढताके साथ संयोग हो रहा है कि उनके पृथक्करणमें बहुत शक्ति खर्च होती है। या वह संसारमें इतनी कम मात्रामें पाये जाते हैं कि बरसों तक परिश्रम करते रहने पर हजारों मन पदार्थको लेकर उसको अवयवोंको एक एक करके निकाल कर, अतमें रत्ती या दो रत्ती इष्ट पदार्थ या मौलिक प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए लीजिये रेडियम या वायुका कोई निष्क्रिय अवयव।

जब श्रीमान क्यूरी और उनकी धर्म पत्नीने रेडियमका आविष्कार किया था उन्होंने २५० मन [illegible] नामक खनिज से कार्य आरम्भ किया था। अ[illegible] श्रम करने पर उनको एक [illegible] था। उसकी [illegible] मात्रा [illegible] पर सकती थी [illegible]

हजार गुना है। समुद्रके जलमें घुले हुए सुवर्णकी मात्रा पिच ब्लेंडीमें विद्यमान रेडियमकी मात्रा से बहुत अधिक है फिर भी क्या कभी कोई मनुष्य समुद्र जल से सोना निकालनेका साहस कर सकता है? यदि कोई ऐसा दुस्साहस करे तो निकाला हुआ सोना हजार गुनी कीमतपर बेचनेसे केवल खर्चा मात्र निकल सकेगा।

वायुमें ओपजनके और नत्रजनके अतिरिक्त पाँच और मौलिक पदार्थ पाये जाते हैं। १००० भाग (आयतन) वायुमें ६६ भाग ओपजन और नत्रजन है। शेष १ भागमें अधिकांश आर्गन है। आर्गनके चार सौवें भागके बराबर चारों शेष अवयवोंका आयतन है। इस भाँति वायु के ४०००० चालीस हजार भागमें इन चारों अवयवोंका आयतन १ ठहरा, पाठक स्वयं अनुभव करें कि ४०००० भाग वायु लेकर उसमेंसे क्रमशः ओपजन और नत्रजन निकाल कर १०० भाग पाचों अवयवोंके निकालना। इन १०० भागोंमेंसे ६६ भाग आर्गन अलहदा करना और अत-में इस एक भागमेंसे चार अवयवोंके अलग अलग करनेमें कितना परिश्रम, कितना धन व्यय होगा। इस भांति किसी एक अवयवका मुश्किलसे ¼ भाग प्राप्त होगा। या यों कहिये कि यदि हमें एक घड़ा इनमेंसे किसी अवयवका चाहिये तो १६०००० घड़े वायु लेकर कार्य प्रारम्भ करना होगा।

यहा तक बात हुई उन मौलिकोंकी जो संसारमें बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं, पर अब उन मौलिकोंका हाल सुनिये जो हर जगह पाये जाते हैं परन्तु तब भी अलभ्यसे हो रहे हैं। मा-म्भरसे ॥) मन नमक आप मांग सकते हैं। मान लीजिये कि आप एक गाडी नमकका आर्डर दे रहे हैं तो आपको (५०) में

मिल जायगी। अब यदि आप यह सोचें कि भाई ३०० मन नमकमें १२० मन सोडियम और १८० मन हरिन गैस विद्यमान है। हम सबकी सब हरिन और २० मन सोडियम गवर्नमेंटको छोड दें और यह लिख दें कि ३०० मन नमककी जगह हम केवल १०० मन सोडियम लेना चाहते हैं अतएव वही भेज दिया जाय। आपको बडा आश्चर्य होगा जब आपसे २००० दो हजार रुपयेके लगभग माँगे जायेंगे।

आपने हिसाब तो ठीक लगाया पर एक बात भूल गये। नमकमें सोडियम और हरिनका इतना दृढ संयोग हो रहा है कि एक सेर नमकको तोड फोड कर उसके अवयवोंको अलग करनेमें आपको इतनी शक्ति लगानी होगी जितनी १०० मन बोझ लगभग २००० मील खींच ले जानेमें लगेगी। इस शक्तिके लिए आपको कितना धन फूंकना पडेगा उसका आपने हिसाब ही नहीं लगाया।

ईंटोंका स्वभाव

कुछ ईंटोंको छोड कर प्राय. यह देखा जाता है कि वह दो दो, तीन तीन चार चारके जुट्टोंमें, समूहोंमें रहना ही पसद करती हैं। यदि अन्य जातिकी ईंटोंसे परिचय करनेका अवसर नहीं मिला तो एक ही प्रकारकी ईंटें मिल कर अपनी गोष्टी बना लेती हैं। यह उनका स्वभाव ही है इसी चित्त वृत्तिका नाम युयुत्सा अर्थात् मिलनेकी इच्छा है। कौन कौनसी ईंटे मिल कर खिलौने बनाना पसद करेंगी यह उनकी पारस्परिक युयुत्सा और देशकालकी अवस्थापर निर्भर है।

क्या मौलिक शुद्धावस्थामें मिलते हैं ?

प्राय. प्रकृतिमें मौलिक शुद्ध अवस्थामें नहीं मिलते। सोना

चाँदी आदि थोड़ेसे मौलिक तो स्वतन्त्रावस्थामें मिल जाते हैं परन्तु अधिकांश मौलिक आपसमें मिले हुए ही पाये जाते है। इसका कारण उनकी प्रवल युयुत्सा ही है । मामूली तौरसे बहुत से मौलिकोंको शुद्धरूपमें बना लेनेके बाद भी बडी होशियारीसे रखना पडता है। फास्फोरसको पानीमें डुबोये रखते हैं, परन्तु तो भी जब कभी उस बोतलकी डाट खोलते है तो धुवाँ निकलती रहती है। सोडियम, पोटासियम, रुबिडियम, सीज़ियम, केलसियम, आदि धातुओंको तो मिट्टीके तेलमें डुबो कर रखते है, तब भी उनपर कडी पर्त (कर्वनेत) की जम जाती है। तांबेका वर्तन साफ करके रखिये, कल ही देखियेगा कि उसकी चमक दमकपर एक हलकी श्याम रगकी चादर ढकी हुई है। लोहेकी चमक भी जगकी जगमें हार मान भाग जाती है और रक्त वर्ण दृश्य रह जाता है। यही हालत प्राय. सभी धातोंकी है। चांदीके वर्तन तो काले पड जाते हैं, इन सब घटनाओंका कारण भी हवाके जुज (अवयव) ओपजन, पानी की वाष्प (नमी) आदि हैं।

पदार्थकी तीन अवस्था

ससारमें पदार्थ मात्र तीन अवस्थाओंमें पाये जाते हैं, अर्थात् ठोस द्रव और वायव्य । मौलिक भी इन तीनों अवस्थाओंमें पाये जाते हैं। सोना, चादी आदि ठोस होते है। पारा और व्रम (व्रमीन) दो द्रव रूप हैं। ओपजन उज्जन आदि वायव्य है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह अवस्थायें परिवर्तनशील है और तापक्रम घटने बढनेसे ठोसका द्रव, द्रवका वायव्य, वायव्यका द्रव, या ठोस रूप हो सकता है। सूर्यके पिंडमें तो लोहा आदि पदार्थ वायव्यके रूपमें वर्तमान है।

खिलौनोंकी कुछ चर्चा

यह हम देख चुके हैं कि ईंटोंकी अन्तरात्मा उन्हें जुट्ट बना कर रहनेको प्रेरणा करती रहती है इसीसे एक ही प्रकारकी या भिन्न भिन्न प्रकारकी ईंटें मिल कर खिलौने बना लिया करती हैं। धातुओंके परमाणु स्वतन्त्र ही रहते हैं। वह मिल मिल कर अणु नहीं बनाते। परन्तु वायव्य मौलिकोंमें प्रायः दो दो परमाणु मिल कर अणु बना लेते हैं, जैसे उज्जन ओषजन नत्रजन आदिके अणु दो दो परमाणुओंके बने हैं। उनको हम इन चिन्हों से व्यक्त कर सकते हैं $उ_2$, $ओ_2$, $न_2$। अतएव जब कभी हम वायव्योंकी परीक्षा करते हैं तो उनके अणुओंकी न कि परमाणुओंकी परीक्षा करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि स्वतन्त्र परमाणुओंकी युयुत्सा और तेजी (Activity) अधिक होती है।

सखियाके अणुमें तीन, फास्फोरसके अणुमें चार, गंधकके अणुमें छः और कर्बनके अणुमें बारह परमाणु पाये जाते हैं।

अणुओंको एक परमाणुक, द्विपरमाणुक, त्रिपरमाणुक आदि उपाधियाँ उनमें विद्यमान परमाणुओंकी सख्याके अनुसार दी जाती है, जैसे कर्बनका अणु द्वादश परमाणुक कहा जाता है।

यौगिक और उनके अणु

जब दो या अधिक भिन्न भिन्न प्रकारके परमाणु मिल कर जुट्ट बनाते हैं तो कहा जाता है कि एक नया यौगिक बन गया। जैसे उज्जनके दो परमाणु ओषजनके एक परमाणुसे मिलते हैं तो एक नया अणु बनाते हैं। यह अणु पानीका

होता है। इसीलिए पानी उज्जन और ओपजनका यौगिक हुआ। यौगिकोंके अणुओंमें कितने परमाणु होने चाहिए इसका कुछ ठीक नहीं। सरलतम अणुओंमें दो परमाणु हो सकते हैं। इससे कम होना सम्भव नहीं। परन्तु जटिल अणुओंमें सैकडों पर नौबत पहुचती हैं। एक अमीनो अम्लके अणुमें ४० कर्बन-के, ८० उज्जनके, १६ ओपजनके और १८ नत्रजनके परमाणु होत हैं इसका अणु सूत्र हुआ क$_{४०}$ उ$_{८०}$ ओ$_{१६}$न$_{१८}$

यौगिक और मिश्रण

यहाँ पर हम इस बातसे सावधान कर देना चाहते हैं कि मिश्रणों और यौगिकोंमें बडा अन्तर है। केवल दो चीजोंके मिला देनेसे ही यौगिक नहीं बन जाता। मिश्रणोंमें अवयवोंके सभी गुण पाये जाते हैं। जो गुण एक अवयवमें हो और दूसरेमें न हो उसकी सहायता से दोनों अवयवोंको अलग कर सकते हैं, परन्तु योगिकोंमें अवयवोंके गुणोंका नाम निशान तक नहीं रहता। एक बिलकुल नई और भिन्न चीज बन जाती ह। उसके सभी गुण, रग, रूप, घुलनशीलता गुरुत्व आदि भिन्न होते हैं। या यो समझिये कि जिन ईंटोंको लिया है वह केवल पास ही पास नहीं रखी रहती, जिसमें उनका रग रूप अलग अलग दीखता रहे। परन्तु घुल मिल कर एक जिगर हो जाती हैं। एक दूसरीमें ऐसी तल्लीन हो जाती ह कि उनमेंसे किसीका भी पता नहीं रहता। यही रासायनिक प्रीतिका (युयुत्ता) परिणाम है, प्रीति ही क्या जिसमें दुई रह जाय।

"मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जा शुदी।
ता कस न गोयद बाद अजाँ, मन दीगरम तो दीगरी॥"

उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। उज्जन और ओषजनके गुणोंपर विचार कीजिये और उनका मिलान पानीके गुणोंसे कीजिये। उज्जन ज्वलनशील (जलने वाला पदार्थ) है ओषजनमें सभी चीजें तेजीसे जलती हैं। अब यदि हम पानीमें आग, यह समझ कर लगायें कि इसमें उज्जन है जल उठेगी तो क्या परिणाम होगा? यदि हम जलता हुआ फलीता पानीमें यह समझ कर डुबोयें कि वह वेगसे जलने लगेगा तो हमें निराश होना पडेगा। फिर विचार कीजिये कि कहाँ तो उज्जन और ओषजन दो हवाएं और कहाँ पानी।

मामूली नमक, सोडियम और हरिनका यौगिक है। साधारणत. दो तोला आप नमक दिनमें खालेते हैं। पर जरा सोचिये कि इसमें जो मात्राएं सोडियम (लगभग पौन तोला) और हरिन (लगभग सवातोला) की हैं, उन्हें अलग अलग खालें तो याद रखिये कि गला फेफडे और दिमाग़ फिर चिरसमाधिष्ठ हो जायेंगे।

एक नया उदाहरण

लोहेका बुरादा और गंधकका चूर्ण लो। एकका रंग भूरा और दूसरेका रंग पीला है। दोनोंको मिला दो। मेल (मिश्रण) का रंग भूरी और पीली झाई लिए हुये होगा। उनका गुरुत्व भी जिस परिमाणमें वह मिलाये गये हैं उससे जाना जासकता है। इस मिश्रणका थोडा अंश लो और उसकेपास एक अच्छा जोरदार चुम्बक थामो। लोहेके कण चुम्बकसे आ चिपटेंगे। इस प्रकार यदि आप चाहें तो लोहा अलग कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि इस मिश्रणका कुछ अंश आप कर्बन द्विगंधिदमें, जो एक प्रकार द्रव है, डालदें तो गंधक तो घुल जायगा और लोहा रह

जायगा। इस प्रकार लोहा अलग हो जायगा। कर्बन द्विगंधिद भी थोड़ी देरमें उड़ जायगा और गंधकके रवे रह जायगे।

आप मिश्रणका कुछ अंश लें और एक परख नलीमें रखकर नीचेसे गरम करें, जब खूब गरम हो जायगा तो देखेंगे कि सहसा बड़ी गरमी उसमें पैदा होती है। गरम करना बन्द कर दिया जाय तो भी क्रमशः यह गरमी ऊपर तक फैल जायगी और ऊपरका ठंडा हिस्सा भी लाल गर्म हो जायेगा। बात क्या है? पहले कुछ गर्मीकी जरूरत थी कि लोहे और गंधकका यौगिक बनना शुरू हो जाय। फिर तो यौगिक बनने में ही इतनी गर्मी पैदा होती है कि शेष भागमें यौगिक बनता चला जाता है। परखनलीको ठंडा हो जाने दीजिये, फिर चुम्बक और कर्बन द्विगंधिदसे परीक्षा करके देखिये। न गंधकका पता चलेगा न लोहेका। रंग भी बिलकुल काला होगा। भारीपन भी अधिक होगा।

दो एक ध्यान देने योग्य बातें

यह तो हम देख चुके हैं कि मौलिक प्रायः बड़े मिलनसार होते हैं। परन्तु जैसा साधारणतः होता है मित्रता तबीयत मिलने पर निर्भर होती है। यदि तबीयतें न मिलीं तो मित्रताका गठन (यौगिकका बनना) असम्भव होता है। यह तो बातें हुईं साधारण अवस्थाकी, परन्तु कभी कभी मक्कारोंके कारण या दबावके कारण मित्रता करनी पड़ती है। यही दशा है स्फोटकों की। बाजे स्फोटकोंके अवयव विलग होनेके लिए तैयार ही रहते हैं। कोई जरासा बहाना चाहिये कि फिर देखिये तमाशा। बाजी दफा मक्खीके बैठ जाने या परसे छू देने या

क़मरेमें दूर चलने में जूते के शब्द होने से ही धड़ाका हो जाता है और बिगड़े दिल यौगिकों के अवयव अलग हो जाते हैं।

जो मौलिक आपसमें मिलकर यौगिक बनाते हैं उनमें भी यह बात देखी जाती है कि वह 'अति सर्वत्र वर्जयेत' का अनुशीलन करते हैं आपसमें मिलनेमें वह सदा नियमित व्योहार करते हैं। अर्थात् जब यौगिक बनायेंगे तो नियमित अनुपातमें मिलेंगे। लोहे और गंधकका जब संयोग होता है तो ७ और ४के अनुपातमें उनकी मात्रायें मिलेंगी। यदि ८ भाग लोहा ४ भाग गंधकके साथ गरम किया जायगा तो एक भाग लोहा बच रहेगा। आपके लाख प्रयत्न करनेपर भी इस अनुपातमें कमी वेशी नहीं हो सकती। लोहे और गंधकके संयोगसे जो यौगिक बनता है उसे लोह गंधिद कहते हैं। लौह गंधिद कहीं भी और किसी भी विधिसे बनाया जायगा यही अनुपात रहेगा। अतएव यह कह सकते हैं कि प्रत्येक यौगिक सदा उन्हीं मौलिकोंके इसी अनुपातमें संयोग होनेसे बनता है। इस नियमको निश्चित अनुपातका नियम कहते हैं।

तीन सौ वर्ष हुये विद्वान प्रयोग करना बहुत नीच कर्म समझते थे। मन गढन्त करनेके सिवा वास्तविक परीक्षा करके सिद्धान्तोंको निश्चित करना वह अनुचित समझते थे। परन्तु धीरे धीरे प्रयोगात्मक विज्ञानका प्रचार बढ़ता गया। और लेवासियाने पहले पहल तराजू काममें लानी शुरू की। उसके बाद ही उपरोक्त नियम डाल्टन द्वारा निर्धारित हुआ।

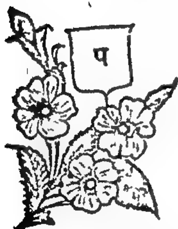
कभी कभी दो मौलिकोंके संयोगसे एकसे अधिक यौगिक बनते हैं? उदाहरणार्थ तांबे और ओषजन के दोनों यौगिक

लीजिये। एकमें तांबेके ८ भाग और ओषजनका १ भाग होता है और दूसरेमें ताम्बेके ८ भाग और ओषजनके दो होते हैं। यह विचारणीय है कि तांबेके ८ भागके साथ ओषजनके एक या दो भागका ही संयोग होता है। एक और दोके बीचमें किसी मात्राका संयोग तांबेके ८ भागसे नहीं हो सकता। यह नियम अन्य यौगिकोंमें भी पाया गया है। अतएव हम कह सकते हैं कि—जब एक मौलिक दूसरे मौलिकके साथ मिल कर एकसे अधिक यौगिक बनाता है तो दूसरे मौलिककी भिन्न मात्राओंका, जो पहलेकी एक निश्चित मात्रासे संयोग करती हैं, आपसमें सरल संबंध होता है; अर्थात् अनुपात १ २, २ ३ आदि होता है। इस नियमको अपवर्त्य अनुपातका नियम कहते हैं।

इन्हीं दो नियमोंको निर्धारित करनेके बाद डाल्टन महोदयको यूनानियोंका परमाणुवाद याद आया। इनकी व्याख्या सिर्फ एक तरीकेसे हो सकती थी, और वह तरीका परमाणुओं की आस्तिकतामें विश्वास करना था। परमाणुओंका जो हाल पहिले दिया जा चुका है वह डाल्टन महोदयके परमाणुवादके अनुसार ही है। डाल्टन महोदय केवल परमाणुओंको ही मानते थे। इनके मतानुसार मौलिकोंके परमाणु अविभाज्य हैं और यौगिकोंके विभाज्य। परन्तु आगे चलकर बहुत प्रयोगोंकी व्याख्या करनेके लिए अवोगडरो महोदयने अणुकी कल्पना की। उनका मत था कि परमाणु केवल मौलिकोंके होते हैं और वह अविभाज्य होते हैं। पर अणु मौलिक तथा यौगिक दोनोंके होते हैं। मौलिकोंके अणुओंमें केवल एक ही तरहके परमाणु होते हैं। परन्तु यौगिकोंके अणु भिन्न भिन्न प्रकारके परमाणुओंके संयोगसे बनते हैं।

भार जान लेते हैं, जिसकी विधि अगले लेखोंमें दी जायगी। यहाँ यह कह देना उचित है कि उज्जनके परमाणुका भार १ मान कर अन्य परमाणुके भार निकाले जाते हैं। इस हिसाबसे ओषजनका परमाणु भार १५.८८ होता है। परन्तु प्रयोगोंमें गणित करनेमें इस संख्यासे असुविधा जान पड़ती है। इसीसे ओषजनका परमाणु भार १६ मान लेते हैं और तदनुसार उज्जन तथा अन्य मौलिकोंका परमाणु भार निकालते हैं।

अणु संसारकी सैर



पटाश परमैंगनेटका एक चांवलके बराबर रवा लीजिये और थोड़ेसे पानीमें घोल कर एक डेग भर पानीमें डाल दीजिये। डेगका पानी रंगा हुआ नजर आयगा। इस पानीकी प्रत्येक बूंदमें रंगका अंश मौजूद है। डेगका पानी लाखों बूंदोंके बराबर है, इसलिए यह कहना पड़ेगा कि इस छोटेसे रवेके लाखों टुकडे हो गये।

पदार्थका गुण है कि उसके भाग विभाग किये जा सकते हैं। परन्तु क्या इस प्रक्रियाका कभी अन्त भी होता है? क्या किसी भी वस्तुके असंख्य टुकडे किये जा सकते हैं?

ऊपरके उदाहरणसे मालूम होता है कि एक रवेके लाखों टुकड़े हुए, परन्तु यह ठीक पता न लगा कि कितने टुकड़े हुए

या हो सकते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंने पदार्थोंके बहुत छोटे छोटे टुकडे किये हैं, जिनके दो उदाहरण दिये जाते हैं। सोनेके पत्र इतने बारीक बनाये गये हैं कि ३०००७० पत्रोंकी मोटाई १ इञ्च होती है। वालेस्टनने प्लाटीनम धातुका ऐसा तार खींचा था कि जिसका व्यास $\frac{१}{३००००००}$ इञ्च था।

सुगन्धित पदार्थोंकी सुगन्ध आप तक उन छोटे छोटे अंशों द्वारा पहुँचती है, जो उससे उडकर आप तक आते हैं। यदि इन अंशोंका आप तक पहुँचना बन्द कर दिया जाय तो आपको खुशबू भी न आयगी। ऐसा पदार्थको डिब्बेमें अच्छी तरहसे बन्द करनेसे हो जाता है।

कस्तूरीके सम्बन्धमें लेस्लीने (Leslie) स० १८८० वि०में यह बतलाया था कि उसका एक रत्ती भरका टुकडा २० वर्ष तक खुशबू देता रहता है। उनका अनुमान था कि इस कालमें उसके ३२० सख (Quadrillion) टुकडे हो जाते हैं। टेट (Tait) ने लिखा है कि यद्यपि यह नहीं मालूम कि लेसलीने इस शब्दका किस अर्थमें प्रयोग किया है, किन्तु उनका अनुमान आधुनिक गवेषणाओंके सर्वथा अनुकूल है। लेसलीके अनुमानसे यह मालूम होता है कि पदार्थके टुकडे किये जानेकी सीमा है। प्रत्येक पदार्थके ऐसे छोटे टुकडे होते हैं, जिनके और अधिक छोटे टुकडे नहीं हो सकते। इन्हींको अणु कहते हैं।

यौगिकोंके प्रत्येक अणुमें उसके अवयवी मौलिकोंके अंश रहते ही हैं, इन्हीं न्यूनतम अंशोंको परमाणु कहते हैं। प्रत्येक अणु एक या अधिक और एक या अनेक जातियोंके परमाणु-

ओंका सग्रह मात्र है। पदार्थके गुण उसके अणुओंमें विद्यमान रहते हैं। वस्तुतः जिन्हें हम पदार्थ के गुण कहते हैं वह उसके अणुओंके गुण ही होते हैं।

यौगिकोंके सम्बन्धमें तो यह समझ लेना कठिन न होगा कि जब परमाणुओंके संयोगसे अणु बनता है तो उसमें नये और निराले ही गुण पाये जाते हैं। इस बातकी चर्चा पिछले अध्यायमें विस्तारसे उदाहरण देकर कर आये हैं। मौलिकोंके सम्बन्धमें भी यह बात सिद्ध है। एक लम्बी नलीमें खड़िया रख कर उसमें उज्जनका प्रवाह कराइये। खड़िया पर उज्जनका कुछ प्रभाव न होगा। अब एक कुप्पीमें खड़िया रख कर यशदके टुकड़े और पानी डाल दीजिये और उसमें कलिका नली और शुष्कक नली सहित काग लगा दीजिये। कलिका नली द्वारा गंधकाम्ल छोड़िये। जो उज्जन पैदा होगी वह खड़िया-के साथ मिलकर एक यौगिक बना लेगी। उज्जनके व्यव-हारमें यह अंतर कैसे हुआ? कारण यह है कि उज्जनके परमाणु मिलकर अणु बनानेका अवकाश ही नहीं पाते, तुरन्त ही वह खड़ियासे प्रति क्रिया कर यौगिक बना लेते हैं। यदि उज्जनके परमाणु अणु बना ले तो वह फिर खड़ियाके साथ यौगिक बनानेकी सामर्थ्य खो देते हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि परमाणु, अणुओंकी अपेक्षा अधिक क्रिया शील होते हैं।

अणु कितने बड़े होते हैं?

अणु और परमाणुओंका होना केवल कल्पना ही नहीं है, वैज्ञानिकोंने इनको गिना है, इनका भार निकाला है और इनका व्यास नापा है। स्थूल रीतिसे उनके आकारका अन्दाज़ा नीचे लिखे उदाहरणोंसे लगाया जा सकता है।

केट महोदय लिखते हैं—"यदि एक घन इञ्च पानी किसी विधि इतने बड़े आकारका दीखने लगे कि उसका प्रत्येक इञ्च पृथ्वीके व्यासके बराबर प्रतीत होने लगे तो पानीका प्रत्येक अणु एक घन इञ्चका दीख पड़ेगा।"

क्लिफर्डका मत है कि यदि कोई अणुवीक्षण ऐसा बनाया जाय कि उससे कोई वस्तु अपने आकारसे ६५०००००० गुनी बड़ी दीखने लगे तो हम उस यन्त्रसे पानीके अणु देखनेमें समर्थ हो सकें।

पाँच करोड़ अणु यदि एक पंक्तिमें रख दिये जायँ तो उनकी लम्बाई एक इञ्च होगी।*

उद्जनके २० करोड़ परमाणु एक पंक्तिमें रखने पर एक इञ्च लम्बे प्रतीत होंगे और २० शंख (२००००००००००००००-०००००००००) परमाणुका भार १ चावलके पचीसवें भागके बराबर होगा।

डा० जान्स्टन स्टोनीने १८६८ में फिलोसोफिकल मेगेजीनमें लिखा था —

'एक घन सहस्रांश मीटर—जो शायद एक आलपीनके सिरेके बराबर होगा—यदि किसी विधि १०००००००००० गुना बड़ा दीखने लगे तो उसका आकार पृथ्वीके बराबर प्रतीत होगा। इस हिसाबसे यदि पृथ्वी और उसके वायुमण्डलका आकार भी बढ़ाया जाय तो इसके अणुओंका परस्पर अन्तर ११ गजके लगभग दीखेगा। उनका आकार चलते फिरते आदमियों और पशुओंका सा दीख पड़ेगा। उनके अवयवी परमाणुओंकी गति वैसी ही दीख पड़ेगी जैसे मनुष्य आदि

* J Cox "Beyod the Atom" pp 10

प्राणियोंका हृदय स्पन्दन अथवा अंग सचालन। मुठभेड होनेके लिए प्रत्येक अणुको प्राय ७०० गज चलना पडेगा। उनका आरम्भका पारस्परिक अन्तर एक खास लम्बे चौड़ शहरकी विशाल सडकोंकी चौडाईके बराबर होगा और मुठभेड होनेके पहले उन्हे प्राय एक लम्बी गलीकी दूरी तै करनी पडेगी।"

ओषजन और उज्जनके सम्बन्ध की कुछ नाप यहां दी जाती हैं।—

	उज्जन	ओषजन
अणु-भार (यदि उज्जनका एक मान लें तो)	१	१६
०°शपर मध्यम गति	१८४६ मीटर	४६५ मीटर
मध्यम मान अन्तराणु स्थानका	९६५×१०^{-७} सहस्राश मीटर	५६०×१०^{-७} स० मी०
एक सैकण्डमें टक्करों की संख्या	१७७५०	७६४६
व्यास	५८×१०^{-७} स० मी०	७६×१०^{-७} स० मी०
मात्रा	४६×१०^{-२५} ग्राम	७३६×१०^{-२५} ग्राम

अणु घूमते हैं कि ठहरे हुए हैं?

हम ऊपर कह आये हैं कि अणु बराबर घूमा करते हैं, परन्तु अभी तक हमने इस बात पर विचार नहीं किया कि ऐसा माननेकी क्या आवश्यकता थी। इसके बतलानेके लिए तीन प्रयोग नीचे दिये जाते हैं।—

(१) सन् १८९३ में रोबर्ट ऑस्टिनने (Robert Austin) बतलाया कि यदि दो टुकडे सोने और सीसेके पास पास

† J Cox—Beyond the Atom pp 10

रखे जांय तो थोड़े दिनोंमें सोनेमें सीसेके और सीसेमें सोनेके अंश पाये जायगे।

(२) एक छोटी बोतल लीजिये; उसे नीले थोथेके घोलसे भर दीजिये और उसका मुंह कांचके टुकडेसे ढक दीजिये। इसके बाद उसे किसी बर्तनमें रखकर बर्तनको पानीसे भर दीजिये। अब बोतलके मुंह परसे कांचका टुकडा आहिस्तासे हटा दीजिये, कुछ घंटोंमें नीला रङ्ग बर्तन भरमें फैल जायगा।

(३) दो गैस जार (वायुघट) उज्जन और ओपजनसे भरे हुए लीजिये। वायुवाले घटको नीचे रख कर उज्जनवाला उसपर औंधा दीजिये। थोडी सी ही देरमें परीक्षा करने पर नीचे वाले वायुके घटमें उज्जन और ऊपर वालेमें वायु मिलेगी।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि सोनेके अंश सीसेमें और सीसेके सोनेमें कैसे पहुंच गये? यद्यपि नीले थोथेका घोल पानीसे भारी है तो भी उसका कुछ अंश पानीमें ऊपरकी तरफ प्रयाण कर गया और पानी नीला हो गया। भारी वायु हलकी उज्जनमें ऊपरकी ओर का जा मिली यद्यपि भारी वस्तुका नीचे रहना और हलकीका ऊपर रहना एक सामान्य नियम है।

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए हमको यह मानना पडेगा कि पदार्थोंके अणु बराबर घूमते रहते हैं। सोनेके अणु घूमते घूमते सीसेके अणुओंमें आ मिले और इसी प्रकार सीसेके अणु सोनेके टुकडेमें जा घुसे परन्तु इनके ठोस होनेके कारण अणु उनके बाहर बडी कठिनतासे जा सकते हैं। इसी लिए सोनेमें सीसा बरसोंमें पहुंच पाता है।

गौसें यों रेडके अणु भी घूमते हैं। घूमते घूमते बोतलके बाहर निकल आते हैं और पानीको रङ्ग देते हैं। उधर पानीके अणु भी बोतलमें आते जाते रहते हैं।

पानी द्रव है, इसलिए उसके अणु घूमनवाले बोतलके बाहर आ जाते हैं और थोड़े ही घटोंमें पानीको रग देते हैं।

उज्जन और वायुके कण और भी वेगसे घूमते हैं। इस कारण वह थोड़े ही मिनटोंमें आपसमें मिल जाते हैं।

पदार्थकी तीन अवस्था

पदार्थ हमें तीन अवस्थाओंमें मिलते हैं—ठोस, द्रव और गैस। प्रायः प्रत्येक पदार्थ (विशेषतः मौलिक) इन तीनों अवस्थाओंमें रह सकता है। अवस्था केवल दबाव और तापक्रम पर निर्भर है। पानी ठंडा करने पर बरफमें बदल जाता है और गरम करने पर भाप बनकर उड़ जाता है। यह हम देख ही चुके हैं कि गैसोंके अणु बड़े वेगसे, द्रवोंके कुछ कम वेगसे, ठोसोंके अत्यन्त कम वेगसे घूमते हैं।

ठोस अवस्थामें अणु घूमते अवश्य हैं परन्तु वह अपने स्थानसे अधिक दूरतक इधर उधर नहीं जा सकते। थोड़ेसे अणु एक केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। प्रत्येक वस्तुमें ऐसे अणु समूह बहुत से होते हैं। कभी कभी ऐसे एक समूह से कोई अणु दूसरे समूहमें प्रवेश कर जाता है और उसमें चक्कर लगाने लगता है और कभी कभी वह घूमता घूमता बाहर भी निकल जाता है।

ठोस वस्तुके अणुओंकी दशा वैसे ही होती है जैसी कि किसी जेलखानेके कैदियोंकी होती है। जेलमें बहुत सी कोठरियां होती हैं, जिनमें कैदी बन्द रहते हैं; यह कैदी अपनी

अपनी कोठरियोंमें ही घूमते हैं, परन्तु कभी कभी कोई कैदी जेलसे निकल भी भागता है।

अणुओंके चक्कर लगानेका कारण उनका तापक्रम है। जितना तापक्रम अधिक होगा, उतनी ही अधिक तेजीसे अणु चक्कर लगायगे। यदि तापक्रम बहुत बढ़ा दिया जाय तो अणु अपने समूहों को तोड़कर स्वतन्त्र रूपसे वस्तुके अन्दर चक्कर लगाने लगते हैं, तभी ठोसका द्रव हो जाता है।

द्रवके अणु चक्कर लगानेके अलावा ढुलक भी सकते हैं। जिस बर्तनमें द्रव रक्खा हो उसके एक छोरसे दूसरे छोर तक कोई भी अणु पहुँच सकता है परन्तु प्राय दूसरे अणु या अणुओंसे टक्कर खाकर वापस चला आता है। ऊपर दिये हुए गुणोंसे प्रतीत होगा कि द्रवके अणुओंमें दो प्रकारकी गति होती है।

दुलकनेकी गति कहांसे और कैसे प्राप्त होती है?

पाठकोंको यह मालूम होगा कि यदि किसी ठोस वस्तु, जैसे मोम को गरम करें तो उसका तापक्रम बढ़ता जायगा। इस दशामें जो गरमी मोम तक पहुँचती है वह उसके तापक्रम बढ़ाने अर्थात् अणुओंका वेग बढ़ानेमें खर्च होती है। परन्तु जब मोम पिघलने लगेगा तो तापक्रमका बढ़ना तब तक बन्द रहेगा जब तक कि कुल मोम पिघल न जायगा। इस अन्तर-में जो गरमी मोममें पहुँचती रही उसका क्या हुआ? इसको द्रवणकी गुप्त ताप कहते हैं। यह गरमी दो प्रकारसे खर्च होती है। प्राय पिघली हुई चीजका आयतन पहलेकी अपेक्षा जब वह ठोस थी बढ़ जाता है। आयतन जब बढ़ने लगता है तो बाहरी पदार्थोंको हटाना पड़ता है (साधारणतया वायुको)।

इसमें कुछ गरमी खर्च होती है। शेष गरमीसे नयी प्रकारकी गति भी अणुओंको प्राप्त होती है।

द्रव क्यों उड जाते हैं?

प्रायः सभी जानते हैं कि पानी साधारण रीतिसे उडता रहता है। यदि ऐसा न होता तो हमारी गीली धोतियाँ कभी न सूखतीं। अब प्रश्न यह है कि पानी क्यों उडता है?

पानीके अणु घूमते रहते हैं, किन्तु सबका एक सा वेग नहीं होता। अधिकांश अणु तो प्रायः समान वेगसे ही घूमते रहते हैं, किन्तु कुछ बहुत अधिक वेगसे और कुछ कम वेगसे। अधिक वेगवाले कण जब घूमते घूमते ऊपरी तल तक आ जाते हैं तो उनमेंसे कुछ तलकी चादरको चीरकर वायु मंडल का परदा खोल कर आकाशमें विचरने लगते हैं। इस प्रकार प्रतिक्षण कुछ न कुछ अणु द्रवमेंसे उडते रहते हैं। इसी क्रिया को वाष्पी भवन कहते हैं। अब यदि द्रवका तापक्रम बढ़ा दिया जाय तो सभी अणुओंका वेग बढ जायगा और अधिकाधिक अणु द्रवमेंसे निकलकर वायु मंडलमें प्रवेश करने लगेंगे।

पानीके अणुओंको बर्तनके अन्दर रखनेवाली तीन चीजें हैं। (१) अणुओंका पारस्परिक आकर्षण। यह ठोसोंमें सबसे अधिक होता है, (२) तल-तनाव (Surface tension)। प्रायः आपने देखा होगा कि जब कभी कोई हल्की वस्तु पानी पर गिरती है तो उसकी सतह पर पहले ऐसी शुल झट पड जाती है जैसी किसी तनी हुई चादर पर। धीरेसे किसी छोटी सुईको पानीकी सतह पर छोडकर तैरा भी सकते हैं। (३) वायुका दबाव (atmospheric pressure) तापक्रम बढानेसे सभी अणु वेगसे चल कर एक दूसरेके आकर्षणको वैसे ही खयालमें नहीं लाते जैसे

अभिमानी मनवाले अपने घमण्डमें समाजके बन्धनोंको तोड़ डालते हैं। इन अणुओंके लिए तल तनाव भी रुकावट नहीं डालता, दूसरे तल तनाव भी तापक्रम बढने पर घटता जाता है। अब इनको रोकने वाली एक वस्तु रह गयी। वह है वायु-का दबाव। परन्तु तपक्रम बढनेसे अणुओंका वेग बढता रहता है और एक विशेष तापक्रम पर द्रवके अणुओंमेंसे अधिक वेग वाले अणुओंका झोक वायुके दबावके बराबर हो जाती है; तब तो अधिक वेग वाले अणु स्वच्छन्दतापूर्वक द्रवमेंसे निकल वायुमण्डलमें प्रवेश कर सकते हैं। इस घटनाको उबलना या खौलना कहते हैं और यह विशेष तापक्रम उबाल विन्दु कह-लाता है। अतएव किसी द्रवका उबाल विन्दु वह तापक्रम होता है जिसपर द्रवके वाष्पका दबाव वायुमण्डलके दबावके बराबर हो जाता है।

यदि द्रवको किसी बरतनमें रखकर उस बरतनकी हवा वायु पम्प द्वारा निकालना आरम्भ करें तो द्रव तल पर वायु-का दबाव घटता जायगा। अन्तमें वह इतना कम हो जायगा कि द्रवके वाष्पीय चापके बराबर होगा, तभी द्रव खौलने लगेगा। इस तरकीबसे द्रवोंको जिस तापक्रम पर चाहें खौला सकते हैं। पानीका उबाल विन्दु १००°श है, किन्तु उपरोक्त विधिसे जिस तापक्रम पर चाहें उसे खौला सकते हैं। यह तर-कीब भी बड़े कामकी है। बहुत से द्रव ऐसे होते हैं कि ज्यादा आंच देनेसे उनका विघटन होने लगता है। उनको जब शुद्ध करना होता है तो इसी विधिसे कम आंच देकर ही खौला लेते हैं और टपका लेते हैं।

है ही, किन्तु जब अवयवी विद्युत् कणोंकी गतिकी ओर ध्यान देते हैं तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती।

विद्युत् कण एक लाख मील प्रति सैकण्डके वेगसे भ्रमण करते हैं! कल्पना इस बातको स्वीकार न करे, किन्तु मस्तिष्क इसीको ठीक बतलाता है। प्रत्येक पत्थर और लकड़ीके कण कणमें यह विद्युत् कण इसी कल्पनातीत वेगसे भ्रमण करते रहते हैं। सृष्टिके आरम्भसे यही वेग रहा और महाप्रलय तक शायद इनका यही वेग रहेगा।

निस्तब्ध वायु है, सायकालका समय है। एक शान्त सरोवरके तटपर खड़ा हुआ एक व्यक्ति तटस्थ वृक्ष और अस्ताचल गामी प्रभाकरकी अन्तिम लालिमाका मनोहर प्रतिविम्बित दृश्य देख रहा है। कितना शान्त जल तल है, किन्तु ज्ञानकी चक्षुसे देखिये, इस बाहरी शान्तिकी चादरसे कितनी अशान्ति ढकी हुई है। जलके प्रत्येक भागसे करोड़ों अणु झपट कर इधर उधर जा रहे हैं। इनमेंसे कुछ ऊपरकी ओर भी प्रयाण करते हैं, इनमेंसे भी कुछ तो तलके तनाव और वायुके दबावसे ठुकरा कर वापिस लौट आते हैं, किन्तु कुछ मनचले इन बाधाओंका बंधन तोड़ वायु मण्डलमें विचरनेके लिए निकल पड़ते हैं। इन्हींके आवेगसे जल-तल लाखों छोटे छोटे फव्वारोंका रूप धारण कर रहा है। असख्य लहरें और भँवर इनके द्वारा उत्पन्न होकर शान्ति भङ्ग कर रही हैं। यह शान्त सरोवर भी अशान्त महासागरसे कम नहीं है। इसी अशान्तिका ध्यान करनेसे ही परम शान्ति प्राप्त होती है।

आकाशी दूत अर्थात् टूटनेवाले तारे



रे टूटते किसने न देखे होंगे। कभी कभी तारा टूटकर पृथ्वीपर गिरता है और लोग भाग उसे उठा लेते हैं। यद्यपि उल्कापात अनादिकालसे होता रहा है, तदपि इस बातका विश्वास कि आकाश-से पत्थर या लोहेके टुकडे गिरते हैं सर्व-साधारण तथा वैज्ञानिकोंको बडी कठि-नाईसे हुआ। कुछ दिन पहले अद्भुतालय में जो उल्काओंके नमूने रहते थे वह छिपाकर रखे जाते थे, ताकि दर्शक रक्षकोंका उपहास न करें। पूर्वकालमें जब कभी उल्का पाये जाते भी थे, तो उनको बडी श्रद्धासे रखकर पूजा किया करते थे। फ्रिगिया-में (Phrygia, Asia Minor) विक्रमसे २०० वर्ष पूर्व एक पत्थर आकाशसे गिरा था। इसको देवताओंकी माता सिबिली (Cybele) मानकर पूजा की जाती थी। उसी समय किसीने यह भविष्यद्वाणीकी कि इस पत्थरके रखनेसे रोमवालोंकी खुब समृद्धि होगी। अतः राजा एटेलसने फ्रिगियावालोंसे इस पत्थरको मागा और बडे समारोहसे उसे रोममें ले जाकर रखा। इतिहासकारोंने लिखा है कि इस पत्थरका आकार वृत्तसूचीका सा था। प्लुटार्कका कथन है कि यह ४१४ वर्ष विक्रमसे पूर्व, पिंडार के कालमें आकाशसे गिरा था, यह लिनी-के समय तक (५०० वर्ष पीछे तक) सुरक्षित था। एफीशियन्स-की (Ephesians) डायनाकी (Diana) मूर्ति और सायप्रस नगर की शुक की मूर्ति भी वृत्तसूची के आकारके पत्थर थे, जो आकाशसे गिरे थे।

एक और पत्थर सातवीं शताब्दीमें गिरा, जो कावेमें अभी तक सग अस्वतके नामसे पूजा जाता है। बृहदाकार केसेस ग्रांडी (Casasgrandes) उल्का मेक्सिकोमें पाया गया था, जिसका वजन ४० मनके लगभग है। जिस समय यह मेक्सिकोके एक खंडहरमें पाया गया था तो इसपर बहुत से कफनके टुकड़े चढ़े हुए थे जिनसे ज्ञात होता है कि इतिहासिकालसे पूर्वके वाशिन्दे इसे बड़ी श्रद्धासे पूजते थे।

पूर्वोक्त उल्काओंके विषयमें दृढ़ निश्चय नहीं है कि यह वास्तवमें उल्का ही है, पर दो उल्काओंके सम्बन्धमें जो एलबोजिन (बोहेमिया) और एन्सिशियम्में (जर्मनी) सुरक्षित है, यह निश्चित है कि वह वास्तविक उल्का हैं। इनमेंसे पहिला लोह है और अन्तिम पत्थर। पहिला लोह १४०० सं० वि० के लगभग पाया गया था, पर १८६६ वि० में जाकर उसका उल्का होना सिद्ध हुआ। एलबोजिनके रथहाउसमें कई सौ वर्षसे यह रखा हुआ है। एन्सिशियमवाला पत्थर १४९२ ई० की १४ नवम्बरको गिरा, उसी समयके लगभग जब कोलम्बस अपनी खोज कर रहा था। इसके गिरनेके समय वज्रपातका सा घोर नाद हुआ। यह गिरते हुए देखा गया था, और शीघ्र ही खोदकर निकाला गया, क्योंकि यह जमीनमें ५ फुट घुस गया था। इसका वजन ३। मन है यह बहुत दिनों तक एक गिरजाकी छतसे लटका रहा, तदनन्तर उस नगरके रथहाउसमें रखा गया।

अन्तिम घटना जैसी सच्ची घटनाओंसे कमसे कम वैज्ञानिक संसारमें तो विश्वास हो जाना चाहिये था पर ऐसा नहीं हुआ और इतने दिन पीछे १८२६ में भी फ्रांसीसी विज्ञान

परिषद्की, एक उपसमितिने उस उल्काके विषयमें एक रिपार्ट तैय्यार की जो चार वर्ष पहिले लूसमें गिरा था और यह निर्णय किया कि वास्तवमें वह उल्का नहीं था, वरन् किसी चट्टानका टुकड़ा था जो वज्रपातसे टूटकर गिर गया था।

१८५१ वि० में जर्मन वैज्ञानिक च्लेडिनीने उल्काओंपर एक निबन्ध लिखा, जिसमें उसने उन सब उल्काओंका वर्णन किया जो उस समय तक मालूम थे और वैज्ञानिक संसारका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि संभवत आकाशसे लोहेके टुकड़े पृथ्वीपर अवश्य पड़े होंगे। उसने विख्यात पेल्लेस लोहका (Pallas Iron) भी वर्णन किया, जो १८५८ वि० में किसी कोसेक (रूसी क्षत्रिय) को सैबीरियामें क्रेसनोजार्स्क (Krasnojarak) के पास किसी ऊंचे पर्वत शिखरपर मिला था। च्लेडनीने इस बातपर जोर दिया कि यह लोह न तो आग लगनेसे बन सकता है, न कोई मनुष्य उसको वहां छोड़ गया होगा क्योंकि वहां तक उसका ले जाना ही दुष्कर है। यदि यह कहा जाय कि किसी ज्वालामुखीने उसको उगला होगा, तो इसका समाधान यों किया जा सकता है कि उस पर्वतके आसपास कोई ज्वालामुखी नहीं है; न संसारमें कोई ऐसा ज्वालामुखी पर्वत हीहै जो लोह उगलता हो। अत हमको यह मानना पड़ता है कि यह आकाशसे ही गिरा होगा।

उसी वर्ष इटलीमें सीनाके पास उल्काओंकी बौछार हुई और उसके दूसरे साल स्वच्छ निर्मल आकाशसे २८ सेरका एक पत्थर एक खेतम काम करनेवालेके पैरोंके पास गिरा। १८५५ वि० में काशीमें भी कई पत्थर आकाश से गिरे।

इन सब प्रमाणोंको भी माननेके लिए वैज्ञानिक संसार तैय्यार न था, पर सौभाग्यसे १८६० वि० के चैत्रमें, पेरिसके निकट ल' एलके आसपास फिर तीन हजारसे अधिक उल्काओंकी बौछार हुई। इस घटनाकी भी जाच की गई पर यह घटना इतनी सच्ची प्रत्यक्ष और सुप्रमाणित थी कि वैज्ञानिक संसारको मानना पडा कि उल्का निस्सन्देह आकाशसे ही गिरा करते हैं।

उल्का पात कैसे होता है ?

जब कभी उल्कापात होता है तो प्रायः शब्द भी हुआ करता है, जो बन्दूकों तोपों या वज्रपातके सदृश होता है। यदि पतन रात्रिमें होता है तो प्रकाश भी होता है और छुरीके मार्गके सदृश प्रकाशित मार्ग दीखता है। जबतक उल्का आकाशमें रहता है, वह किसी पदार्थसे रगड नहीं खाता पर वायुमण्डलमें घुसते ही वायुके साथ सघर्षण होनेसे उल्कामें गरमी पैदा होती है, जो कभी कभी इतनी अधिक होती है कि उल्का उत्तप्त हो जाता है और जलने भी लगता है। यदि बहुत छोटा हुआ तो गर्मीके कारण या तो उल्का वायुमें ही जलकर भस्म हो जाता है या उसका ऊपरी भाग थोडासा गलकर कांचकीसी शकलका हो जाता है। जो उल्का बडे होते हैं उनमें सहसा ताप प्रकट होने और उनपर वायुका दबाव पडनेसे उनके बहुतसे टुकड़े हो जाते हैं। अत प्राय' पृथ्वीपर बड़े उल्का बहुत कम गिरते हुए देखे गये हैं। प्रायः छोटे छोटे टुकडोंकी ही वर्षा हुआ करती है।

उल्काओंका वेग

जितने वेगसे उल्का पृथ्वीपर पहुँचेगा उतना ही अधिक

पृथ्वीमें धसेगा। भिन्न भिन्न वैज्ञानिकोंने २ से ४५ मीलतकका वेग बतलाया है। न्याहिन्य (हंगरी) में एक ८६ मनका उल्का गिरा था। यह पृथ्वीमें ११ फुट धस गया था। इससे अधिक धसा हुआ उल्का अभीतक नहीं पाया गया है। इससे भी भारी भारी उल्का पृथ्वीपर इस प्रकार पडे हुए पाये गये हैं जिससे मालूम होता है कि वह तनिक भी पृथ्वीमें नहीं धसे।

उल्काओंका तापक्रम

इस सम्बन्धमें जितनी बातें कही जाय उनपर सोच समझकर विश्वास करना चाहिये, क्योंकि अबतक जितनी बातें कही गई हैं, वह एक दूसरीसे विरुद्ध हैं।

कुछ पत्थर जो स्टौरियामें १८१६ वि०में गिरे उनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि पांच सेकंडसे अधिक तक वह लाल उत्तप्त दशामें रहे, और पाव घण्टेतक इतने गरम थे कि उनका छूना मुश्किल था। पर धर्मशालापर गिरा हुआ पत्थर गिरते ही उठा लिया गया था और बहुत ही ठंडा पाया गया था।

उल्का पातसे आग लगनेकी खबरें भी विश्वसनीय नहीं हैं।

अलीगन और विनीवगोमें यद्यपि उल्का पात सूखी घासपर हुआ, तदपि घास न झुलसी और न उसमें आग लगी।

इन गिरनेवाले पत्थरोंके आघातसे मनुष्यों और पशुओंका मरना भी सम्भव है। यद्यपि १५६८ वि०से लेकर १७३१ तककी कुछ ऐसी घटनाएँ सुननेमें आई हैं, पर हालमें ऐसी घटनाएँ नहीं हुईं और इसीलिए पुरानी घटनाओंपर संदेह होता है।

दूसरे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि नगरोंका वर्गक्षेत्र समस्त पृथ्वीतलके वर्गक्षेत्रकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ा है। इसलिए उल्काओंके नगरोंमें गिरनेकी उतनी ही कम सम्भावना है। अभी वर्णन कर चुके हैं कि योर्कशायरमें एक मजदूरके पास ही (१० गजके फासलेपर) पत्थर गिरा था। मिडिल्जबरोमें रेलवे लैनपर काम करनेवालोंसे ४० गजपर पत्थर गिरा, चारसनविलि (Charsonville) में दो गाड़ीवालोंके बीचमें एक उल्का गिरा और उसके गिरनेसे मट्टी छः फुट ऊंची उड़ी। क्राहिनबर्गमें (Krahenberg) पत्थर एक छोटी बालिकासे कई कदमकी दूरीपर पड़ा। एनगसमें (Angers) एक महिला अपने बाग़में खड़ी हुई थीं, उनके पास ही उल्का गिरा। ब्रोनोमें (Braunau) एक मकानकी छत फोड़कर उल्का अन्दर गिरा। मेकोआमें (Macao) पत्थरोंकी वर्षा हुई जिससे कई बैल मारे गये। भारतवर्षमें नदगोला में उल्कापात एक मनुष्यके इतने पास हुआ कि वह बेहोश हो गया। प्रयाग में भी तीन चार वर्ष हुए दोपहर के वक्त कलक्टरी कचहरी में दो उल्का गिरे थे, इतनी घटनाओंमें कोई मनुष्य नहीं मरा, पर १८८४ वि० में मऊकी छावनीमें एक पत्थर के गिरनेसे मनुष्य मरा था।

६५० से अधिक उल्कापातोंका समाचार अभीतक ज्ञात हुआ है। सबसे बड़ा उल्का जो अभीतक पाया गया है वह है जो कमान्डर पियरी केपयोर्क (ग्रीनलैण्ड) से लाये थे। इसका बोझ ६११। (नोसौ, ग्यारह) मन है।

उल्काओंमें क्या क्या पदार्थ पाये जाते हैं

उल्का प्राय: तीन जातिके माने जाते हैं।

(१) लोह निर्मित (Siderites)—इनमें अधिकांश लोहा या निकिल पाया जाता है।

(२) पाषाण निर्मित (Aerolites)—यह केवल पत्थरके से टुकड़ोंके बने होते हैं।

(३) लौह पाषाण (Siderolites)—इनमें लोहा और पत्थर दोनों पाये जाते हैं।

पहिली और दूसरी जातिके बहुत उल्का पाये गये हैं, पर तीसरी जातिके केवल नौ उल्का अभीतक मिले हैं। लोहेके अतिरिक्त थोड़ी थोड़ी मात्राओंमें और भी अनेक मौलिक उल्काओंमें पाये जाते हैं। एलुमिनियम्, केलसियम् (खटिक), कर्बन, मेग्नीसियम्, निकिल, ओषजन, फास्फोरस सिलिकन, और गन्धक विशेषत पाये जाते हैं। कभी कभी सुर्मा, संखिया, हरिण, क्रोमियम, कोबाल्ट, तांबा, उज्जन, मैंगनीज, पोटासियम, सोडियम् टाइटेनियम, वेनेडियम भी पाये जाते हैं। सोना, चांदी, प्लेटिनम, इरिडियम, सीसा, गेलियम भी दो एक बार उल्काओंमें पाये गये हैं। डाक्टर मिलरके कथनानुसार अभी तक उल्काओंमें ऐन्द्रिक पदार्थोंके अंश नहीं पाये गये। अतएव यह आकाशी दूत अभीतक इस पृथ्वीके अतिरिक्त किसी अन्य स्थानपर जीवोंके रहने सहने या पैदा होनेका सन्देसा नहीं लाये हैं।



कोकेन—मनुष्य जातिका एक भयानक शत्रु



स वस्तुका नाम सुनकर प्राय लोगोंके कान खडे हो जाया करते हैं। इसके सवन्धमें बहुत सी कहानिया मशहूर हैं। इस प्रान्तके शहरोंमें यह खुल्लम खुल्ला बिका करती है और कुछ नवयुवक पानके बीड़ोंमें रखकर इसका सेवन करते हैं और इसी कारण इसका दाम मनमानी लिया जाता है। परन्तु हममेंसे बहुत कम लोग जानते होंगे कि यह क्या है और इसके दुरुपयोगसे कितनी हानि पहुँचती है।

कोकेन क्या है ?

यह कोका वृक्षकी पत्तियोंका सत्त है। इसका वृक्ष दो तीन गज ऊंचा होता है। दिये हुए चित्रमें इसके आकारका पता चल जायगा। कोकेन इसी वृक्षकी पत्तियोंसे तैयार की जाती है। यह रवादार ठोस पदार्थ है। पानीमें यह नहीं घुलती परन्तु अल्कोहल क्लोरोफार्म आदि घोलकोंमें बडी सुगमतासे घुल जाती है।

कोकेन कहा बनायी जाती है ?

यद्यपि भारत वर्षमें कोका वृक्ष की खेती अब की जाती है तथापि कोकेन तैयार करनेके लिए इसकी पत्तियां सुखाकर अन्य देशोंको भेजी जाती हैं। लंकामें इसकी खेती बहुतायतसे होती है। वर्त्तमान महायुद्धके छिड़नेके पहले पत्तियां

अधिकांश जर्मनीको जाया करती थीं। वहां से ही कोकेन तैयार होकर आया करती था। इङ्गलैण्डमें कुछ कारखाने इसको तैयार करते हैं।

कोका वृक्ष भारतवर्षमें पहले नहीं होता था। तम्बाकूकी नाईं यह भी हमें पाश्चात्योंसे मिला। जिस प्रकार प्लेग, गर्मी इत्यादि रोग पश्चिमी देशोंके नीचे दर्जेके मनुष्यों द्वारा आकर भारतके लाखों मनुष्योंको गारत कर रहे हैं उसी प्रकार कोकेनके खानेकी आदत भी नीचे दर्जेके यूरोपियनोंसे पहले पहल बङ्गालके कुछ मनुष्योंने सीखी। अब बढते बढते समस्त भारतमें इसने अपना राज्य जमा लिया है, थोडेसे गावोंको छोड, सब बडे बडे शहरोंमें इसका प्रयोग होने लगा है जो बढता ही जाता है।

इसी कारण स० १९०५ में सरकारने यह नियम बना दिया कि दवा बेचनेवालोंके सिवा कोई मनुष्य रत्तीके सोलहवें भागसे अधिक कोकेन अपने पास नहीं रख सकेगा। अधिक मात्रा रखनेके लिए औषधालयोंको भी सरकारी आज्ञा पत्र (license) लेने की आवश्यकता होगी। परन्तु इन नियमोंसे कोकेनका बाहरसे आना कम नहीं हुआ। केवल इतना ही अन्तर हो गया कि छिपाकर मगाने, बेचने, और मोल लेनेवालोंको नयी नयी युक्तिया निकालनी पडीं। इन युक्तियोंका हाल समाचार पत्रोंमें प्राय पढनेमें आया करता है। खुफिया पुलिसने भी बहुत खोज की और पता लगाया, परन्तु इस औषधिका प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि जब तक शिक्षित जन समुदाय भी इस काममें हाथ न बटायेगी, तब तक कुछ सफलता न होगी।

कोकेन क्यों खाया करते हैं ?

इस बातका उत्तर देना बड़ा कठिन है। यदि शराब क्यों पिया करते हैं, तम्बाकू क्यों खाया करते हैं और भाँग क्यों खाते पीते हैं इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर दिये जा सकते हैं, तो इसका भी उत्तर दे सकते हैं। तम्बाकू पीनेवाले जब पहले पहल तम्बाकू पीना सीखते हैं तब आंखें लाल हो जाती हैं, जी मिचलाता है, मुँहसे दुर्गन्ध निकलती है और यदि धांस लग जाती है तो खांसते खांसते परेशान हो जाया करते हैं, फिर भी तम्बाकू पीना नहीं छोड़ते। इसका कारण क्या है ? सगतका प्रभाव। एक बार प्रयोग किया, उससे कष्ट हुआ, परन्तु मित्रोंने उत्तेजना दी, उकसाया, फिर दुबारा प्रयोग किया, दो चार बार प्रयोग करनेसे शरीरमें नयी नयी पैली विषैली वस्तुएं पैदा हो जाती हैं जिनका प्रभाव दबा रखनेके लिए उसी वस्तुका फिर प्रयोग करना पड़ता है। यही आदत पड़नेका कारण है। परन्तु यदि मनुष्य चेत जाय और थोड़े मानसिक बलसे भी काम ले तो आदत छूट सकती है।

विज्ञानके बहुत से आविष्कारोंका मूर्खोंने बड़ा दुरुपयोग किया है। जिस डाइनेमाइटके ज्ञानसे पहाड़ोंको चीरकर नदियोंका जल मनुष्यके लाभके लिए एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचाया गया, जिसके प्रयोगसे महीनोंका रास्ता स्वेज और पनामाकी नहरों द्वारा दिनोंमें ते होने लगा उसीसे आज यूरोपमें करोड़ों मनुष्य कालके गालमें भेजे जा रहे हैं। जिन विमानोंसे सभ्यताके एक नये कल्पके आरम्भ होनेकी आशा थी, उन्हीं विमानोंसे बम्ब गिराकर हज़ारों निरपराध मनुष्य और स्त्रियां मारी जाती हैं। कोकेन भी डाकूरी चीर फाड़का

काम करनेके समय मनुष्यका कष्ट कम कर देनेके लिए निकाली गयी थी, परन्तु अब उसीसे लाखोंका सर्वनाश हो रहा है।

कब और कैसे खायी जाती है ?

प्राय नौसिखे इसे सध्याकाल में खाया करते हैं, यह बहुधा पानमें खाई जाती है और कभी कभी इसकी गोलियां भी बनाकर खाते हैं। इसकी खानेकी मात्रा निश्चित नहीं है, अभ्यासमे इसकी खुराक बढायी जा सकती है, जैसे लोग अफीम और सखियाकी मात्रा बढा लिया करते हैं। एक बारगी अधिक खा जानेसे आदमी मर भी गये हैं।

खानेके बाद क्या दशा होती है ?

जीभ और होठ सुन्न हो जाते हैं। यदि जीभके नीचे तापमापक रखा जाय, तो उससे तापक्रम बढता हुआ नहीं मालूम होगा । सिर भारी होने लगता है, हृदयकी धडकन और गरदनकी नसोंका फडकना तेज हो जाता है। नाडीकी चाल गम्भीर और तीव्र हो जाती हैं, पर प्रति मिनट ११० से अधिक नहीं बढती। इसी अवस्थाको मनुष्य परमानन्द मानने लगता है और एकान्तमें रहना चाहता है। मुह वह इस भयसे बन्द कर लेता है कि कहीं राल न टपक पडे। गाल पीले पड जाते हैं, नाककी फुनगी ठण्डी हो जाती है, गर्दन और माथेमें पसीना वेगसे निकलने लगता है और उगलियोंके सिरे ठण्डे हो जाते हैं। यह दशा प्राय घण्टे तक रहती है। इसके पीछे होठ गीले हो जाते हैं, पसीना भी बन्द हो जाता है, पर मलिनता और ग्लानि मालूम होती है। अधिक कोकेन खानेको जी चाहता है। यह इच्छा केवल भ्रममात्र है, यदि चाहे तो आसानीसे रोक सकता है।

कोकेन खानेसे क्या हानि होती है ?

अन्य मादकोंकी नाईं यह भी उद्दीपक और उत्तेजक होती है। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि साधारण अवस्थामें सभी उद्दीपक हानिकारक होते हैं। एक मामूली उदाहरणसे यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये कि आपने एक अंगीठीमें कुछ कोयले जलाये जिसकी आग साधारण अवस्थामें आध घण्टे तक ठहरेगी, पर यदि आप उसे धौंकनीसे धौंकें तो यद्यपि आंच अधिक तेज हो जायगी, तथापि कोयले अब दस ही मिनटमें खतम हो जायँगे। उद्दीपकोंसे जो शक्ति बढी हुई मालूम होती है, वह क्षणभरके लिए है, उसके बाद कमजोरी और ग्लानि बढने लगती है। इसी कारण अफीमका सत (morphia), इत्यादि भी बडे हानिकारक होते हैं। स्वस्थावस्थामें प्रायः सभी उत्तेजक जिसे लोग भूलसे बलवर्द्धक समझते हैं हानि पहुँचाते हैं।

कोकेन सेवन करनेके पीछे उसको और अधिक खानेकी उत्कट इच्छा होती है। नींदका आना बन्द हो जाता है। पहले कष्टसाध्य अजीर्ण हो जाता है जो अन्तमें संग्रहणीका रूप धारण कर लेता है। मनुष्य बहरा हो जाता है और उसे सदा डर लगा रहता है, जिससे वह बात बातमें चौंक उठता है। होठ और जीभ बिलकुल स्याह हो जाती हैं। यह बडी महंगी मिलती है, यहां तक कि फुटकर लेनेमें १५०) रुपया तोले तकका भाव हो जाता है। इसके जुटानेके लिए, प्रायः मनुष्य अपना समस्त धन सम्पत्ति नष्ट कर दिया करते हैं और अन्त-

में चोरी, जालसाज़ी और अन्य बुरे काम करनेपर उतारू हो जाते हैं।

डाक्टर कैलाशचन्द्र बासकेमतसे इसके सेवनके दुष्परिणाम यह हैं—'सिरमें दर्द होना, शरीरका सूखना, नीन्दका न आना, दाँत और जीभका काला हो जाना, पुतलीका फैलना, नाडीका तीव्र तथा बलहीन होना, या कभी कभी यथाविधि न चलना, मूर्च्छा, मोह, असगत सम्भाषण, कपकपी आना, सग्रहणी, बावलापन इत्यादि।

मूर्खोंमें यह विचार फैल गया है कि कोकेन खानेसे आदमी कई दिन तक बिना भोजन किये रह सकता है जो केवल भ्रम है। इसका कारण यह है कि पेटकी झिल्ली जिसके द्वारा हमें भूखका ज्ञान हुआ करता है कोकेन खानेसे सुन्न पड जाती है, और इसीसे हमें भूखका बोध नही होता।

अमेरिका देशमें कोकाकी पत्तियोंका व्यवहार।

अमेरिका देशके आदिम निवासी इस वृक्षकी पत्तियां उसी प्रकार खाया करते हैं जैसे यहा सुरती खायी जाती है। वृक्षकी कुछ सूखी हुई टहनियां पत्ती समेत प्रत्येक मनुष्य अपने पास रखता है। चूना और टहनियां प्राय वे थैलुओंमें रखा करते हैं।

जहां जहां पत्ती खानेकी प्रथा है, वहा वहां दिनमें चार चार काम बन्द कर दिया जाता है। टहनियोंसे पत्तिया झाड ली जाती है और मुहमें रखकर उनकी गोली सी बना ली जाती है। इस गोलीपर जिसे अक्यूलिको कहते हैं थोडा सा चूना स्वादके लिए लगा दिया जाता है।

इन पत्तियों पर पीरू देशके लोगोंकी बड़ी श्रद्धा है। होमों और उत्सवोंमें पत्तियोंकी धूप दी जाती है। पत्तियां सूर्यकी भेंटमें चढ़ायी जाती हैं। पूजा करते समय पुजारियोंको पत्ती चबाना आवश्यक है, नहीं तो उनके देवता प्रसन्न नहीं होते।

इन पत्तियोंका भी वही प्रभाव पड़ता है जो उनके सत्त कोकेनका होता है, परन्तु यह इतना तीव्र नहीं होता।

ऊपरके कथनसे मालूम होगा कि यह पत्तियां और उनका सत्त बड़ी हानिकारक वस्तुएं हैं। भूलकर भी कभी इनका प्रयोग न करना चाहिये। शस्त्रोपचारोंमें कोकेन बड़े कामकी चीज है। जहां, जिस स्थानपर चीरा लगाना होता है, वहांपर कोकेनका घोल लगा दिया करते हैं, इससे वहां बिलकुल सुन्न हो जाता है, और चिरानेमें रोगीको पीड़ा नहीं होती। इसकी सहायतासे दांत बड़ी सुगमतासे उखाड़े जा सकते हैं, पर इसको खाना कभी न चाहिये। जहां तक हो सके प्रत्येक देश हितैषीका कर्त्तव्य है कि इसके प्रचार को रोके।



ज्ञान और विज्ञान



कुछ बुद्धि इन्द्रियोंकी सहायतासे जान लेती है उसीको हम ज्ञान कह सकते हैं, किन्तु अत्यन्त प्राचीन कालसे ज्ञान और विज्ञान शब्दोंके अर्थोंमें अन्तर माना गया है। जो ज्ञान मोक्षका हेतु हो सकता है उसे ज्ञान कहते हैं, अन्य प्रकारका ज्ञान विज्ञान कहाता है। अमर कोषमें लिखा है.—

"मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्प शास्त्रयो ।"

इसी प्रकार हैमचन्द्रने भी विज्ञान शब्दके सम्बन्धमें लिखा है—"विज्ञान कर्मणि ज्ञान"। इन दो प्रमाणोंसे स्पष्ट हो गया होगा कि शिल्प शास्त्र तथा अन्य कर्मों का ज्ञान ही विज्ञान है; अतएव प्राचीन कालमें ज्ञान उच्च कोटिका और मोक्ष देनेवाला माना जाता था। विज्ञान केवल पेट भरनेका एक उपाय और सांसारिक सुखोंका एक साधन समझा जाता था। यद्यपि भगवान श्री कृष्णने आवाज उठाई और "योग: कर्मसु कौशलम्" का उपदेश देकर भारतको चेताया, परन्तु उनके बाद फिर भारत ज्ञानकी खोजमें ऐसा लिप्त हो गया कि उसने आश्रम धर्मका तिरस्कार कर विज्ञानको छोड दिया। उसीका परिणाम आजकलके अकाल और दरिद्रता है।

आजकल हम "विज्ञान" शब्दका प्रयोग एक अधिक विस्तृत अर्थमें करते हैं। हम विज्ञानको उस ज्ञानका वाचक समझते हैं, जिसमें कुछ विशेषता हो। विशेषता उसके 'अनु-

शीलन तथा प्रतिपादन दोनोंमें होनी चाहिये। प्रयोगों द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान या वह ज्ञान जिसकी परख प्रयोग रूपी कसौटी पर हो सकती है वस्तुतः विज्ञान कहाता है। ऐसे प्रयोगात्मक ज्ञान अर्थात् विज्ञानके उदाहरण भौतिकशास्त्र, रसायन शास्त्र, यंत्र शास्त्र आदि हैं, परन्तु कुछ ऐसे विषय भी हैं, जिनकी जांच प्रयोगों द्वारा नहीं की जा सकती, जैसे ग्रह और तारे। अतएव उनके सम्बन्धमें गवेषणा करनेका एक मात्र उपाय यह है कि पहले प्रयोग करके अपनी बुद्धिका परिष्कार कर लिया जाय, निरीक्षण और यांत्रिक परीक्षणमें योग्यता प्राप्त कर ली जाय और सत्यासत्य निर्णय करनेकी शक्ति (विवेक) को बढा लिया जाय और तदनन्तर जो कुछ बातें, घटनाएँ, निरीक्षणसे जानी जा सकें मालूम करली जायँ। अतएव विज्ञान दो प्रकारके माने जाते हैं—प्रयोगात्मक और निरीक्षणात्मक। प्रयोगात्मक विज्ञानोंके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं, ज्योतिष शास्त्र, भूगर्भ, ऋतुशास्त्र आदि निरीक्षणात्मक विज्ञान हैं। वस्तुत विज्ञान एक ही है, जिसे भौतिक शास्त्र कहते हैं, और जिन नियमोंका प्रतिपादन यह करता है वह सार्वदेशिक और अटल हैं, किन्तु विषयकी विभिन्नताके अनुसार उसकी अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ हो गयी हैं। उदाहरणके लिए गति सम्बन्धी नियम ले लीजिये। जो तीन नियम न्यूटनने पहले पहल बतलाये थे वह सर्वत्र लागू है· तथापि ग्रह, उपग्रह और तारोंकी गति ज्योतिषका प्रतिपाद्य विषय है और हृत्पिण्ड, आदिकी गति शारीर शास्त्रका विषय है।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मन एकाग्र करके ज्ञान प्राप्त करनेकी विधिको ही निरीक्षण कहते हैं। निरीक्षण ही अतएव हमारे

ज्ञानकी जड़ है। निर्दिष्ट वस्तुको इच्छानुकूल परिस्थितिमें रख कर जब निरीक्षण किया जाता है तो इस कार्यको परीक्षण कहते हैं। परीक्षणके उद्देश्यसे जो अनुष्ठान किये जाते हैं वही प्रयोग कहाते हैं। अतएव स्मरण रखना चाहिये कि प्रयोग निरीक्षण के उद्देश्यसे ही किये जाते हैं। जहां प्रयोग करना असम्भव होता है प्राकृतिक परिस्थियोंमें ही निरीक्षण कर जो कुछ जानना सम्भव होता है जान लेते हैं, और तदनन्तर उन बातोंको प्रयोगात्मक विज्ञानके नियमोंसे जांचते हैं।

अब तक विज्ञानके मुख्य और स्थायी अंगपर विचार किया है। निरीक्षण और परीक्षण द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही विज्ञान कहलाता है, परन्तु विज्ञानका काम यहीं नहीं समाप्त हो जाता। तथ्योंको, जानी हुई बातोंको, क्रमबद्ध करके रखना, उनका परस्पर कार्य कारण सम्बन्ध जान लेना, फिर उनको समझनेकी गरजसे एक ऐसे सिद्धान्त की रचना करना कि जिससे वह श्रृंखला बद्ध जान पड़ें और उनकी असम्बद्धता और असंगतताका लोप हो जाय। यह विज्ञानका दूसरा काम है। यह काम भी पहले कामसे कम महत्वका नहीं है, यद्यपि यह परिवर्तनशील और अस्थायी है। सिद्धान्त रचनाके बिना प्राकृतिक घटनाओं और तथ्योंका न केवल याद रखना और समझना ही कठिन है, वरन् उन्नति करना भी असम्भव है। यदि सिद्धान्तमें कुछ भी सचाई है तो वह आगेका रास्ता दिखला देगा। उससे बहुत सी बातें ऐसी मालूम होंगी जिनकी जांच प्रयोगात्मक विधिसे करना सम्भव और आवश्यक होगा। यदि इन प्रयोगोंके परिणाम सिद्धान्त

नुकूल निकले तब तो ठीक नहीं तो सिद्धान्त में यथोचित परिवर्तन और संशोधन कर लिये जाते हैं।

प्राचीन कालमें भी प्रयोगात्मक विधिका अनुसरण किया जाता था, किन्तु काम करनेवाले थोड़े थे और धीरे धीरे शिल्प कलाओंका सम्बन्ध उच्च कोटिके विचारकोंसे छूट कर नीची कोटिके मनुष्योंसे ही रह गया था, अतएव विज्ञानकी पर्याप्त उन्नति न हो सकी। आजकल विज्ञान कोई विशेष विषय नहीं समझा जाता, किन्तु एक विशेष कार्य प्रणाली अथवा अध्ययन विधि मानी जाती है। जिस विषयका इस परिपाटीके अनुसार अध्ययन किया जाता है वही विज्ञान कहलाने लगता है। आजकल इतिहास, सम्पत्ति शास्त्र समाज शास्त्र आदि विज्ञानोंमें शामिल होनेका बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

प्राचीन विचारक प्रायः प्रयोग करना अनुचित समझा करते थे। वह समझते थे कि उस चीजको जान लेना बस होगा जिसके जान लेनेके बाद कोई चीज अनजानी नहीं रहती। इसीलिए प्रयोग न करके केवल कल्पनाके घोड़े दौड़ाया करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वह कभी कभी बड़ी हास्यास्पद बातें कह बैठते थे। भारतवर्षमें तो भी बहुत गनीमत था, यहां तो पहले यज्ञ करनेवालोंने और बादमें तान्त्रिकोंने प्रयोगात्मक विधिको जारी रखा।

सच पूछिये तो प्रयोगात्मक विज्ञानने जन्म यहीं लिया था, यद्यपि उचित परिस्थिति न पाकर वह यूरोपमें जा पहुँचा और वहीं इसकी वृद्धि हुई। यूरोपमें अवश्य दार्शनिकों और पादरियोंने बड़ा अन्धेर मचा रखा था। उस अंधेरको मिटानेके लिए विज्ञानका बाल-रवि पूरबमें उदय होकर क्रमशः याम्यो-

स्तर पर पहुँचा और अब उस मार्तण्ड प्रचण्डकी किरणें विश्वव्यापी हो रही हैं।

कल्पना कीजिये कि एक बडी भारी गुफा है। उसमें अनेक छोटी मोटी, लम्बी चौडी, सभी तरहकी कोठरियां हैं। कुछ आदमी आते हैं, पर श्रद्धा पूर्वक नमस्कार कर द्वार परसे ही लौट जाते हैं और अपने साथियोंको कल्पित वृत्तान्त सुनाते हैं। परन्तु कुछ समय व्यतीत होने पर कुछ कर्मशील मनुष्य पैदा होते हैं, वह फावडे कुदाल आदि यन्त्र ले क्रमशः कोठरियोंकी खोज शुरू कर देते हैं। सैकडों कोठरियोंको नित्य खोला जाता है, उनके विषयमें नयी नयी बातें मालूम होती रहती हैं। कभी कभी कोई भाग्यवान और योग्य व्यक्ति अन्योंकी अपेक्षा बहुत आगे बढ जाता है, बडे दूरका पता ले आता है और अमूल्य रत्न प्राप्त कर लेता है। उसका नाम सब जगह विख्यात हो जाता है, उस समय उसके बहुत से सहकारी उधर ही झुक पडते हैं और अनेक बातें जान लेते हैं।

ठीक यही दशा आधुनिक विज्ञान की है। ईश्वरकी सृष्टिमें अनेक रहस्य भरे पडे हैं। यदि एक छोटेसे कोमल पुष्पको लेलें तो उसके रहस्यको भी जान लेनेके लिए अनेक जन्मोंका समय पर्याप्त न होगा। प्राचीन कालमें लोग केवल ईश्वरकी महिमाको सराह कर रह जाया करते थे और आवश्यकता पडने पर कोरी कल्पनासे काम लेते थे और मन गढ़न्त बात बतला देते थे। उदाहरणके लिए ऊपरसे गिरनेवाली वस्तुओंके वेगको लीजिये। अरस्तूका मत था कि भारी वस्तु अधिक वेगसे और हलकी वस्तु कम वेगसे गिरती हैं। यदि दो

वस्तुएँ ऊपरसे छोड कर यह परीक्षा करते तो अपनी गलती उन्हें फौरन मालूम हो जाती। इसी प्रकार उन्होंने एक बार यह भी सिद्ध कर दिया था कि एक वर्तनमें, चाहे वह खाली हो और चाहे (राखसे) भरा, सदैव उतना ही पानी अमाता है।

आज कल लाखों आदमी भूमण्डलके सभी देशोंमें रात दिन खोजके काममें लगे हुए हैं। नित्य कुछ न कुछ नयी बातें मालूम होती हैं। इनमें कुछ जो अधिक भाग्यवान अथवा प्रतिभाशाली हैं, जैसे डा० वसु महोदय। वह वडे मारकेकी बातें निकाल लेते हैं और दुनिया भरमें मशहूर हो जाते हैं। ऐसे ही विद्वानोंके बतलाये हुए मार्ग पर फिर अन्य विद्वान लग जाते हैं और नयी नयी खोज करते हैं।

ईश्वर अनन्त है, उसकी माया अनन्त है। उसकी मायाका रहस्य पूरा पूरा जान लेना असम्भव सा प्रतीत होता है, परन्तु उसकी मायाके द्वारा ही उसके रूपका कुछ अनुभव हो सकता है। चींटीके रेंगनेमें—नहीं नहीं जीवाणु और छन्नापारग (Filter passers and Bacteria) के हिलने डोलनेमें भी—मनुष्यके चलनेमें, पक्षियोंके उडनेमें, ग्रहों आदिकी परिक्रमामें, तारोंकी निरन्तर गतिमें जो वैज्ञानिक नियमोंकी अटलता और सर्व व्यापकता अनुभव करता है, वह अनुभव दार्शनिकको सहस्र जन्ममें भी प्राप्त नहीं हो सकता। अत्यन्त क्षुद्र जीवाणुओंसे लेकर असख्य मील दूरवर्ती तारोंके पिंडोंमें उन्हीं घटकोंको देखकर वैज्ञानिक एकताका अपूर्व अनुभव करता है। पदार्थको शक्तिका विकार मात्र समझ जिस असीम शक्तिका ज्ञान, जिस परमात्माके निराकार रूपका

अनुभव वैज्ञानिकको प्राप्त होता है, वह योगीश्वरोंको भी दुर्लभ है।

वैज्ञानिक सच्चा मनुष्य है, उसके लिए सब देश, सब समाज और सब काल बराबर हैं, उसके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश है, अतएव संकीर्णता और अनुदारता उससे स्पर्श भी नहीं कर पाती। मनुष्य मात्रके लिए क्या, सभी जीवोंके लिए उसके हृदयमें प्रेम है। वैज्ञानिक सच्चा योगी है, इस बातका फैसला तो श्री भगवानने स्वयम् कुरुक्षेत्रमें सुना दिया था—योगः कर्मसु कौशलं। न उसे काम क्रोध मोहसे भय है, न मदमत्सरसे खटका है। उसका ध्येय सत्यकी खोज है। उसी पर तन मन धन सब कुछ वार बैठता है। पाश्चर, डेवी, फेरेडे आदि यदि चाहते तो अपने आविष्कारोंका पेटेंट कराके करोड़पति बन बैठते, पर उन्होंने ऐसा करना अनुचित जान अस्वीकार कर दिया। भारतके सपूत वसु वीरने भी इसी प्रकार अपने यन्त्रोंका पेटेन्ट बहुत कुछ लालच दिये जाने पर भी करनेकी सम्मति न दी। कलकी ही बात है कि दूसरे महात्माने (राय महोदय) पाँच वर्षका वेतन विश्वविद्यालयको ही दे डाला।

वैज्ञानिक सच्चा वीर और दृढ प्रतिज्ञ होता है। भय—मौतका, समाजका और राजका—उसे सत्यकी खोजसे नहीं हटा सकता। विषैले जीवाणुओंके आक्रमणसे, प्रबल एक्स किरणोंके प्रभावसे तन्तुओंके गल जानेसे नवीन यन्त्रोंकी चपेटमें आ जानेसे, रस शालाओंमें स्फोटन हो जानेसे अथवा अन्य ऐसी घटनाओंके हो जानेसे अनेक वैज्ञानिकोंका मृत्यु हो चुकी है, परन्तु कभी ऐसा नहीं हुआ कि उन गवेषणाओंको

समाप्त करनेके लिए वीर वैज्ञानिक आगे न बढ़े हों। सच्चे शूरवीरकी नाईं रणक्षेत्रसे मुह मोडना वैज्ञानिकोंने नहीं सीखा।

यदि निराकार ब्रह्मका ज्ञान, यदि 'अणोऽणीयान् महतो महीयान्'का सच्चा प्रत्यक्षानुभव और यदि जटिलतामें सरलता और सरलतामें जटिलताका पूर्ण बोध किसीको हो सकता है तो वह वैज्ञानिकको ही होता है। परमात्माको अन्नपूर्णा और कालिका करालाके रूपमें वैज्ञानिक ही देख सकता है। प्रातः समय जब शीतल समीर अठलाती हुई चलकर कलियोंको गुदगुदा कर खिला देती है और नई नई कोंपलें अपने नन्हे नन्हे वक्षस्थलोंको सूर्य देवके स्वागतके लिए फैला देती हैं, उस समयकी घटनाओंका यदि कुछ रहस्य मालूम होता है तो वैज्ञानिक को। जो काम यह कोंपलें पलक भांजनेमें कर देती हैं, वह काम बड़े बड़े दहकते हुए भट्ठोंसे भी नहीं हो सकता। यह नरम पत्तियां कर्बन द्विओषिदमें अणुओंको झपट कर वायुमें से खींच लेती है और उनका विघटन कर कर्बन स्वयम् ग्रहण कर लेती है और ओषजनको आपके उपकारार्थ वायुमें मिला देती है। उधर देखिये पानी और मट्टीमें घुले हुए कुछ सरल लवणोंको ग्रहणकर पौधेने फूल और उसके सौरभकी रचना किस कौशलसे की है। वैज्ञानिक दृष्टिसे देखिये कि वही काम (कर्बन द्विओषिद का विघटन) निर्जीव पत्थर और चट्टानें भी हर दम हर घड़ी किया करती हैं। यही काम यदि आप करना चाहें तो १८०० श के तापक्रम पर कर सकेंगे, इस तापक्रम पर जीवोंका जीता रहना असम्भव है।

वैज्ञानिक अणुओं और परमाणुओंके निरन्तर होनेवाले नृत्यका अनुभव करता रहता है। विद्युत्कणोंके अनेक वहरू-

पिर्योंके से तमाशोंका आनन्द लूटता रहता है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि वैज्ञानिक ही सच्चा कवि है। सारांश यह कि आधुनिक विज्ञान काव्य, दर्शन, धर्म और ज्ञान सबका मूल है। इसका आश्रय लेनेसे ही मनुष्य जातिका कल्याण होगा।

विज्ञानके नियमों और तथ्योंका सदुपयोग कर मनुष्यने अपनी सभ्यताकी उन्नतिके अनेक मार्ग निकाल लिए हैं, उधर कुछ लोगोंने दुरुपयोग कर मनुष्यको पशुसे गया गुजरा बनानेमें कुछ उठा नहीं रखा। यदि आप आज चाहें तो घंटे भरमें प्रयागके सब निवासियोंको प्लेग अथवा हैजेका शिकार बना सकते हैं या थोड़ेसे बम्ब गोले डाल कर मट्टीमें मिला सकते हैं, परन्तु सच्चे विज्ञानी न पहले प्रकारके साधनोंको गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं और न दूसरे प्रकारके साधनों पर अभिमान करते हैं। उन्हें भले बुरेसे कुछ सरोकार नहीं है। सदुपयोगका पुण्य और दुरुपयोगका दोष और पाप दूसरेके सर है। वैज्ञानिक उनके जिम्मेदार नहीं हैं।



वैज्ञानिक युगान्तर



तिहासके प्रेमी इस बातको भलीभांति जानते हैं कि प्रत्येक कालमें एक विशेष प्रकारके विचारोंका प्रचार होता है, जो किसी देश से फैलने आरम्भ होते हैं और शनैः शनैः सारे संसारपर अपना रङ्ग जमा लेते हैं। भारतवर्षमें ही इस कथनके समर्थनमें अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। आजसे लगभग २५०० वर्ष पहले भगवान् बुद्धने अपने जगत्विख्यात धर्मका उपदेश काशीमें किया। थोड़े ही दिनोंमें वह धर्म दूर दूर तक फैल गया और सभ्य संसारका बहुत भाग उसके रङ्ग में रङ्ग गया। बौद्धमतका ज़ोर सातवीं शताब्दी तक बना रहा। पन्द्रहवीं, सोलहवी और सत्रहवीं शताब्दीमें भारतमें वीरताकी वह ज्योति जागी, जिसकी अद्वितीय द्युतिके सामने इतिहास प्रसिद्ध शूरवीरोंका यश फीका पड़ गया। जो वीरताके काम राजपूत योद्धाओं और रमणियोंने उस कालमें कर दिखाये, वैसे आज तक सुननेमें न आये और आशा है कि न आवेंगे ही।

अतएव विक्रमसे ६०० वर्ष पूर्वसे, उसके ६०० वर्ष पीछे तकके कालको बौद्ध काल और पन्द्रहवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दी तकके समयको राजपूत वीरताका काल कहना अनुचित न होगा। इङ्गलैण्डमें महारानी एलीज़बेथके शासन

कालमें जितने उच्च कोटिके नाटककार हो गये और अपूर्व नाटक निर्माण कर गये, वैसे फिर न हुए। अकबर शाहके राज्यमें, तुलसीदास, नन्ददास, सूरदास आदि आर्य भाषाके जैसे अद्वितीय कवि हो गये, उनके समान कवि पैदा होने मुश्किल हैं। आज कलही देखिये, बङ्गाली साहित्यमें कविता, आख्यायिकाओं और नाविलोंका जमाना है। कवि शिरोमणि जगद्विख्यात रवि बाबूकी अनुपम कविता, बङ्किमके अपूर्व उपन्यास, गिरीशचन्द्रके मनोहर नाटक आदि इसके प्रमाण हैं। हिन्दी साहित्यमें कविता, नाटक और नाविलोंका जमाना नहीं। आजकल जितने मौलिक ग्रन्थ हिन्दीमें निकलते हैं, वह गूढ़ और मनन योग्य विषयोंपर ही निकलते हैं। हिन्दीमें आजकल कोई उच्च कोटिका कवि नहीं, अच्छा उपन्यास लेखक नहीं, नाटककार तो नाम लेनेको नहीं, तो इससे हिन्दीके प्रेमियोंको हताश न होना चाहिये। आजकल हिन्दी अपने एक अंग विशेषकी पूर्त्तिमें लगी हुई है, इस अंगके पुष्ट होजानेपर और बातोंका समय आयगा।

जो कुछ अब तक कहा गया है उसका सारांश यही है कि प्रत्येक कालका लक्षण एक विशेष प्रकारकी विचार-प्रणाली होती है। लगभग छः सौ वर्ष हुए कि भारतवर्षमें तांत्रिक मत-के अनुयायियोंने ऐसीही एक विचार प्रणालीका बीज बोया। उस बीजसे एक मनोहर वृक्ष उत्पन्न हुआ, परन्तु हाहन्त, वह फलने फूलने भी न पाया था कि थोडे ही दिनोंमें यहांकी सरजमीन, यहांका प्रदेश, विदेशीय आक्रमणों, राजनीतिक अशान्ति और आपसके, झगडोंके कारण उसके प्रतिकूल हो गया और वह मुर्झाने लगा। परन्तु, जिन विदेशियोंने, देशमें अशान्तिको

आग भडका दी थी, उनकी नजर इस अनुपम वृक्षपर पड़ी; उन्होंने उसकी कदरदानी की। कुछ टहनियां काट लीं और उन्हें बडी श्रद्धा और भक्तिसे यहासे लेगये और अपने देशमें जा लगाया। वहां उसकी वह परवरिश की कि वह बहुत विस्तृत हुआ और फलने फूलने लगा। उन्होंने उसका पौदा यूरोपके प्रान्तमें पहुँचाई, जहांकी आबोहवा (जल वायु) उसके बहुत मुआफिक आई और उसने यथेष्ट वृद्धि पाई।

यही विचार-शैली है जिसको कि हम विज्ञान कहते हैं। आज उस विज्ञानका ऐसा महत्व है, उसका ऐसा प्रभाव है, कि मनुष्यके ज्ञानके अन्योन्य विभागोंपर, विषयोंपर, भी उसका साम्राज्य स्थापित हो गया है।

प्रायः यह समझा जाता है कि विज्ञान एक विषय विशेष है, परन्तु ऐसा समझना बडी भूल है। विज्ञान वस्तुत जैसा कि हम पहले कह चुके है, एक विचार-शैली या अध्ययन प्रणाली है। इस शैलीके अनुसार किसी भी विषयका अध्ययन किया जा सकता है। यही कारण है कि क्रमश एक एक करके विषय विज्ञानके वर्द्धमान क्षेत्रके अन्तर्गत आते जाते हैं। पहले विज्ञानमें केवल भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र ही सम्मिलित समझे जाते थे। कुछ दिनों बाद प्राणि विद्या, गणित और ज्योतिष शामिल हो गये। आजकल तो अर्थ शास्त्र, इतिहास, दन्त कथा (किस्से कहानियां) आदि अनेक विषय विज्ञानके विभाग समझे जाते हैं। इसका कारण यही है कि वैज्ञानिक विधिसे जब तक कि किसी विषयका अनुशीलन और प्रतिपादन नहीं किया जाता, तब तक बुद्धिमान मनुष्योंको सन्तोष और विश्वास नहीं होता। इतिहासका ही उदाहरण लीजिये।

२० वर्ष पहलेके रचे हुए ग्रन्थोंकी तुलना हालके लिखे हुए ग्रन्थोंसे कीजिये। दोनोंमें आकाश और पातालका सा अन्तर दिखाई देगा। पहले जमानेमें घटनाओंका उल्लेख कर देना भर इतिहासकारका कर्तव्य समझा जाता था। अब प्रमाण देना, उल्लिखित घटनाओंके सत्यासत्य विवेचनमें किन उपायोंका आयोजन किया गया है, इत्यादि बातें बतलाना भी आवश्यक समझा जाता है।

विज्ञानका महत्व और प्रभाव यहां तक बढा हुआ है कि धर्मने भी विज्ञानके सामने मस्तक झुका दिया है और अन्योन्य धर्म अपने अस्तित्वके लिए विज्ञानका सहारा ढूँढ रहे हैं।

विज्ञानका यह विस्तृत और सर्वदेशीय प्रभुत्व देखकर ही वर्तमान युग वैज्ञानिक युगान्तर कहलाता है।

जबसे मनुष्यकी बुद्धिका विकाश आरम्भ हुआ तभीसे विज्ञानका आरम्भ समझना चाहिये। परन्तु प्रयोगात्मक विज्ञानकी उन्नति बडी शीघ्रताके साथ पिछले ५० वर्षोंमें ही हुई है। मनुष्यके सत्यके ढूँढ निकालनेके प्रयत्नके तीन रूपान्तर प्रत्येक देशमें देखनेमें आते हैं। पहला रूपान्तर या अवस्था यह है जिसमें मनुष्य केवल एक बातका खयाल रखता है कि एक विश्वास दूसरेके विरुद्ध या विपरीत न हो। दूसरी अवस्था यह होती है जब मनुष्यका सत्यासत्य निर्णय करनेकी कसौटी धार्मिक विश्वास होती है। जो बात धार्मिक विश्वास के, चाहे वह विश्वास सच्चा हो या झूठा, विरुद्ध या प्रतिकूल हुई वह झूठी समझी जाती है। तीसरी अवस्था वह है जिसमें किसी बातका झूठा या सच्चा समझा जाना इस परीक्षा पर

निर्भर है कि वह प्राकृतिक तथ्यों (facts) के अनुकूल है या प्रतिकूल। यही अन्तिम वैज्ञानिक विधि है।

इस वैज्ञानिक विधि का प्रचार नागार्जुन आदि महात्माओं ने भारतमें लगभग ७ सौ वर्ष हुये किया था। उसीका प्रचार लगभग उसी समयमें रोजर बेकन नामके एक साधुने यूरोपमें किया। बेकनका मत था कि ज्ञान तर्क और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा बढ़ता है। यह ज्ञानके दो साधन हैं। इनमें भी प्रत्यक्ष अनुभव अधिक महत्त्वका है। प्रत्यक्षानुभव द्वारा उपार्जित ज्ञान ही विश्वसनीय ज्ञान है। सच्चा और उपयोगी ज्ञान प्रकृतिके अवलोकनसे प्राप्त होता है, परन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि हमारे पुराने विश्वासों और निर्मूल विचारों की छायासे प्रकृतिके अवलोकनमें बाधा न पड़ जाय। कई बार ऐसा हुआ है कि लोगोंने नई चीज़ें बनाली हैं या नया आविष्कार कर लिया है, पर अपने निर्मूल विश्वासके कारण उसे कुछका कुछ समझ छोड़ दिया है। लीबिगने ब्रोमीन एक बार बना ली थी, परन्तु बिना परीक्षा किये यह मान लिया कि वह लोहे और आयोडीनका यौगिक है। जब ब्रमीनका आविष्कार बेलार्डने कर लिया, तब उन्हें ख़याल आया और उक्त पदार्थकी परीक्षा की। फिर तो भेद खुल गया। लीबिग इस घटनाको सदा सुनाकर यह उपदेश दिया करते थे कि कपोल कल्पित व्याख्या कदापि न करनी चाहिये।

एकाग्र चित्त होकर प्रकृति का अवलोकन और निरीक्षण, विचार पूर्वक किये गये प्रयोगोंके परिणाम—यही मार्ग हैं, जिनसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फ्रांसिसबेकन भी रोजरबेकनके अनुयायियोंमेंसे थे। इस नया विचारशैलीकी पुष्टि रायल

सोसायटीके अधिवेशनोंमें हुई और उसके दो सदस्योंने उसका प्रयोग बड़ी सफलता पूर्वक किया। यह सदस्य थे न्यूटन और लौक। न्यूटनने तो आकर्षणके सिद्धान्तका आविष्कार किया, पर लोकने दर्शन शास्त्रमें उससे काम लेना शुरू किया और अपना जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थ रच डाला। (Lock's Essay on Human Understanding)

अब वैज्ञानिक शैलीका अधिक विस्तार न करके हम इस बात पर विचार करेंगे कि विज्ञानने मनुष्य जातिका कितना उपकार किया है, उसका सभ्यता पर क्या प्रभाव पडा है और भविष्यमें वह हमें किधर ले जायगा।

विज्ञानने जैसे जैसे उन्नतिकी और जैसे जैसे वैज्ञानिक शैलीका प्रचार होता गया, मनुष्यकी बुद्धिका विकाश भी उतना ही अधिकाधिक होता गया। मनुष्योंका अन्ध विश्वास घटता जाता है। १० वर्ष पहले जितना भूत परेतोंका जिक्र सुननेमें आता था, अब नहीं आता। जितना मनुष्यको पहले पग पग पर भय लगता था उतना अब नहीं लगता। अब उसे न यम-दूतोंका भय है और न बहिश्तकी परियोंके यौवन सौन्दर्यका लोभ। अब वह वीरोंकी नाईं वर्तमानका विचार करता है, कठिनाइयोंका सामना करता है, अपनी आत्मा पर श्रद्धा रखता है और भविष्यको सुख मय बनानेका प्रयत्न करता है। प्रत्येक जातिके विकाश क्रममें तीन अवस्थाएं आती हैं —

(१) धर्मकी अवस्था (Age of Theology)
(२) दर्शनकी अवस्था (Age of Philosophy)
(३) विज्ञानकी अवस्था (Scientific age)

आज कल विज्ञानका युग है। वह जमाना गया, जब मनुष्य किसी दूसरे लोककी वस्तुओंकी ओर खिंचता था, जब उसे स्वर्गका पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक ध्यान रहता था। अब तो उसे अपना, अपनी जातिका, अपने देशका, और अपने लोकका ख्याल रहता है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होना था कि वह पुराने खयालातको छोडे, पांच हजार वर्ष पहले संसारकी उत्पत्ति हुई थी, इस सिद्धान्तको तथा ऐसे ही अन्य सिद्धान्तोंको असत्य माने और अपना अधिक खयाल करने लगे। इसी प्रकार क्रमशः मनुष्यकी आवश्यकताएं बढने लगीं, बढती जा रही हैं और बढती चली जायगी। आज कल तो सभ्यताका अर्थ ही यह समझा जाता है कि आवश्यकताएं बढें। परन्तु यह विषय विचारणीय है कि यह आदर्श कहां तक सत्य है। हमारा निजका विश्वास है—और धीरे धीरे समस्त सभ्य संसार एक स्वरमें इसे स्वीकार कर लेगा—कि वेदान्तका जो उच्च आदर्श भारतीय ऋषियोंने मनुष्यके सामने रखा है, वही हमारा एक मात्र अवलम्ब है, उसीका सहारा हमको लेना पडेगा, नहीं किसी दिन यादवोंकी नाईं मनुष्य जाति नेस्त और नाबूद हो जायगी।

यद्यपि ईसाई मत के पैर विज्ञान के प्रहार से टूट गये हैं, तथापि वेदान्त एक ऐसा मत है, जिसकी अभी केवल परछाईं का ही स्पर्श विज्ञान कर पाया है। 'ज्ञानको पन्थ भयावनो है'। विज्ञानका दुरुपयोग करके यूरोपीय महाभारतमें कितने निर्दोषियोंका रक्तपात हुआ है, पर हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें 'विज्ञान' ही ऐसी घटनाओंको असम्भव कर देगा।

विज्ञान देश और कालकी दूरीको धीरे धीरे मिटा रहा है। जो दूरी पहले वर्षोंमें तय करते थे वह आज कल कुछ दिनोंमें ही तय कर लेते हैं। पैदल चलनेसे मनुष्य सन्तुष्ट न हुआ, तो घोड़े को गुलाम बना डाला, उससे भी असन्तोष हुआ, तो भापको नाथा, रेल चलाई, एक पटरीकी रेल बनाई और समुद्र की छाती पर भी अगनबोटोंमें यात्रा करना आरम्भ कर दिया। जब जल थल पर विचरनेसे तृप्ति न हुई तो गगन मण्डलमें विहार करने के लिए वायुयान बना डाले।

जहां जहां देखा कि वृथा बहुत चक्कर खाकर समुद्र में यात्रा करनी पड़ती है, वहा वहा थलके सकीर्ण भाग काटकर नये नये रास्ते बना लिये। कभी कभी समुद्रमें तूफान आ जाते हैं, तो बड़े बड़े जहाज आकको रुईके दानोंकी तरह समुद्रमें लहरोंके थपेड़ोंमे परेशान हो जाते हैं और फिरकी की तरह चक्कर खाकर डूब जाते हैं। ऐसी घटनासे बचनेके लिए पनडुब्बीका आविष्कार हुआ, जो शान्ति पूर्वक भयकर तूफान उठने पर पानीके नीचे छछूँदरकी तरह अपना रास्ता काटती आगे बढ़ती चली जाती है।

अन्तमें अब ऐसे वायुयान भी बन गये हैं, जो जमीन पर दौड़ सकते हैं, हवामें उड सकते हैं और पानीमें तैर सकते हैं।

जो समाचार पहले जमानेमें वर्षोंमें मिलते थे वह अब मिनटों में मिल सकते हैं। यदि जी चाहे तो मित्रोंसे १००० मील की दूरीपर से भी बातें कर लीजिये।

यह लोक-सग्रह (Federation of World) का बड़ा भारी लक्षण दिखाई पड़ता है। वह समय शीघ्र ही आयगा, जब हम देश और जाति के अन्तर और भेद भावको भूल जायगे

और एक कुटुम्बके व्यक्तियोंकी नाईं प्रेम भाव से रह सकेंगे। वह समय गया जब जातियां अपनी अपनी सभ्यताओंकी जुदे जुदे ढग पर वृद्धि कर सकती थीं और अपनी रीतरिवाज, रहन सहन, जुदी रख सकती थीं। अब तो सब एक रगमें रग जायगे। सब घुल मिल कर एक हो जायगे। भविष्यकी (problems) समस्याए कुल मनुष्य जातिकी होंगी, न कि एक एक देशकी।

विज्ञानने मनुष्यको पशु-बलसे अधिक काम लेनेसे बचाया है। जो काम वह पहले बडे कठिन परिश्रमसे और वर्षोंमें करता था, वह अब सहज ही कुछ दिनों में कर डालता है। अब ऐसे ऐसे कारखाने भी देखनेमें आते हैं कि जहा लाखों आदमियोंके बराबर काम होता है, पर मनुष्य एक भी देखनेमें नहीं आता। इस बातका भी मनुष्य पर बड़ा प्रभाव पडेगा, क्योंकि अब उसे अपनी बुद्धि और मस्तिष्कसे अधिक काम लेना पडेगा और मनुष्य जाति का विकाश अधिक वेगसे होगा।

तार द्वारा चित्र भेजना, जल-प्रपातोंको नाथ कर उनसे बिजली उत्पन्न करना या अन्य काम लेना, बिजलीसे शहरमें रोशनी करना, पखे चलाना, कारखाने और मिलें चलाना यह सब बातें भी लोक-सग्रहमें सहायक होंगी।

मनुष्यने इतनी शक्ति ही सचय नहीं की, किन्तु सुदूर भूत कालमें घटित घटनाओंका भी रहस्योद्घाटन करनेका साहस कर डाला है। इतिहासकी तो दौड अधिकसे अधिक तीन चार हजार वर्षों तक ही है किन्तु विज्ञान करोडों अर्बों वर्षकी बातोंका पता लगाता है। यह बातें केवल कल्पित ही नहीं हैं, परन्तु उस ज्ञान पर निर्भर हैं जो वह आकाश का निरीक्षण

कर सचय करता है। अन्य तारोंमें जो परिवर्तन तथा घटनाए उसे आज प्रत्यक्ष दीखती हैं, अपनी बुद्धिके बलसे वह समझता है कि पृथ्वीका भी विकाश क्रम वही होगा।

कैसे महत्वका था वह दिन जब गैलिलियोने अपना दूर्बीन पहले पहल आकाशकी ओर उठा कर देखा था। क्रमशः उस दूर्बीनमें शोध होते गये और आजके दिन दूर्बीन ऐसे बडे बडे बन गये हैं कि इञ्जिनों द्वारा ही वह हिलाये, उठाये और घुमाये जा सकते हैं। दूर्बीन की ताकत किस भाति बढ़ती रही है, यह साथके चित्रसे ज्ञात होगा। जहा पहले आकाशमें कुछ भी दृष्टि गोचर न होता था, वहां पुराने दूर्बीनोंसे एक तारा सा नज़र आने लगा। और शक्तिशाली दूर्बीनसे वह धुधला सा तारा समूह प्रतीत होने लगा। वर्तमान दूरबीनोंसे तो वह असख्य तारोंका समूह दीख पड़ता है। इन तारोंमें से प्रत्येक असंख्य मीलोंकी दूरी पर है, उसका आकार हमारे सूर्यसे लाखों गुना बडा है। उनकी दूरीका अन्दाजा मीलोंमें लगाना असम्भव है। उनका हिसाब लगाया जाता है प्रकाश वर्षोंमें। एक सैकण्डमें प्रकाश १८६००० मील चलता है। इस हिसाब से एक वर्षमें जितनी दूर प्रकाश जा सकता है वह फासिला एक प्रकाश वर्ष कहलाता है। यदि मीलोंमें आप हिसाब पूछें तो ५८ खरब और ८३ अरब मील है।

जो सितारा पृथ्वीसे बहुत ही नजदीक है, वह ४ ३ प्रकाश वर्ष दूर है। इस दूरीका खयालमें आना भी मुहाल है। हां एक तरकीब है, जिससे इसका कुछ अन्दाजा लग सकता है। मान लीजिये कि एक बडी भारी तोप है, जो ५५० गज प्रति सैकण्डके वेगसे गोला फेंक सकती है और यह गोला इसी वेगसे लाखों

घर्ष तक चला जा सकता है। तोपको चलाइये और जैसे ही गोला उसके मुहसे बाहर निकले, आप जल्दीसे कूदकर उस पर सवार हो जाइये, आप २५ लाख वर्षमें अल्फा सेंटारी तक पहुँचेंगे। उसकी दूरी मीलोंमें २५ मील है। कुछ तारे तो पृथ्वीसे इतने दूर हैं कि यद्यपि पृथ्वीकी उत्पत्ति हुए करोडों वर्ष हो गये, तथापि इनसे चला हुआ प्रकाश आज तक पृथ्वी तक नहीं पहुँचा।

ईश्वरकी महिमा अनन्त है। उसके विराट् रूपका दर्शन वैज्ञानिकने ही किया है।

उधर सूक्ष्म दर्शकने भी मनुष्यके ज्ञानकी सीमा बहुत विस्तृत कर दी है। जो चीजें पहले आँखसे दीखतीं भी न थीं, उनमें एक ब्रह्माण्डकी सी रचना दिखाई पडती है। कहां एक इञ्चके एक करोडवें भागके बराबर कण, जो परासूक्ष्मदर्शकसे दीख सकते हैं और कहां वह तारे जिनके आकारका खयालमें आना मुश्किल है।

आजसे लाखों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियोंने जो गुण गाये, आज उनका अनुभव मनुष्योंको होने लगा है।

'अणोऽणीयान् महतो महीयान्'

मनुष्यने पता चला लिया है कि पृथ्वीमण्डलकी उत्पत्ति नीहारिकासे हुई है और विकाशका बहुत कुछ क्रम भी जान लिया है। उसने यहां ही बैठे रहकर दूरसे दूर तारोंकी जांच कर डाली है और जान लिया है कि उसमें कौन कौनसे पदार्थ विद्यमान हैं।

इसने विकाशवाद की रचना की है और उसकी पुष्टिके ज्योतिष, भूगर्भ आदि अनेक शास्त्रोंका उपयोग किया है।

धरती खोद खोदकर उसने पृथ्वीके इतिहासका बहुत कुछ पता लगा लिया है। किस जमानेमें जमीनकी सतहकी हालत कैसी थी, उसपर कैसे जानवर विचरते थे, कैसे वृक्ष उसके वक्षस्थलको सुशोभित करते थे, इत्यादि बातें उसने जान ली हैं।

विज्ञानकी सर्वोपयोगी और रोचक शाखा रसायन शास्त्र है। जितना उपकार मनुष्य मात्रका इस शास्त्रने किया है, उतना किसी अन्य शास्त्रने नहीं किया। इसके आदि कालमें मनुष्यको रसायनकी खोज थी। यद्यपि कीमियागरीमें वह सफल मनोरथ नहीं हुआ, तथापि कोयला सभूत काले कोलटारसे अनेक बहुमूल्य पदार्थोंका पैदा करना, कूड़ेकरकटमें फेंकी हुई चीज़ोंका उपयोग कर अनेक उपयोगी द्रव्य बनाना, यह रसायन शास्त्रके ही करिश्मे हैं।

जहां बारूद और डैनेमैनने लाखों मनुष्योंका नाश किया है, तहां उन्होंने खेतोंकी उपजाऊ शक्ति बढ़ा दी है और मनुष्यके लिए पर्वतोंको काटकर मार्ग बना दिये हैं। साधारण पदार्थोंसे अनेक उपयोगी पदार्थ बनाना भी रसायन शास्त्रने मनुष्यको सिखाया है। एक गेहूंको ही लीजिये। इससे रोटी, शीरा, मड, साबुन, शकर, शर्बत, बारूद, गीत (चारा), सूत, स्पिरिट, तेल, अचार, आतिशबाजी, रङ्ग, वार्निश आदि अनेक पदार्थ बन सकते हैं।

कभी कभी खदानोंमें और सुरङ्गोंमें पानीका सोता (जल स्रोत) निकल आता है। इससे सुरङ्ग या खानोंमें पानीके भर जाने और आदमियोंके डूब जानेका डर रहता है। ऐसी दुर्घटनासे बचनेके लिए उचित स्थानों पर इञ्जीनियर लोहेके दर्वाजे लगा देते हैं। एक बार सेवर्न (Severn) के नीचे सुरङ्ग

खोदी जा रही थी। एकाएक किसी स्रोतेमेंसे पानी आने लगा। मजदूरोंने सोचा कि हो न हो सेवर्नका पानी सुरङ्गमें दे बैठा और वह भाग उठे। पीछे पीछे पानी बड़े वेगसे चला आता था और आगे आगे मजदूर भाग रहे थे। अतएव घबराहटसे वह लोहेका दर्वाजा बन्द करना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि ऊर्ध्वगामी रास्ता (शाफ्ट) में १५० फुट पानी चढ़ गया और सारी सुरङ्ग भर गई। बड़े बड़े इंजिनोंसे काम लिया गया और पानी निकालकर ३६ फुट कर दिया गया। अब यह आवश्यक जान पड़ा कि कोई पानीमें घुसकर लोहेका दर्वाजा बन्द कर आवे। दर्वाजा ऊर्ध्वगामी रास्तेसे लगभग ५५० गज था। इसके अतिरिक्त रास्तेमें दो ठेले उलट गये थे और रास्ता रुक रहा था और दर्वाजेमें दो रेल अड गये थे। अतएव ठेलोंके ऊपर होकर जाना और रेलोंको हटाना आवश्यक था। फ्लूस द्वारा आविष्कृत यंत्र लेकर लेम्बर्टने उतरनेका साहस किया और डेढ घंटेके बाद दर्वाजा बन्द करके निकला। यह रसायन शास्त्रका ही प्रताप था, क्योंकि यंत्रमें दबी हुई आक्सिजन और दाहक सोडा था।

इस प्रकार मनुष्यकी शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है। वह अब प्राकृतिक घटनाओंका मुस्तैदीसे सामना कर सकता है और प्रकृतिके गूढ और गुप्त रहस्योंको जान लेनेका बराबर प्रयत्न कर रहा है। इन सब बातोंका मनुष्यके विकाशपर बडा गहरा प्रभाव पडेगा।

अब विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य भविष्यके लिए क्या कर रहा है? मनुष्य मात्रके लाभका काम जो आजकल हो रहा है वह स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्साके सम्बन्धमें है।

भारत जैसे अभागे देशको छोड, जहां सब चीजें महँगी हैं, पर मनुष्य जीवन बडा सस्ता है, जहा महामारी, विशूचिका आदि राक्षसियों को भर पेट खानेको मिलता है, अन्य देशोंमें मृत्यु सख्या घटती जा रही है और स्वास्थ्य अधिक अच्छा होता जा रहा है। चिकित्साशास्त्र जो अब तक केवल अनुभव जन्य ज्ञान पर ही अवलम्बित था, वह अब विज्ञानकी सुदृढ नींवपर खडा हो रहा है। अब अनेक यन्त्रों द्वारा ओषधियोंके गुण और दोषोंका ठीक ठीक अध्ययन हो सकता है। उधर बिना थनोंके स्पर्श किये गायका दूध निकालनेका यन्त्र, बिना धूल उडाये झाड़ू लगानेका यन्त्र, इत्यादि जीवाणुओंसे, बचनेके उपायोंका आविष्कार हो रहा है। इन सबका फल यह होगा कि मनुष्य सत-युगकी नाई अपनी पूरी आयु तक जीवित रह कर पूर्ण उन्नति कर सकेगा। वस्तुतः वह दैहिक कष्टोंसे मुक्ति पा जायगा।

प्राणि विद्या विशारद पौधों और जन्तुओंकी जातियों (नस्ल) के सुधारनेके विषयमें अनेक आश्चर्यजनक प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिकाके विश्वामित्र, लूथर बरबकने बेरकी गुठली उडा दी, तो नागफनीके कांटे गायब कर दिये हैं। जिस फल में जो स्वाद और सुगन्ध चाहिये वही पैदा की जा सकती है, यह उनका दावा है। कुत्तों और घोडोंकी नस्ल कितनी सुधर गयी है, कितने अद्भुत आकार और प्रकारके कुत्ते और घोडे देखनेमें आते हैं, यह मनुष्यकी वर्त्तमान बुद्धि और योग्यताके परिचायक हैं।

वैज्ञानिकने पेड पौदो और जानवरोंपर ही दया दृष्टि नहीं की, मनुष्यपर भी प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। परन्तु मनुष्य जैसे हठी, साहसी और चपल प्रकृति पशु को प्रयोगों

का पात्र बनाना कितना कठिन कार्य है, यह पाठक स्वयम् समझ सकते हैं। मनुष्यके विषयमें मनोगत भावों और विचारों पर विजय प्राप्त करना कठिन है। यह तो स्वयम् ही सुधरे तो सुधरे, परन्तु नूतन शिक्षाप्रणाली, विवाह पद्धति और विचारशैली चमत्कारिक परिवर्तन कर रही है। और हमें पूर्ण आशा है कि कुबेर से वैश्य, ब्रह्मासे ब्राह्मण और राम जैसे क्षत्रिय उत्पन्न होने लगेंगे। सन्तति-शास्त्रकी उन्नति होनेसे वैसे ही दुर्बल देह और मस्तिष्कवाले मनुष्योंका पैदा होना मुश्किल हो जायगा। यदि कदाचित् कोई ऐसा मनुष्य पैदा भी हो जायगा तो उसकी दुर्बलताकी चर्चा रासायनिक भाषामें हुआ करेगी और यह कहा जायगा कि उसके शरीरमें अमुक यौगिकोंका अभाव है। और सम्भव है कि उन यौगिकों को यथा स्थान, उचित विधिसे पहुँचाकर दुर्बलता दूर कर दी जायगी। अतएव वर्द्धमान विज्ञानके सेवनसे ही सतयुग फिर आयगा और शान्ति और सुखका साम्राज्य संसार भर में फैल जायगा।



बाबू सूरजप्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी-साहित्य प्रेस,
प्रयागमें छपा।